वर्ष 37, अंक-4, जुलाई-अगस्त, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23370784
उप-महानिदेशक (ए.एस.)	:	23370228
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
निदेशक (सी एण्ड एस)	:	23379463
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

जुलाई-अगस्त, 2014

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक

अरुण कुमार साहू
उप-महानिदेशक (ए.एस.)

आवरण : सस्मिता मिश्रा
('येलो फ्लावर्स', ऑयल ऑन केनवस)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक :	₹	500
	यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक :	₹	1200
	यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

दक्षिण पूर्व एशिया में हिंदी के विकास का परिप्रेक्ष्य और तत्रजनित रामकाव्य का तुलनात्मक परिदृश्य 5
डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी

भारतीय संस्कृति में संघर्ष का प्रतीक--दीपक 13
प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

द्रविड़भाषा और साहित्य 16
डॉ. जितेंद्रकुमार सिंह 'संजय'

हिंदी, हिंदुस्तान और डॉ. रामविलास शर्मा 24
डॉ. कुमुद शर्मा

मौलाना अबुल कलाम आजाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 28
डॉ. खालिद बिन यूसुफ खां

मुस्लिम कवियों का हिंदी साहित्य में योगदान 31
डॉ. शिखा रस्तौगी

कालजयी मंटो और उनका साहित्य 35
डॉ. आरती वर्मा

स्वाधीनता का संघर्ष और क्रांतिकारी महिलाएं 37
पंडित सुरेश नीरव

कश्मीर 'धरती का स्वर्ग' 39
प्रो. मुहम्मद अफजल ज़रगर

हिंदी के विकास में वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों का योगदान 41
डॉ. सातप्पा लहू चव्हाण

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं विश्वबंधुत्व के प्रतीक अगस्त्य 46
डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु'

प्रेमचंद का पत्रकार रूप 50
राजेंद्र परदेसी

शमशेर की काव्य-सृष्टि पर एक दृष्टि 52
डॉ. प्रभा दीक्षित

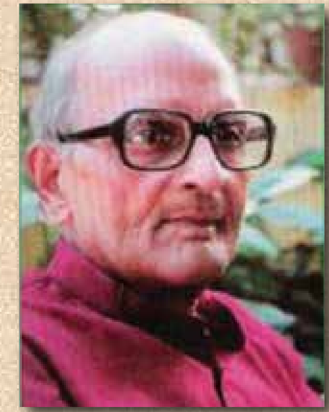

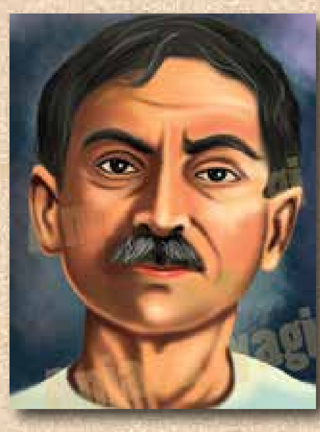

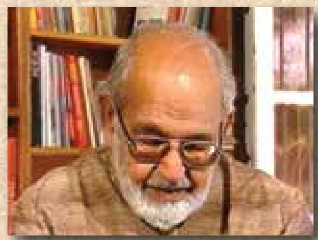

अवधी लोकगीतों में नारी मन 54
डॉ. मीनू अवस्थी

अज्ञेय : जीवन परिवेश एवं प्रारंभिक काव्य यात्रा 56
किरन तिवारी

हिंदी लघुकथा में चित्रा मुद्‍गल का अमूल्य योगदान 59
कविता सिंह

कहानी

छाया चित्र 63
डॉ. प्रतिभा राय

इस यात्रा में 73
हिमांशु जोशी

अगली बार जल्दी आएंगे 78
डॉ. मोहम्मद अरशद खान

सात कदम 83
जय वर्मा

कविता/गीत/गजल/दोहे

नींद में जाने के दिन गए/ द्वंद्व सिर उठाते हैं 88
जहीर कुरेशी

मेरे दर्द को पहचानती है/ पहले जैसी वो बात नहीं 88
ज्ञानप्रकाश विवेक

प्यार में जीना अच्छा लगता है 88
प्रफुल्ल रंजन 'साबिर'

पड़ गए सावन के छींटे 89
शिवानंद सिंह 'सहयोगी'

मन की तपन पड़ गई फीकी 89
कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

जरा सी बात पे इतना... 89
डॉ. कैलाश निगम

शिशु की किलकारी ने/समय का सौदागर 90
राजेंद्र निशेश

अगर शब्दों का रंग होता... 90
दीपक नरेश

सीख रहा हूं/अयोग्य हूं/आकाश ही अंतरिक्ष है/
छूती नहीं 91
अमित कल्ला

जननी 91
विमला पांडे

कुरुक्षेत्र/समय के हाथ/जीवन संध्या 92
बिमल सहगल

पुस्तक-समीक्षा

सामाजिक परिवेश की भावनात्मक बुनावट 93
रमेश गौतम

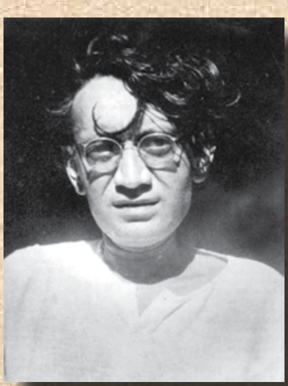

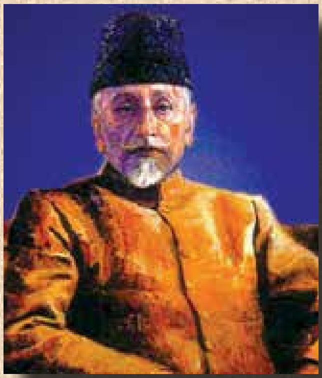

प्रकाशक की ओर से

समय का पहिया कभी नहीं रुकता। वह निर्बाध गति से चलता रहता है। लेकिन इतिहास के पन्नों पर वह कुछ ऐसे अमिट निशान छोड़ जाता है, जो इतिहास में तो स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते हैं, साथ ही आगे आने वाली पीढ़ी को भी वह प्रेरणा देने का काम करते हैं।

भारत की स्वतंत्रता के यज्ञ में अनेक व्यक्तियों ने अपने प्राणों की आहुति दी है। इनमें से बहुत सी शख्सियतों को हम जानते हैं लेकिन शहीदों का एक ऐसा वर्ग भी है, जो इतिहास के पन्नों में कहीं गुम हो गया है। ऐसी ही विस्मृत हो गई महिला क्रांतिकारियों को हमने इस अंक में नमन किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' का हमेशा से ही यह प्रयास रहा है कि हमारे पाठक वर्तमान में रहते हुए भी अपने अतीत की डोर से बंधे रहें, जिससे कि हम अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना से संबद्ध रहें।

आशा है हमारा यह प्रयास हमारे जागरूक पाठकों को अवश्य पसंद आएगा और उनके चिंतन और विचारों को एक नई दिशा देगा।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के उप-महानिदेशक के पदभार को संभालना मेरे लिए गर्व और सौभाग्य की बात है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् स्वतंत्र भारत के सबसे पुराने संगठनों में से एक है जो कि कला, संस्कृति और शिक्षा के आदान-प्रदान के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की हमारी सभ्यतागत संस्कृति को बढ़ावा दे रही है।

मेरे लिए यह हर्ष का विषय है कि परिषद् द्वारा मुझे हिंदी भाषा में प्रकाशित होने वाली द्विमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के संपादन का कार्यभार सौंपा गया है। मैं आधुनिक पाठकों की अपेक्षाओं से पूर्णरूप से अवगत हूं फिर भी मैं 'गगनांचल' को एक उन्नत कलेवर प्रदान करने हेतु सुधी पाठकों, विद्वानों और शिक्षाविदों से सहयोग की अपेक्षा करता हूं।

मैं पाठकों, विद्वद्जनों, शिक्षाविदों, शोधार्थियों एवं हिंदी संस्थाओं से अपेक्षा करता हूं कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु अपने लेख, कहानी, शोध टिप्पणी एवं गतिविधियों के बारे में परिषद् को सूचित कर हिंदी भाषा व साहित्य के प्रचार-प्रसार में अपना सहयोग दें। आप सभी से सुझाव व लेख भी आमंत्रित हैं। मुझे आशा है आप अपने सुझाव व लेख पत्रिका में प्रकाशन हेतु ddgas.iccr@nic.in पर भेजने में अपनी अहम् भूमिका निभाएंगे।

अ.कु. साहू

(अरुण कुमार साहू)
संयुक्त सचिव एवं उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

दक्षिण पूर्व एशिया में हिंदी के विकास का परिप्रेक्ष्य और तत्रजनित रामकाव्य का तुलनात्मक परिदृश्य

डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी

कई पुस्तकों के लेखक और अनेक पुरस्कारों से सम्मानित प्रो. यज्ञ प्रसाद तिवारी हिंदी विभाग एवं शोध केंद्र पं. शंभूनाथ शुक्ल शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हैं।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी के विकास का स्वरूप बहुआयामी है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिंदी एक इंडो-आर्यन भाषा है, तथापि उसके विकास का क्षेत्र व्यापक और प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय है। संस्कृत से प्रादुर्भूत हिंदी के उत्कर्ष की यात्रा पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होती हुई हिंदी तक मिलती है, इसलिए देवनागरी लिपि में लिखी जाने के कारण इसकी शब्द संपदा भी काफी समृद्ध है। खड़ी बोली हिंदी के विकास के समानांतर परवर्ती काल में विकास की एक धारा उर्दू भी चल निकली, जिसके फलस्वरूप आज हिंदी-उर्दू भाषाओं के सम्मिलित विकास के आधार पर वैश्विक क्षेत्र में भी इस भाषा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति के अंतर्संबंधों के कारण आज हिंदी निःसंदेह विश्व भाषा बन चुकी है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी बोलने वालों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने एक शोध सर्वेक्षण के आधार पर बताया है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी बोलने वाली की संख्या 730 मिलियन हो चुकी है, जो सर्वाधिक है। तत्पश्चात् अन्य भाषाओं के संदर्भ में चीनी 726 मिलियन, अंग्रेजी 297 मिलियन, रूसी 274 मिलियन, स्पेनिश 258, अरबी 115, पुर्तगाली 151, बंगला 157 तथा जापानी 119 मिलियन है। अन्य आंकड़ों के अनुसार मलय-इंडोनेशियाई भाषाओं की यह संख्या 170 मिलियन तथा फ्रेंच बोलने वालों की संख्या 127 मिलियन मानी जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक सर्वेक्षण के अनुसार वैश्विक स्तर पर 111.2 करोड़ जनता हिंदी भाषा जानती है। तात्पर्य यह कि हिंदी भाषा का प्रयोग न केवल भारत में, अपितु भारत के बाहर भी बड़ी मात्रा में हो रहा है।

हिंदी को वैश्विक पृष्ठभूमि में देखने से एक ओर जहां वह यूरोप और अमेरिका सहित फ्रांस, इटली, स्वीडन, आस्ट्रिया, नार्वे, डेनमार्क, स्विटजरलैंड, पोलैंड, चेक, जर्मन, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी आदि पश्चिमी देशों में फैली हुई हैं, वहीं दूसरी ओर वह चीन, जापान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, सिंगापुर, फिलीपींस, म्यांमार, लाओस, वियतनाम, मलेशिया, बर्मा, थाईलैंड, इंडोनेशिया आदि देशों में भी अपनी जड़ें जमा रही हैं। इन देशों में भारतीय संस्कृति का विकास और हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। इस्लामी देशों में हिंदी निरंतर लोकप्रिय इसलिए हुई कि उर्दू उसकी सहचरी भाषा है। ईराक, तुर्की, मिस्र, लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, अफ्रीका आदि देशों में भी हिंदी विकसित हो रही है। समग्रतः कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज लगभग 73 राष्ट्रों के 155 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है और अनुसंधान के क्षेत्र में वह द्रुत गति से क्रियाशील है। फिजी, सूरीनाम, गुयाना, मॉरीशस और त्रिनिदाद सहित आसियान देशों में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् और विदेश मंत्रालय के सतत् प्रयास से वैश्विक स्तर पर हिंदी पीठों की स्थापना भी की जा चुकी है या फिर की जा रही है तथा उसके माध्यम से हिंदी के महत्त्व और विकास से परिचय करवााने का प्रयास जारी है। इस संदर्भ में ही दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में हिंदी के विकास के स्वरूप और प्रभाव का विश्लेषण किया जाना आज की अपरिहार्यता बन चुकी है, ताकि हिंदी के उत्कर्ष का नवीन पथ प्रशस्त हो सके और उसके प्रसार-प्रचार का व्यापक स्तर पर प्रयास किया जा सके।

गौरतलब, है कि भाषा वैज्ञानिकों ने दक्षिण-पूर्व एशियाई परिवार की भाषा को 'आस्ट्रिक' परिवार की श्रेणी में रखा है और इसी नाम से संबोधित किया है, जिसके अंतर्गत तीन भाषा समूहों का विकास मिलता है—प्रथमशः मानखमेर या ख्मेर—जिसके अंतर्गत बर्मा, स्याम और निकोबार द्वीप समूह तक भाषा परिवार फैला हुआ है, दूसरा इस समूह का भाषा परिवार है मुंडा—यह भारत पूर्वी पहाड़ी भाग, बिहार एवं मध्यप्रदेश के कुछ भागों में, ओडीशा, चेन्नई एवं पश्चिमी बंगाल के हिस्सों में प्रचलित है। इस परिवार की मुख्य भाषाएं मानखमेर, मुंडा और बंगाली हैं। मानखमेर में साहित्य मिलता है, लेकिन और भाषाएं मौखिक और बोलचाल के रूप में व्यवहृत होती हैं। डॉ. फादर कामिल बुल्के ने अपने अध्ययन में खमेर साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इस भाषा ने साहित्य में राम काव्य परंपरा के विकास की संभावना इसलिए बलवती हुई कि खमेर साम्राज्य की स्थापना उन भारतीय प्रवासियों द्वारा हुई जो व्यापार के लिए दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में गए हुए थे। आज की मुंडा भारत के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है। खमेर में संस्कृत के तत्सम रूपों में

विकसित व्याकरणिक हिंदी की शब्दावली का ध्वनिसाम्य, अर्थसाम्य और वर्ण शैली मिलती है। इनमें घनिष्ठ व्याकरणिक समानता तक है और व्यवहृत शब्दों में आंतरिक संरचनागत समानता भी है। मलेशिया और इंडोनेशिया भी निकटस्थ भाषाओं में समीपता के कारण भाषा वैज्ञानिकों ने मलय बहुद्वीपीय संवर्ग में सम्मिलित किया है। कुछ विद्वानों ने इसे मलय पोलिनेशियाई अथवा आस्ट्रोनेशियाई परिवार भी कहा है। इस परिवार की भाषाएं पश्चिम में अफ्रीका तटवर्ती मेडागास्कर से लेकर पूर्व में ईस्ट द्वीप तक और उत्तर में फारमोसा से लेकर दक्षिण में न्यूजीलैंड तक सीमित बताया है। (भाषा विज्ञान, पृष्ठ-205)।

ये भाषा परिवार प्रायः छोटे-छोटे द्वीपों की भाषाओं के परिवार हैं, जिनमें प्रमुख द्वीप हैं मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, सिलीबिज, बाली, फिलीपींस, न्यूजीलैंड और प्रशांत महासागर के अन्य अनेक छोटे-छोटे द्वीप, इस क्षेत्र की प्रमुख भाषाएं हैं—मलय, फीजियन, जावानीज एवं मओरी। इन भाषाओं में स्वराघात महत्त्वपूर्ण होता है और क्रिया रूप बनाने के लिए प्रायः धातु के भेद में प्रत्यय जोड़ा जाता है। अत्य योग और आदि योग के भी उदाहरण मिल जाते हैं। इनमें से अधिकतर द्वीप भारत के अंग थे जिनकी गणना बृहत्तर भारत में की जाती रही है, फलतः वहां की भाषाओं पर भारतीय संस्कृति और भाषिक व्यवहार पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। ध्वनियों के उच्चारण में भी भारतीय मूल की ध्वनियों का स्वरूप मिलता है। ध्यातव्य है कि ये द्वीप प्रायः पश्चिमी देशों के उपनिवेश रहे हैं, इसलिए यहां की मूल भाषाओं का विकास नहीं हो सका है। बहुत से भागों में तो स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् तक वहां की मूल भाषाएं धीरे-धीरे विकसित हो रही हैं। भौगोलिक सीमा के आधार पर ही इन भाषाओं की ऐतिहासिकता का भी मूल्यांकन किया जाना संभव है। इस दृष्टि से जहां मानखमेर दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार की प्रमुख भाषा के रूप में उभरकर आई और इस परिवार का सीधा रिश्ता बिहार, मध्यप्रदेश, ओडीशा, चेन्नई और पश्चिमी बंगाल से जुड़ता है, वहीं उसके सांस्कृतिक विकास का संबंध, भारतीय भाषा हिंदी और भारतीय संस्कृति से भी गहराई से जुड़ता है। भारत की प्रमुख भाषा हिंदी से इन क्षेत्रों की भाषाओं का सीधा संबंध होने के कारण इनके बोलने वालों पर भी हिंदी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। ध्वनियों की दृष्टि से मुंडा समूह की भाषाएं पर्याप्त समृद्ध हैं। इनमें स्वरघोष, अघोष तथा अल्पप्राण, महाप्राण व्यंजन हैं, वास्तव में ये भाषाएं भारतीय क्षेत्र में बोली जाती हैं, इसलिए एक ओर वे जहां स्वयं आर्य भाषा परिवार की विशेषताओं से युक्त हो गई हैं, वहीं दूसरी ओर परस्पर संपृक्तता के कारण वे आर्य भाषा परिवार की भाषाओं को स्वाभाविक तौर पर प्रभावित भी करती हैं। भाषिक प्रभावात्मकता के स्तर पर अंतर्संबंधित होने के कारण साहित्य और संस्कृति के स्तर पर भी अंतर्संबंध होना लाजिमी है। उदाहरण के लिए बंगला, हिंदी और मुंडा तीनों में गणना बीस के क्रम में होने की परंपरा है, जिसके लिए मुंडा का 'कोड़ी' शब्द तीनों भाषाओं में प्रचलित रहा है। इसी प्रकार लिंग बोध हेतु मूल शब्द में ही पुरुष की स्त्रीवाचक शब्द जोड़ दिए जाते हैं। वचन तीन संस्कृत की भांति ही होते हैं और पद रचना के लिए उपसर्ग का प्रयोग हिंदी की तरह ही होता है। यथा 'मंझि' मुखिया तो मपंझि मुखिए होगा। (भाषा विज्ञान, पृष्ठ 20)।

स्याम, बर्मा, तिब्बत एवं चीन का भाषा परिवार चीनी-तिब्बत सीमा के निकट होने के कारण चीनी-तिब्बत परिवार में परिगणित किया गया है। इस परिवार की मुख्य भाषा चीनी है, जिसके अतिरिक्त आसियान देशों की थाईलैंड की थाई, बर्मा सहित स्याम और तिब्बत की भाषाएं इस परिवार की मुख्य भाषाएं हो गई हैं। ध्यातव्य है कि थाईलैंड के सिल्पाकार्न विश्वविद्यालय में आज मात्र स्नातक स्तर पर 160 छात्र हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं और स्वैच्छिक रूप से भी हिंदी की कक्षाओं में अध्ययन कर रहे हैं। संस्कृत और हिंदी के अध्ययन केंद्रों के माध्यम से थाईलैंड में बैंकाक हिंदी अध्ययन का महत्त्वपूर्ण केंद्र बनता जा रहा है और अनुसंधान की दिशा में बेहतर प्रयास हो रहा है। हिंदी के रामचरितमानस जैसे गौरव ग्रंथों को पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना उचित होगा, जो भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रचार-प्रसार का प्रमुख स्रोत सिद्ध हो सकता है और हिंदी अध्ययन के प्रति रुचि पैदा कर सकता है। दक्षिण-पूर्व एशिया में धार्मिक संगठनों और संस्थाओं के माध्यम से भाषा के विकास की प्रक्रिया द्वारा पहले से सुदृढ़ परंपरा का निर्वाह हो रहा है, जिसको बढ़ाना भारत का प्रमुख दायित्व है। (क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन परिपत्र, 2014)।

साहित्य की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर सर्वाधिक साहित्य चीनी भाषा का ही मिलता है। चीनी भाषा को बोलने वालों की संख्या भी विश्व में दूसरे नंबर पर है। चीनी साहित्य की परंपरा का आरंभ ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष से मिलता है, इस परिवार की भाषाएं अयोगात्मक हैं, इसलिए इनमें शब्दों के स्थान की प्रधानता होती है। शब्द प्रायः एकाक्षर एवं अपरिवर्तनीय होते हैं, इसलिए विभक्ति, प्रत्यय आदि जैसे कोई अन्य तत्त्व नहीं होते हैं। विभिन्न परिवार के स्वर या तानों के प्रयोग से एक ही शब्द से कई अर्थ अभिव्यक्त होते हैं। अर्थ की स्पष्टता के लिए निपात अथवा रिक्त शब्द का प्रयोग अधिक होता है, जो धारणात्मक अर्थ न देकर व्याकरणात्मक अर्थ देते हैं। ध्वनि रचना में अनुनासिकता का अधिक प्रयोग होता है। इस भाषा का कोई स्पष्ट व्याकरण नहीं होता, इसलिए इस भाषा का कोई बहुत प्रभाव अन्य भाषाओं पर नहीं पड़ता, सिवाय तिब्बती के।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इन भाषाओं का परीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आसियान देशों में थाइलैंड, बर्मा, मलेशिया, इंडोनेशिया, म्यांमार, फिलीपींस, सिंगापुर, लाओस, वियतनाम आदि देशों में से थाई भाषा पर यदि किसी भाषा का प्रभाव पड़ा तो संस्कृत की दाय भाषा होने के कारण हिंदी का

पड़ा। औपनिवेशिक संबंध के कारण भी हिंदी का सीधा संबंध बृहत्तर भारत के देशों के साथ रहा, जिनके माध्यम से दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में भारतीयों का आवागमन बढ़ा और बना रहा। वहां की संस्कृति पर परस्पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक प्रक्रिया बन गया था, यही नहीं कुछ धर्मों के प्रचार-प्रसार के कारण भी हिंदी साहित्य और संस्कृति का प्रभाव जहां संपूर्ण आसियान क्षेत्र पर पड़ा, वहीं उन देशों पर भी पड़ा जो धार्मिक दृष्टि से स्वतंत्र थे। प्रभाव के आधार पर देखें तो भारतीय समाज, संस्कृति और हिंदी के विकास का कारण उन देशों में 'रामायण' और 'महाभारत' सहित भारत के धर्मग्रंथों और वहां की भाषाओं को माना जाना यथेष्ट होगा। राम और कृष्ण के नायक रूप का महत्त्व इन ग्रंथों के माध्यम से आमजन के बीच में देखा जाने लगा, फलतः दो संस्कृतियों में संबंध और दृढ़ता से सांस्कृतिक उत्थान की दिशा में बढ़ने लगा। इन देशों में राम-कृष्ण के देवत्व का प्रसार-प्रचार हुआ साथ ही वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों की उपयोगिता के साथ हिंदी में लिखित सभी प्रकार के उच्चादर्शों पर केंद्रित साहित्य की महत्ता की प्रतिष्ठापना हुई। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में नैतिक अवधारणाओं के विकसित होने में इन ग्रंथों की वजह से उल्लेखनीय प्रगति हुई। राम-कृष्ण पर केंद्रित चरित्र निर्माण में सहायक भावना के संवर्द्धन के लिए रामकथा के पात्रों को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन शुरू हुआ, जिसमें कविता, गीत, नाट्य साहित्य आदि रूपों को विशेष बढ़ावा मिला। सिंगापुर में कुल 2,57,848 भारतीय मूल के प्रवासियों की संख्या सन् 2000 की जनगणना के आधार पर बताई जाती है, जिनकी अलग-अलग बोलियां हैं। उनकी भाषा हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू है। ये सब इन्हीं भाषाओं के माध्यम से बाजार करते हैं और व्यवसाय भी। यद्यपि सिंगापुर में 13,188 सिक्ख, 4,711 पंजाबी, 5,064 हिंदुस्तानी, 2,971 हिंदी और 2,989 उर्दू जानने वालों की संख्या आंकी गई है, जिनकी संस्कृति भारतीय है और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग सभी करते हैं। यों तो तमिल बोलने वालों की संख्या वहां पर (श्रीलंकाई और भारतीय) कुल मिलाकर 58 प्रतिशत है जबकि उत्तर भारतीयों का यह समूह समग्रतः मात्र 14.5 प्रतिशत है, जिनमें से मुख्यतः पंजाबी, हिंदी, सिंधी और गुजराती हैं। सन् 1990 में जनता विद्यालय में छात्रों ने द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ना शुरू किया था और इसी भाषा में परीक्षा भी दी। बाद में हिंदी अध्ययन -अध्यापन का वातावरण बना और बंगला, गुजराती, पंजाबी और उर्दू पढ़ने वालों ने भी हिंदी में परीक्षा देना शुरू किया।

मलय और हिंदी में कुछ शब्दों का ज्यों का त्यों मिश्रण हुआ है, यथा भूमि के लिए 'बूमि', सुख के लिए सुक और रोटी के लिए रोटी और समान के लिए 'सम' आदि शब्दों में ध्वनिगत और अर्थगत समानता है, मलय की भांति मंदारिन में भी आयातित हिंदी के शब्द चलन में आने लगे हैं, क्योंकि धीरे-धीरे व्यापार की भाषा के रूप में हिंदी का चलन बढ़ने लगा है। सिंगापुर में अंग्रेजी पढ़ने-पढ़ाने वाले भारतीय ज्यादा हैं, अतः वे जरूरत के मुताबिक हिंदी भी बोलते हैं, जिससे हिंदी का वातावरण निर्मित होने लगा है। सिंगापुरी अंग्रेजी की भांति ही सिंगापुरी हिंदी का भी प्रचलन हो रहा है। वहां के भाषा विज्ञानी और ध्वनि विज्ञान के विशेषज्ञ प्रो. डॉ. एडम ब्राउन का मानना है कि वाक्य विन्यास और उच्चारण वैभिन्य के कारण धीरे-धीरे सिंगापुरी हिंदी और सिंगापुरी अंग्रेजी का समानान्तर विकास हो रहा है। बौद्ध धर्म और रामायण के प्रचार-प्रसार से भारत की पाली ओर हिंदी का विस्तार थाईलैंड, बर्मा और खमेर में भी हुआ। ब्रिटिश उपनिवेशकाल में मिश्रित संस्कृति के प्रभाव से बहुभाषी प्रथा विकसित हुई। जिसका प्रभाव सिंगापुर पर भी पड़ा। दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों के आगमन के साथ हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए उल्लेखनीय श्रेय रामकथा को दिया जाना उचित होगा, जिसकी वजह से जावा, सुमात्रा, मलय, इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर आदि क्षेत्रों में रामकथा के अनेक रूपों का विकास हुआ। इन भाषाओं में राम साहित्य की रचना का सूत्रपात भारतीय भाषाओं के विकास का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ। डॉ. फादर कामिल बुल्के ने लिखा है—'हिंदेशिया में रामकथा प्राचीन काल से विदित है। इसका प्रमाण नवीं शताब्दी के एक शिव मंदिर के शिलालेख से मिलता है। बाद में जावा तथा मलय में एक विस्तृत राम साहित्य की रचना की गई, जिसमें रामकथा के दो भिन्न रूप मिलते हैं—(1) जावा के प्राचीन रामायण का रूप जो कि वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट है तथा (2) अर्वाचीन रामकथा जिसमें वाल्मीकि से बहुत भिन्नता पाई जाती है। इनकी सामान्य विशेषता यह है कि इसमें रामभक्ति का भाव नहीं आया है। जावा के प्राचीनतम रामायण के रचयिता शैव थे तथा जिन दो मंदिरों में रामकथा की विस्तृत शिला-चित्र-माला है, वे भी दोनों शिव मंदिर हैं।'' (रामकथा, पृष्ठ 209)।

रामकथाओं का प्रारंभिक आधार वाल्मीकि रामायण रहा है। वाल्मीकि रामायण का रचना काल 300 ई. पूर्व माना जाता है किंतु रामकथा विषयक 'आख्यान काव्य' की परंपरा 600 ई. पूर्व मानी जाती है। महर्षि वाल्मीकि के 'रामायण' के राम के कथानक की प्रामाणिकता मानी जाने लगी थी फलतः इस साहित्य का प्रभाव निश्चित रूप से न केवल भारतवर्ष में अन्य रामकाव्यों पर पड़ा होगा, अपितु भारतेत्तर देशों में भारतीयों के आने-जाने से पड़ा होगा। इस दृष्टि से ही आसियान देशों में हिंदेशिया के प्राचीन साहित्य के 'रामायण ककविन'(जावा) का महत्त्व सर्वोपरि है, जिसका रचनाकाल दसवीं शताब्दी माना गया है, जिसके पहले 'अभिषेक नाटक' (300-400 ई.), 'रावण वह' और भट्टिकाव्य' (500-700 ई.), 'उत्तर रामचरित' (700-800 ई.) तथा 'तिब्बती खोतानी रामायण' (800-900 ई.) आदि की रचना की जा चुकी थी।

आधुनिकतम खोजों के आधार पर डॉ. कामिल बुल्के ने लिखा है कि 'रामायण

ककविन' के रचनाकार का नाम 'योगीश्वर' को बताया गया है जबकि इसके रचनाकार योगीश्वर नहीं थे। 'रामायण ककविन' का रचयिता अभी भी अज्ञात ही है। डच के अनुवाद से पता चलता है कि इसका मुख्य आधार 'भट्टिकाव्य' है (500-700 ई.)। ग्यारहवें अध्याय में भट्टिकाव्य के कथानक की जितनी विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे सब 'रामायण ककविन' में भी पाई जाती है। प्रारंभिक बारह सर्गों में विभाजन भट्टिकाव्य में भी हुआ है। अंतर है तो यह कि भट्टिकाव्य का नवां अध्याय 'रामायण ककविन' के नवें तथा दसवें अध्याय में विभक्त किया गया है। युद्ध के वर्णन में 'रामायण ककविन' अधिक विस्तार में जाता है, जिसमें भट्टिकाव्य के 22 सर्गों की सामग्री 26 सर्गों में दी गई है। दोनों रचनाओं में युद्धकांड की कथा तक का वर्णन किया गया है। 'अभिषेक नाटक' तथा 'महानाटक' के वृत्तांत के अनुसार रावण सीता को निरुत्साहित करने के लिए राम तथा लक्ष्मण दोनों का मायामय सिर दिखलाता है। गुणभद्र कृत ग्रंथ में एक पत्र का उल्लेख हुआ है, जिसे राम हनुमान के द्वारा सीता के पास भेज देते हैं। 'रामायण ककविन' में सीता अभिज्ञान हेतु चूड़ामणि के अतिरिक्त एक पत्र भी हनुमान को देती हैं। फिर भी पत्र की कल्पना इतनी स्वाभाविक है कि इसके कारण गुणभद्र के ग्रंथ का प्रभाव मानना आवश्यक हो जाता है। 'ककविन' की दो अन्य विशेषताएं अन्यत्र नहीं मिलती हैं। शबरी राम से अपनी कथा सुनाती हुई कहती है कि विष्णु ने वाराहावतार में मेरी माला खा ली थी और मर गए थे, तब मैंने उनकी लाश खाई थी जिसके फलस्वरूप मेरा मुंह काला हो गया था, अनंतर वह राम से अनुरोध करती है, वे उसका मुख पोंछकर उसको शुद्ध करें। इसके अतिरिक्त इंद्रजीत की सात पत्नियों का उल्लेख है, जो अपने पति की ओर से युद्ध करती हैं और रणभूमि में मारी जाती हैं। 'रामायण ककविन' की एक अंतिम विशेषता यह है कि मित्रता का अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण स्थान है। (वही, पृष्ठ 201)।

'रामायण ककविन' की परंपरा के अनुक्रम में नाटकों के माध्यम से राम कथा के विकास का स्वरूप सामने आता है। जावा और सुमात्रा में राम कथा पर आधृत नाट्य रूपों में रामायण के चरित्रों द्वारा अभिनय किया जाता है। इन नाटकों का कथा विधान 'सेरत कांड' (1500-1600 ई.) और 'रामकेलिंग' (1500-1600 ई.) के परिप्रेक्ष्य में मिलता है। बाली का 'वयांगवोंग' नामक नाटकों का पूरा वर्ग (जिसमें अभिनेता मुखौटा नहीं पहनते) केवल रामायण का दृश्य ही प्रस्तुत करता है। रामकथा का यह रूप हिंदेशिया, हिंद, चीन, स्याम और ब्रह्मदेश तक फैला मिलता है। (वही, पृष्ठ 211)।

मलयन रामकथा के अर्वाचीन रूप भी मिलते हैं, जिनमें 'हिकायत सेरीराम' के अलग-अलग साहित्यिक पाठों का उल्लेख मिलता है। इन पाठों का उल्लेख डॉ. कामिल बुल्के ने किया है—(1) राफल्स मलय हस्तलिपि का पाठ इसके कथानक में प्रारंभ में रावण का पूर्वचरित्र दिया गया है, जो अन्य पाठों में नहीं मिलता है। इस कथा की एक अन्य हस्तलिपि 1963 ई. में मिली इसमें रावण के पूर्वचरित्र (अत्याचार, तपस्या) के विषय में अतिरिक्त सामग्री है और हनुमान की जन्म कहानी है जो महाशिव पुराण के कथानक से साम्य रखती है।

(2) हिकायत महाराज रावण पाठ—इसका कथानक सेरीराम से बहुत मिलता-जुलता है।

(3) श्रीराम (डब्ल्यू. ई. मैक्सवेल द्वारा संपादित) पाठ इसमें हनुमान के जन्म से लेकर लंका में राम की विजय तक की कथा 'हिकायत सेरीराम' के आधार पर दी गई है। 'हिकायत सेरीराम' में रावण के जन्म से लेकर सीता के त्याग-सम्मिलन तक की कथा चित्रित है।

'सेरीराम' के कथानक को रावण चरित और राम का जन्म, सीता का जन्म और विवाह राम का वनवास, सीता का हरण युद्ध, सीता त्याग तथा राम सीता संकलन शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है।

'सेरीराम' से भिन्न जावा का सेरतकांड है। इसमें नबी आदम की कथा के बाद जावा के प्राचीन राजाओं की वंशावली का वर्णन है जिसके अंतर्गत देवताओं की पौराणिक कहानियों का चित्रण है।

'हिकायत सेरीराम' के संबंध में समीक्षकों ने अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है—''हिंदेशिया के प्राचीन रामकथा के मुख्य आधार के विषय में संदेह की गुंजाइश नहीं होती है, किंतु 'सेरीराम' का मूल स्त्रोत निर्धारित करना असंभव सा प्रतीत होता है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि 'सेरीराम' में, जो वाल्मीकि से भिन्न बहुसंख्यक प्रसंग मिलते हैं, उनका आधार प्रायः भारतीय ही है। जैनी तथा बंगाली रामायण कृतिवास रामकथाओं का प्रभाव निर्विवाद है। उड़िया राम साहित्य (रघुनाथ विलास), रंगनाथरामायण (1200-1300 ई.) तथा कंब रामायण (1100-1200 ई.) भारत के पूर्वी तट की रचनाओं का प्रभाव भी सेरीराम पर पड़ा है। 'सेरीराम' के अनेक प्रसंग आनंद रामायण, कथासरितसागर, मैरावण चरित अथवा कन्नड़ का तोरवे रामायण (1500-1600 ई.) में विद्यमान है। सेरीराम, 'रामायण ककविन' तथा मुसलमानी धर्म का जो परस्पर प्रभाव पड़ा है, वह एक प्रकार से अनिवार्य ही था।'' (रामकथा, पृष्ठ 215)।

इनके अलावा हिंदू धार्मिक ग्रंथों में वर्णित कथानकों से आयातित रामकथाओं का प्रभाव भी इन रामायणों पर पड़ना संभावित था। भागवतपुराण, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण (300-400 ई.), स्कंद पुराण (800-900 ई.) आदि से निश्चित रूप से प्रभाव ग्रहण किया जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है। कंबोडिया के 'रामकीर्ति' और 'स्याम' देश के (रामकियेन) चरित काव्यों पर रामचरितमानस (1574 ई.) का प्रभाव भी संभावित है, क्योंकि इन काव्यों का रचनाकाल (1500-1600 ई.) के आसपास के वर्ष ही हैं और अब तक भारतीय व्यापारियों का आवागमन पूर्ववर्ती समयों से ज्यादा होने लगता था, जिसके कारण इन धर्मग्रंथों को अपने साथ ले जाना उनकी

आस्था का एक हिस्सा रहा होगा। मानस की अनेक चौपाइयों में 'रामकथा' के लिए, 'रामकीर्ति', 'हरिहर कथा', 'रघुपति गुन गाहा', 'राम जस', 'हरि जस', 'हरि कीरति', 'गुन गाथा' और 'गुन गाहा' आदि शब्दों के अनुरूप रामकेर्ति या रामकियेन (रामकीर्ति) के उच्चारण अंतर से समानार्थी शब्द और वर्ण मैत्री के परिचायक हैं—

1. तेहि कर बिमल विवेक बिलोचन।
   बरनऊं **रामचरित** भवलोचन।।
   —(बालकांड, दोहा 2 के बाद)

2. करन चहहुं **रघुपति गुन गाहा**।
   लघुमति मोरि चरित अवगाहा।।
   —(बालकांड, दोहा 7 के बाद)

3. भनिति भदेस बस्तु कबि बरनी।
   रामकथा जग मंगल करनी।।

   स्याम सुरभि पय बिसद अति,
   गुनद करहिं सब पान।
   गिरा ग्राम्य सिय **राम जस**,
   गावहिं सुनहिं सुजान।। दो. 7।।
   —(बालकांड, दोहा 10 ख)

4. बुध बरनहिं **हरिजस** अस जानी।
   करहिं पुनीत सुफल निज बानी।।
   मुनिन्ह प्रथम **हरि कीरति** गाई।
   तेहि मग चलत सुम मोहि भाई।।
   —(बालकांड, दोहा 12 के बाद)

5. जो प्राकृत कबि परम सयाने।
   भाषां जिन्ह **हरि चरित** बखाने।।
   —(बालकांड, दोहा 13 के बाद)

गोस्वामीजी की मान्यता भी है कि 'हरि कीरत', 'राम जसु' का गान 'कवि-कोबिद' इस विचार से करते हैं कि हरिजस गान से ही, कवि को दुख से मुक्ति मिल सकती है—''कवि कोबिद अस हृदयं बिचारि, गांवहिं हरि जस कलि मल हरनी।।'' और अच्छे कवियों का काम है कि वे यत्र-तत्र सर्वत्र राम कीर्ति का गान करते हुए हर जगह शोभा में वृद्धि करते रहें—

''वैसेहिं सुकबि कबित कुछ कहहीं।
उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।।''

स्पष्ट है यदि भारत में 'रामकथा', 'हरिलीला', 'रामयश', 'रामचरित' आदि रूपों में विख्यात है, तो दक्षिण पूर्व एशिया में रामकथा 'रामकीर्ति' के रूप में 'रामकियेन' या 'रामकीर्ति' नाम से जानी जाती है। आसियान देशों में रामकथा का प्रचार-प्रसार बौद्ध धर्म के समानान्तर हुआ, क्योंकि बौद्ध धर्म के साथ हिंदू धर्म का व्यापक विस्तार हुआ, जिसके धार्मिक ग्रंथों से साक्ष्य मिलते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' में 30वें सर्ग (सुंदरकांड) में सीताजी से वार्तालाप करने के सूत्र के तलाश के संबंध में हनुमानजी के द्वारा विचार किए जाने का उल्लेख किया है। सीताजी के विलाप और त्रिजटा की स्वप्न चर्चा तथा राक्षसियों की डांट-फटकार सुन लेने के बाद उन्होंने देखा कि माता सीता तो शोक के कारण अचेत सी हो रही हैं। यदि मैं इन सती साध्वी सीता को सांत्वना दिए बिना ही वापस चला जाऊंगा, तो मेरा वापस जाना दोषयुक्त होगा और मेरे चले जाने पर अपनी रक्षा का उपाय न देख ये यशस्विनी राजकुमारी अपने जीवन का अंत कर लेंगी। ऐसी स्थिति में कैसे बात करूं कि सीताजी को मेरे आगमन का पता भी चल जाए और स्वामी का संदेश भी उन तक पहुंच जाए। वे सोचने लगे—अच्छा तो मैं धीरे-धीरे राक्षसियों के रहते हुए उन्हें संतोष दूंगा, क्योंकि इनके मन में बड़ा संताप है। किंतु यह भी संभव कैसे हो सकेगा? एक तो मेरा शरीर अत्यंत सूक्ष्म है, दूसरे मैं वानर हूं। वानर होकर भी यहां मैं मनोवांछित संस्कृत भाषा में बोलूंगा। लेकिन ऐसा करने पर एक बाधा है, यदि मैं द्विज की भांति संस्कृत वाणी का प्रयोग करूंगा तो सीता मुझे मायावी रावण समझकर भयभीत हो जाएंगी, ऐसी दशा मे मुझे निश्चय ही उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे अयोध्या के आसपास की साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती साध्वी सीता को मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकूंगा—

''यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सांत्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता।।''
—(सुन्दरकांड, 18-19)

हनुमानजी का विचार मंथन चलता रहता है और वे सोचते हैं कि यदि मैं जगद्जननी मां सीता के सामने जाऊंगा तो मेरे इस वानर रूप का देखकर और मेरे मुख से मानवोचित भाषा सुनकर वे, जिन्हें पहले से ही राक्षसों से भयभीत कर रखा है, और भी डर जाएंगी। मन में भय उत्पन्न होने पर मनस्विनी सीता मुझे इच्छानुसार रूप धारण करने वाला समझकर जोर-जोर से चीखने लगेंगी; फलतः ये विकट मुख वाली राक्षसियां मुझे सब ओर से घेरकर मारने या पकड़ने का प्रयत्न करेंगी। इन सब तर्कों पर विचार करते हुए अशोक वृक्ष की शाखाओं में छुपकर बैठे हुए महाप्रभावशाली हनुमान पृथ्वीपति श्रीरामचंद्रजी की भार्या की ओर देखते हुए मधुर एवं यथार्थ बात लोक भाषा में कहने लगे—हनुमानजी ने सीताजी को अपहरण से पूर्व की उन सारी घटनाओं का उल्लेख किया, जो कुछ घटित हुआ था और पूरा का पूरा वृत्तांत अवध की भाषा अवधी में कह सुनाया, तब सीताजी कपि के वचन सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं तथा संपूर्ण वृत्तियों से भगवान श्रीराम का स्मरण करती हुईं, समस्त दिशाओं में दृष्टि दौड़ाने लगीं। उन्होंने ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टिपात करके उन अचिंत्य बुद्धि वाले पवन पुत्र हनुमान को, जो वानरराज सुग्रीव के मंत्री थे, उदयाचल पर विराजमान सूर्य के समान देखा—

''निशम्य सीता वचनं कपेश्च।
दिशश्च सर्वाः प्रदिश्च वीक्ष्य।।
स्वयं प्रहर्ष परमं जगाम्।
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती।।18।।
सा तिर्यगुर्ध्वं च तथा हृदधस्ता।
निरीक्षणमाणा तम चिंत्यबुद्धिम।
ददर्श पिङ्गर्धिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्।।19।।

अस्तु यह कहना अत्युक्ति न होगा कि वाल्मीकि काल में अयोध्या (भारत) की हिंदी बोली अवधी में हनुमानजी श्रीलंका में सीताजी से बात करते हैं, जो 'रामायण' काल के उपरांत भारतीयों के आसियान देशों में जाना और आना तथा अपनी आस्था के प्रति जागरूक रहने का प्रमाण उपस्थित करना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। यही नहीं लोक भाषा में वार्तालाप करना प्रभावशाली नैकट्य स्थापन एवं स्नेह संबंध निर्मित करने का सुगम मार्ग होता है, जबकि साहित्यिक भाषा वाचिक या मौखिक भाषा का अनुवाद होती है। राम और कृष्ण की लोकभाषा ने सांस्कृतिक महत्त्व प्रतिपादित करने में वैश्विक सौहार्द्र निर्मित करने का काम किया तथा विश्वबंधुत्व का संदेश देने की अहम् भूमिका का निर्वाह किया है।

वस्तुतः यदि भारत में रामकथा, हरिलीला, रामयश, आदि रूपों में विख्यात है तो दक्षिण-पूर्व एशिया तथा आसियान देशों में रामकथा रामकियेन (अर्थात् रामकीर्ति) के नाम से स्याम देश में मिलती है। आसियान देशों में रामकथा का प्रचार-प्रसार बुद्ध धर्म के समानान्तर ही माना जाना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म से पहले हिंदू धर्म का भी व्यापक प्रचार-प्रसार दक्षिण-पूर्व एशिया में हो रहा था, इसके साक्ष्य मिलते हैं। खमेर राजाओं ने तो हिंदू धर्म से उस क्षेत्र की स्थापत्य कला और वास्तु शिल्प को प्रमुखता से जोड़ दिया था, जिसके परिणामस्वरूप ही 'रामकियेन' के नाम से रामकथा के विकास का सूत्र जुड़ता गया। गौरतलब तथ्य यह है कि खमेर सभ्यता एक महत्त्वपूर्ण सभ्यता के रूप में जानी जाती है। इतिहासकारों का मत है कि इस सभ्यता के विकासकाल प्रथम शताब्दी से ही भारतीय व्यापारियों का आना-जाना हिंद-चीन तक जारी रहा, जिसके फलस्वरूप अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य भी इन्हीं व्यापारियों ने उस क्षेत्र में शुरू कर दिया था। 'आकाशदीप' कहानी में जयशंकर प्रसाद ने 'जिस चंपा' द्वीप को 'चंपा राज्य' के रूप में प्रस्तुत किया है, उसकी स्थापना भी 7वीं शताब्दी तक हो चुकी थी, जिसके प्रमाण तत्कालीन शिलालेखों में मिलते हैं। हिंद चीन में ही 'वाल्मीकि रामायण' का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ था। राजा प्रकाश धर्म सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के समय के वाल्मीकि मंदिर में वाल्मीकि की एक मूर्ति मिली थी। इस मंदिर के शिलालेख में श्लोकोत्पत्ति तथा वाल्मीकि के विष्णु अवतार होने का उल्लेख मिलता है—

''यस्य श्लोकात् समुत्पन्नं
श्लोकं ब्रह्मणाभिपूज(ति)।।
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुष्स्यात्मरूपिणः।।''

भारतीयों ने ही प्रथम शताब्दी ई. में दक्षिण कंबोडिया में खमेर जाति के बीच में फूनान राज्य स्थापित किया था। छठी शताब्दी ई. में एक अधीनस्थ राजा ने फूनान के विरुद्ध विद्रोह करके उत्तर में कंबुज राज्य की स्थापना कर ली जो 14वीं शताब्दी तक संवर्द्धित हुआ। वहां सैकड़ों मंदिर थे, जिन्हें आक्रमणकारियों ने ध्वस्त कर दिया था। अनुमानतः ये मंदिर 9वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के मध्य निर्मित किए गए थे। वहां की सर्वाधिक पुरानी राजधानी अंगकोरवाट के एक विशाल मंदिर में रामायण, महाभारत तथा हरिवंश कथाओं पर आधारित अनेक शैलचित्र अंकित मिलते हैं, जिस पर जावा की कला का प्रभाव है। इसका भी उल्लेख मिलता है कि 12वीं शताब्दी में अंगकोरवाट युद्ध हुआ था, जिसमें अंगकोरवाट शहर और मंदिर नष्ट कर दिए गए थे, लेकिन जयवर्मन द्वितीय नामक शासक ने पचास वर्षों में उसे पुनः हूबहू स्थापित कर लिया। खमेर राजा हिंदू धर्म को मानने वाले थे। सूर्यवर्मन द्वितीय ने हिंदुओं के भगवान विष्णु का अवतार स्वयं को ही मानता था, जबकि उनका बौद्ध मतानुयायी पुत्र जयवर्मन सप्तम स्वयं को बुद्ध का अवतार कहता था। जाहिर है विष्णु और बुद्ध दोनों ही देवतुल्य हैं और पूज्य हैं फिर भी विष्णु की पूजा का चलन बुद्ध की पूजा के चलन से पहले था। अतः दोनों ने धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया था। खमेर शासक हाथी को हिंदू धर्म का प्रतीक मानते थे, क्योंकि कृषि की उन्नति में इन हाथियों का बड़ा योगदान था। इन राजाओं ने कृषि के विकास की ओर ध्यान दिया और इनका राज्य काफी समृद्ध हो गया। हरियाली, पर्यावरण पर भी इनका ध्यान गया। सन् 1431 ई. में पड़ोसी देश थाईलैंड ने इस पर आक्रमण कर दिया और राज्य नष्ट कर दिया। यहां का समृद्ध नगर अंगकोरवाट और स्थापत्य नष्ट कर दिए गए। फलतः राजधानी समाप्तप्राय हो गई, जिसे बाद में फ्रांसीसी हरियाली प्रिय और प्रकृतिवादी हेनरी माउहोत ने पुनः तैयार किया।

खमेर साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'रामकीर्ति' है, जिसका खमेर भाषा में उच्चारण 'रेआमकेर' अथवा 'रिमायके' है। इस कृति का रचयिता अज्ञात बताया जाता है। इस कृति की प्राचीनतम हस्तलिपि 17वीं शताब्दी की मिलती है, किंतु अपूर्ण है। इसका कथानक विश्वामित्र के यज्ञ से प्रारंभ होता है। तदुपरांत सीता त्याग से लेकर लव कुश युद्ध तक का वर्णन छह सर्गों में मिलता है। रामकियेन (स्याम देश की रामायण) से तुलना करने पर कहा जा सकता है कि सर्ग 80 रामकीर्ति का अंतिम सर्ग नहीं है। रामकीर्ति के फ्रेंच अनुवाद से उसकी निम्नलिखित विशेषताएं निरूपित की गई हैं—

(1) लेखक कोई धार्मिक बौद्ध है, जो राम को रामायण का अवतार मानते हुए भी, उनको बोधिसत्व की उपाधि देता है तथा कई स्थलों पर बौद्ध शब्दावली का उपयोग करता है।

(2) यद्यपि रामकीर्ति पर सेरीराम की गहरी छाप है, फिर भी लेखक ने वाल्मीकि रामायण तथा सेरीराम की कथाओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है; फलस्वरूप सेरीराम की अपेक्षा रामकीर्ति वाल्मीकि रामायण के अधिक निकट है। 'सेरीराम' में दशरथ की केवल दो रानियों का उल्लेख है। रामकीर्ति में तीनों के नाम वाल्मीकि के अनुसार ही दिए गए हैं। रामकीर्ति में रावण सीता-स्वयंवर में उपस्थित नहीं होता, लेकिन सेरीराम के अनुसार रावण भी इसमें

आया था, सेरीराम में राम स्वेच्छा से वन के लिए प्रस्थान करते हैं, जबकि रामकीर्ति में कैकेयी (कैकसी) के अनुरोध से राम को वन भेजा जाता है। सेरीराम में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र के वध का वृत्तांत मिलता है, जिसका उल्लेख रामकीर्ति में नहीं है। खमेर रचना में सीता जनक की दत्तक पुत्री मानी जाती हैं तथा राम द्वारा परित्यक्ता होकर वाल्मीकि आश्रम में निवास करती हैं। सेरीराम में सीता महरेसिकली की दत्तक पुत्री मानी जाती हैं तथा त्याग के बाद वाल्मीकि के यहां रहती हैं। सेरीराम में हनुमान राम के पुत्र माने जाते हैं, किंतु रामकीर्ति के अनुसार वे अंजना और वायु की संतान हैं। (रामकथा, पृष्ठ 217)

स्याम देश में भी रामकथा का वर्णन रामकियेन (रामकीर्ति) के नाम से प्रचलित है। स्याम में प्राचीनकाल से ही नाटकों में रामकथा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारंभिक नाटकों के दो वर्ग (खोन, हिंदी भाषा के खोल का पर्याय जिसमें अभिनेता चेहरा लगा लेते हैं) भाषा का एकमात्र विषय रामकथा ही था, जबकि एक तीसरा वर्ग (नाग अर्थात् छाया नाटक) प्रमुखतया रामकथा के दृश्य प्रस्तुत करता था। अठारहवीं शताब्दी में नाटकों के एक नवीन रूप का प्रचलन हुआ (वेयुक रोग), जिसका कथानक रामकियेन पर आधारित था। 18वीं शती के रामकथा विषयक नाट्य साहित्य की कुछ सामग्री सुरक्षित है। यहां की 'रामकियेन' की प्राचीन हस्तलिपियां 17वीं शताब्दी की हैं। इस रामायण के दो भिन्न संस्करण 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निकाले गए हैं, तथा इसका एक तीसरा संस्करण नाटक के रूप में 19वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुआ था, वांकोक के बिड़ला ओरियंटल सीरीज में 'रामकियेन' का अंग्रेजी संक्षेप 'रामकीर्ति' के नाम से प्रकाशित किया गया है।

वस्तुतः जिस प्रकार भारत में वाल्मीकि कृत रामायण के तर्ज पर तुलसीकृत रामचरित-मानस या राधेश्याम रामायण आदि राम नाम के आख्यान के पर्याय रूप में चल पड़े हैं, उसी प्रकार 18-19वीं शताब्दी में खमेर, इंडोनेशिया, मलेशिया, स्याम, बर्मा आदि आसियान देशों में रामकथा काव्य के लिए 'रामकियेन' शब्द चल पड़ा था, और कई कवियों द्वारा इस दौरान 'रामकियेन' नाम के रामकाव्य लिखे गए। 'स्याम' देश में 'रामकियेन' के कथानकों की निम्नलिखित विशेषतायें उल्लेखनीय हैं, जो अन्य देशों के रामकियेन से अलग हैं–

(1) 'रामकियेन' के सभी पात्र स्याम देश के निवासी ही हैं, तथा 'रामायण' का घटनास्थल भी स्याम देश में ही माना गया है।

(2) इसका आधार खमेर देश की खमेर भाषा का रामकीर्ति है। रामकीर्ति की भांति रामकियेन भी सेरीराम की अपेक्षा वाल्मीकि कथा के अधिक निकट है। रामकीर्ति तथा वाल्मीकि रामायण की तुलना करते हुए रामकीर्ति की जितनी विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे प्रायः सब रामकियेन में विद्यमान हैं। अंतर है तो सिर्फ यह कि रामकियेन में हनुमान को अंजना तथा शिव का पुत्र माना गया है तथा लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र के वध का वर्णन है। रामकियेन का एक अन्य प्रसंग राम-सीता का पूर्वानुराग न वाल्मीकि रामायण में मिलता है और न रामकीर्ति में किंतु कतिपय बातों में रामकियेन रामकीर्ति की अपेक्षा वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट है।

(3) 'रामकीर्ति' की तरह 'रामकियेन' बहुत सी बातों में... रामायण सेरीराम पर आधारित है। रामकियेन पर खमेर सेरीराम का सीधा प्रभाव है। यथा—महिरावण का पाताल ले जाना।

(4) 'रामकीर्ति', 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'सेरीराम' के अतिरिक्त रामकियेन का कोई और आधार ग्रंथ रहा है यह कहना संभव नहीं है क्योंकि अभी तक रामकीर्ति की पूरी हस्तलिपि नहीं मिली है।

(5) 'रामकियेन' में विभीषण-मंदोदरी के विवाह का वर्णन मिलता है और यह प्रसंग सेरीराम तथा रामकीर्ति में नहीं आया है, जबकि अनेक रामकथाओं में इसका उल्लेख हुआ है।

स्याम देश के उत्तर-पूर्वी प्रांतों लाओस में लाओ भाषा बोली जाती है। लाओ साहित्य में पंचतंत्र में दशरथ द्वारा अंधमुनि पुत्र वध तथा राम के पास विभीषण की शरणागति का उल्लेख मिलता है। 16वीं शती में 'राम जातक' की रचना लाओ भाषा में ही हुई है। रामकियेन की भांति इस भाषा में सभी जातक कथाओं का घटनास्थल स्याम देश ही माना गया है। इसमें पूर्वार्द्ध में राम के केवल एक भाई लक्ष्मण तथा एक बहन शांता का उल्लेख मिलता है। उत्तरार्द्ध में वाल्मीकीय रामायण के समस्त कथानक रामकियेन से मिलते-जुलते रूप में प्रस्तुत हैं।

बर्मा में रामकथा का अद्यतन रूप मिलता है। बर्मा में किसी राजा ने सन् 1767 ई. में स्याम की राजधानी अयुतिया को नष्ट कर दिया था। इस विजय के बाद राजा ने बहुत से बंदियों को अपने साथ ले गया था, जो बर्मा में स्याम के राम नाटक का अभिनय करने लगे। स्याम की रामकथा के आधार पर 'यू तो' ने सन् 1800 ई. में 'राम यामन' की रचना की थी, जो बर्मा का सबसे महत्त्वपूर्ण काव्य माना गया है। वर्तमान में राम नाटक जिसे बर्मा की भाषा में 'यामप्वे' कहा जाता है, अत्यधिक लोकप्रिय है। इस नाटक के सभी अभिनेता मुखौटा लगाते हैं और अभिनय के दिन मुखौटे की पूजा भी होती है। स्याम के रामकियेन पर निर्भर होने के बावजूद कथानक में यदा-कदा मौलिकता पाई जाती है। 'सीताहरण' कथानक यहां बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस नाटक में शूर्पणखा (नाम गांबी) का मृग का रूप धारण करके राम को दूर ले जाती है और राम से आहत किए जाने पर राक्षसी रूप में प्रकट हो जाती है। राम की सहायता के लिए जाने के पूर्व लक्ष्मण कुटी के चारों तरफ तीन रेखाएं खींचकर कुटिया को सुरक्षित कर देते हैं जो

कथा हिंदेशिया तथा भारत आदि देशों में भी प्रचलित है।

निष्कर्षतः यह कहना युक्तिसंगत है कि आसियान देशों में हिंदी के विकास के स्फुट रूप मिलते हैं, फिर भी भाषा वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर हिंदी का प्रचार-प्रसार स्याम, मलेशिया, बर्मा, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड आदि देशों में जिस गति से हुआ है उस गति से दूसरे देशों में नहीं हुआ। वाल्मीकि रामायण सहित भारतीय भाषा में लिखित अन्य रामायणों के प्रभाव के कारण भी दक्षिण-पूर्व एशिया में हिंदी का विकास हुआ। मलय, स्याम, बर्मा, इंडोनेशिया आदि देशों में बौद्ध धर्म के साथ पाली और रामकथा के साथ संस्कृत और हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ जिसकी वजह से अनेक तत्सम शब्दों के रूप में अपनी ध्वयात्मकता तथा अर्थवत्ता दोनों दृष्टियों से उन देशों की भाषा में घुल मिल गए हैं और इसी का परिणाम है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी बोलने वालों की संख्या चीनी मंदारिन और अंग्रेजी की अपेक्षा सर्वाधिक हो गई है। इन आसियान देशों की संस्कृति की विरासत भारत की सांस्कृतिक विरासत है जिसको जागृत संस्थापित करना हमारे देश का महत्त्वपूर्ण दायित्व है। विश्व बाजार की बढ़ती होड़ और भारतीय संस्कृति तथा भाषा के विकास के माध्यम से हिंदी को विश्व भाषा के रूप में विकसित करने का प्रयास आज की अनिवार्यता बन गई है।

संदर्भ–

1. गगनांचल, विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक, 12 जुलाई, 2012, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आजाद भवन, नई दिल्ली।
2. (संचयन) डॉ. नीरज श्रीवास्तव, दक्षिण पूर्व एशिया सामग्री, इंटरनेट 2014, महालक्ष्मी कंप्यूटर, अनूपपुर।
3. भाषा विज्ञान–डॉ. राजमणि शर्मा, 1983, महाशक्ति साहित्य मंदिर, चौखंबा, वाराणसी।
4. रामकथा–फादर कामिल बुल्के, 2012, हिंदी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
5. रामचरितमानस–तुलसीदासकृत, गुटका, 2010, गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. विश्व भाषा हिंदी–राज केसर बानी (संपादक), राष्ट्रीय हिंदी सेवी संघ, रेसीडेंसी एरिया, इंदौर-452001
7. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1996, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 1968, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।

शब्दशिला भवन, अनूपपुर-484224 (म.प्र.)

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 से 5000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के संदर्भ में संपादक मंडल का निर्णय अंतिम और मान्य होगा।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgas.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

भारतीय संस्कृति में संघर्ष का प्रतीक--दीपक

प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

वरिष्ठ लेखक प्रो. योगेश चंद्र शर्मा पिछले साठ वर्षों से लेखन में सक्रिय। कहानी, व्यंग्य, नाटक सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। पूर्णकालिक लेखन।

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार इस संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में प्रकाश का तत्त्व है। आधुनिक विज्ञान की भी मान्यता यही है कि प्रारंभ में संपूर्ण ब्रह्मांड केवल एक आग का गोला था, जो कालांतर में विस्फोटों द्वारा अनेक टुकड़ों में बंट गया और उससे विभिन्न आकाशगंगाएं तथा सौरमंडल आदि बने। ऋग्वेद में जब अग्नि को आदिपुरुष कहा गया तो संभवतः उसका संकेत भी इस आदि प्रकाशपुंज की तरफ ही था। कठोपनिषद् में इसे विराट एवं विशाल ब्रह्मज्योति की संज्ञा दी गई है और सामवेद ने इसे अखंड और अक्षतज्योति का संबोधन देकर स्वयं ब्रह्म माना है। संपूर्ण ब्रह्मांड के सूर्य उसी आदि ज्योतिपिंड के टुकड़े हैं, जो आज भी अंधकार को मिटाने के लिए निरंतर संघर्षशील हैं। हमारा सूर्य भी उन्हीं में एक है और उसी सूर्य का अंश है दीपक, जो सूर्य की अनुपस्थिति में अंधकार से संघर्ष करते हुए हमें प्रकाश देता है। अंधकार से भयभीत होकर जब वेद का सूक्तकार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का उद्घोष करता है, तब दिन में सूर्य और रात्रि को दीपक ही उसे अंधकार से मुक्ति दिलाते हैं।

प्रकाश के स्रोत के रूप में मनुष्य का पहला परिचय सूर्य से ही हुआ था और इसलिए

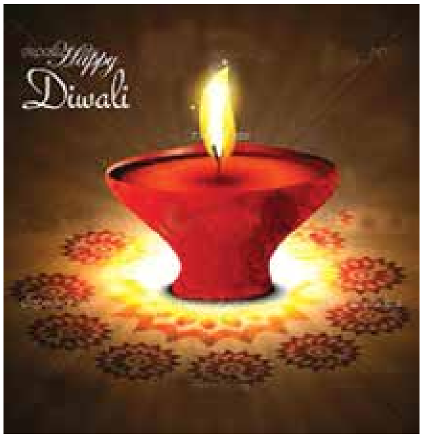

उसने देवता के रूप में उसका पूजन किया। आकाशी विद्युत भी उसे सूर्य के अंश के समान लगी, लेकिन अपनी क्षणभंगुरता के कारण वह आदिमानव में कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं कर सकी। चंद्रमा की ज्योति में उसे प्रकाश के साथ ही शीतलता का भी आभास हुआ, जो उसे अत्यंत भली लगी, लेकिन शीघ्र ही उसे इस बात का भी ज्ञान हो गया कि चंद्रमा के पास, स्वयं का कोई प्रकाश नहीं, अपितु वह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। इससे सूर्य के तेज के प्रति उसकी निष्ठा और अधिक बढ़ी। हमारे वैदिक साहित्य में सूर्य की प्रशंसा में लिखी गई ऋचाओं की संख्या काफी अधिक है।

आदिकाल के उस युग में दावाग्नि की घटनाएं काफी अधिक हुआ करती थीं। संभवतः दावाग्नि के माध्यम से ही आदिमानव का अग्नि से पहला परिचय हुआ और उसके बाद जब कुछ विशिष्ट काष्ठ या पत्थरों को रगड़कर उसने स्वयं अग्नि उत्पन्न करना सीख लिया, तब उसकी प्रसन्नता का कोई अंत नहीं रहा। उसने अग्नि की वंदना में ऋचाएं रचीं। ऋग्वेद में अग्नि के लिए कहा गया कि वह "अंधकार को मिटाता है, राक्षसों को डराता है, प्रकाश का आवाह्न करता है, चिरयुवा और प्राचीन पुरोहित है तथा जीवन का बड़ा आधार है।"

अग्नि के आविष्कार ने आदिमानव की अनेक समस्याओं का समाधान कर दिया। अंधकार को दूर रखकर प्रकाश की व्यवस्था बनाए रखने की समस्या का भी समाधान हुआ, लेकिन केवल आंशिक रूप में। अग्नि को निरंतर प्रज्ज्वलित रखने तथा उसके खतरे से अपने को बचाए रखने की समस्याएं भी उस समाधान के साथ जुड़ी हुई थीं। इस समस्या का समाधान हुआ, दीपक से। दीपक की ज्योति में अग्नि की ऊष्मा, सूर्य का प्रकाश तथा चंद्रमा की शीतलता, ये तीनों ही अपने सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं। इसीलिए स्कंदपुराण में दीपज्योति को, अग्निज्योति, सूर्यज्योति तथा चंद्रज्योति से भी अधिक उत्तम बतलाया गया है।

दीपक का आविष्कार सर्वप्रथम किसने, कैसे और कब किया, यह स्पष्ट नहीं है। इस संदर्भ में अनेक लोककथाएं अवश्य हैं, लेकिन उन्हें पूर्णतः विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। यूनानी लोककथा के अनुसार एक बार जब एक महिला मिट्टी के किसी पात्र में घी गर्म कर रही थी तो ऊपर से एक चूहे की पूंछ इस तरह आकर उस पात्र पर गिरी कि उसका एक हिस्सा बाहर निकला रह गया तथा दूसरा घी

में डूब गया। पूंछ के बाहर निकले हिस्से में चूल्हे की लौ से आग लग गई, जिससे वह पूंछ बत्ती की तरह जलने लग गई और घी का वह पात्र दीपक के समान बन गया। यूनानियों का विश्वास है कि इस घटना से ही दीपक का आविष्कार हुआ। जापान की एक लोककथा के अनुसार पुराने जमाने में जब एक महिला लकड़ी काटकर जंगल से वापस लौट रही थी तो दिन ढल गया और सर्वत्र अंधकार छा गया। उस अंधकार में वह महिला रास्ता भटक गई और तब भयभीत होकर वह रोने चीखने लगी। उस स्थिति में स्वयं वनदेवी अपने हाथ में दीपक लेकर उसे रास्ता दिखलाने आई। महिला ने पहली बार दीपक देखा और घर लौटकर वैसा ही दीपक बनाकर उसमें रोशनी जलाना प्रारंभ कर दिया।

यह निश्चित है कि सभी देशों में दीपकों का प्रचलन एक ही समय पर और एक ही रूप में शुरू नहीं हुआ होगा। इसमें लंबा समय लगा। दीपक की आवश्यकता तो थी ही। कुछ छोटी-बड़ी घटनाओं ने उसके स्वरूप की तरफ संकेत कर दिया और तब दीपक प्रचलन में आ गए। प्रारंभ में दीपक में पशुओं का ही योगदान अधिक रहा होगा। संभवतः उन्हीं के मृत शरीर के किसी हिस्से में, उन्हीं की चर्बी डालकर उनकी खाल की बत्ती से दीपक जलाना शुरू हुआ होगा। बाद में धीरे-धीरे इसमें सुधार हुआ। शुरू में पत्थर के दीपक बने, फिर सीपी के और उसके बाद मिट्टी के। प्रारंभ में ये दीपक टेढ़े-मेढ़े या सरल आकृति के रहे और बाद में धीरे-धीरे उनमें कलात्मकता का समावेश होता चला गया। पशुओं की चर्बी के स्थान पर घी या तेल का प्रयोग शुरू हुआ और कपास की बत्ती बनाई जाने लगी।

फ्रांस की लास्को नामक एक गुफा में कुछ दीपक मिले थे, जो छह से आठ हजार वर्ष पूर्व के माने जाते हैं। इन दीपकों को वहां सर्वाधिक प्राचीन दीपक माना जाता है। ये दीपक पशुओं की कलात्मक आकृति में पत्थर के बने हुए हैं। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा (पाकिस्तान), सूसा (ईरान), उर (ईराक), गीजा (मिस्र), कालीबंगा (राजस्थान) तथा टंगवाड़ा (उज्जैन) में खुदाई में मिट्टी के दीपक भी मिले हैं। मोहनजोदड़ो में तो ऐसी महिलाओं की भी प्रतिमाएं मिली हैं, जिनके सिर पर दीपक बने हुए हैं। ये प्रतिमाएं उस समय की कलात्मक प्रतिभा को मुखरित करती हैं। कायथा (म.प्र.) में 3500 वर्ष पूर्व का एक ऐसा दीपक मिला है, जिसमें बत्ती रखने का स्थान दीपक के बीच में बना हुआ है। ये प्राचीन दीपक इस तथ्य की तरफ संकेत करते हैं कि दीपकों की आकृति में शनैः शनैः विकास हुआ है।

आधुनिक युग में दीपक केवल मिट्टी के ही नहीं रहे, विभिन्न धातुओं के भी बनने लगे हैं। उनके आकार-प्रकार में भी काफी परिवर्तन हुए हैं। अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग प्रकार के दीपक बनने लगे हैं। उनके नाम भी उद्देश्य और आकृति के अनुरूप अलग-अलग हैं। उदाहरण के लिए मंदिर के गर्भगृह में सदैव जलते रहने वाले दीपक को 'नंदादीप' और उसके बाहर दोनों तरफ किसी महिला आकृति के हाथों में रखे दीपक को 'दीपलक्ष्मी' कहते हैं। मंदिर के सभागारों में भक्तों को प्रकाश देने वाले दीपक को 'पद्मदीप' तथा तुलसी के पौधे के समीप रखे दीपक को 'वृंदावनदीप' कहते हैं। 'वृंदावनदीप' को हवा के झौंकों से बचाने के लिए अक्सर उसके चारों तरफ जाली भी बनी होती है। जिस दीपक से मंदिर में आरती की जाती है, उसे 'आरती दीपक' की संज्ञा दी जाती है तथा उसे पकड़ने के हत्थे की आकृति के अनुसार उसे भी अलग-अलग अनेक नाम दिए जाते हैं। यथा मत्स्याकृति, मकराकृति, सर्पाकृति आदि। 'आरती दीप' में एक से लेकर 51 दीपशिखाएं तक प्रज्ज्वलित करने की व्यवस्था होती हैं।

विद्युत के आविष्कार के उपरांत भी दीपक का महत्त्व कम नहीं हुआ। घी और तेल के बढ़ते मूल्यों ने दीपक के प्रयोग को कुछ कम अवश्य कर दिया, लेकिन उसके महत्त्व को कम नहीं किया। धार्मिक, मांगलिक और पवित्र कार्यों के लिए अब भी हम दीपक को ही स्मरण करते हैं। मंदिरों के बाहर बिजली की कितनी ही जगमग रहे, आरती अब भी दीपक से ही उतारी जाती है। दीपावली पर भी विद्युत की बढ़ती चमक-दमक के बावजूद, लक्ष्मी-पूजन, दीपक से ही होता है और वह भी घी के दीपक से। लक्ष्मी-पूजन के अतिरिक्त भी प्रत्येक गृहस्थी दीपावली पर घी या तेल के कुछ दीपक अवश्य जलाता है।

भारतीय संस्कृति में दीपक को बहुत महत्त्व दिया गया है। किसी भी देव-पूजन से पहले दीपक-पूजन किया जाता है और उससे विनती की जाती है कि पूजापर्यंत वह अविराम रूप से जलता रहे। वायु-विकार से रहित स्थिर रूप से जलने वाले दीपक की, गीता में संयत ज्ञान-योगी से उपमा दी गई है (6-19)। भारतीय संस्कृति में दीपक का महत्त्व जन्म से मृत्यु तक निरंतर बना रहा है। प्रसूता के कक्ष में दीपक को इस प्रकार से रखने की व्यवस्था दी हुई है कि उसका प्रकाश मां के चेहरे पर पड़े और वहां से परावर्तित होकर वह बच्चे के चेहरे पर जाए। मृतक के कर्मकांड में भी दीपक आवश्यक है। दाह-संस्कार वाले स्थान पर भी दीपक जलाने की प्राचीन परंपरा है। दीपक, प्रकाश, ज्ञान और सत्य का प्रतीक माना जाता है। वह भूले हुए पथिकों को और भटकी हुई आत्माओं को रास्ता दिखलाता है। दीपक की लौ के रंग के आधार पर हमारे यहां भविष्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने का उपाय भी दिया हुआ है। 'पुरुषोत्तम माहात्म्य' में कहा गया है–

''रुक्षैर्लक्ष्मी विनाशः स्यात
श्वेतैरन्नक्षयो भवेत्।

अति रक्तेषु युद्धानि मृत्युः
कृष्ण शिखांषु च।।''

अर्थात् सादा, रूखी ज्योति लक्ष्मी का विनाश, श्वेत-ज्योति अन्नसंग्रह का विनाश, अत्याधिक गहरी लाल ज्योति युद्ध और काले रंग की ज्योति मृत्यु का संकेत करती है।

दीपक जलाने या बुझाने आदि के बारे में भी हमारे प्राचीन ग्रंथों में विस्तृत व्यवस्था दी हुई है। दीपकों के आधार पर हमारे यहां दीपक-राग तथा दीपक-नृत्य भी हैं, जो अत्यंत प्रभावशाली हैं। प्राचीन मान्यता के अनुसार हमारे यहां दीपक-राग से बुझे दीपकों को जला दिया जाता था। देश के विभिन्न भागों में यत्किंचित विभिन्नताओं के साथ दीपक-नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। विवाह के समय आटे का बना हुआ दीपक जलाया जाता है, जिसे 'पिष्टदीप' कहते हैं। पथिकों को रास्ता दिखलाने के लिए 'आकाशदीप' की परंपरा हमारे यहां काफी पुरानी है। भारतीय संस्कृति के अनुसार दीपक, सुख सौभाग्य का संदेशवाहक है। इसीलिए दीपक जलाने का उद्देश्य केवल प्रकाश ही नहीं होता, सुख सौभाग्य प्राप्त करना भी होता है। दीपक के साथ प्रसन्नता की भावना भी जुड़ी हुई है और इस प्रसन्नता का उपयोग मनुष्य अपने इष्ट मित्रों के साथ मिलजुल कर करना चाहता है। इसी से हमारे समाज में दीपदान की परंपरा चल निकली। दीपदान एक पवित्र और धार्मिक कार्य है। कार्तिक मास में इसका विशेष माहात्म्य माना गया है। पत्तों से बने द्रोण में दीपक रखकर उसे पवित्र नदियों में अथवा सरोवरों में बहाने की परंपरा है। दक्षिण भारत में दीपदान की सोलह विधियां बतलाई गई हैं। मथुरा में यमुना के विश्रामघाट पर बहते और जगमगाते दीपक अद्भुत छटा बिखेरते हैं।

दीपक ने साहित्यकारों को भी अत्याधिक प्रभावित किया। नारी सौंदर्य को प्रारंभ से ही दीपशिखा से उपमा दी जाती रही है। संस्कृत के स्तंभ-कवि कालिदास ने इंदुमती के स्वयंवर के समय उसकी तुलना चलती-फिरती दीपशिखा से करते हुए लिखा कि वह जिस राजा के सामने से गुजरती, वहां उसी क्षण प्रकाश फैल जाता और जब वह आगे बढ़ जाती हो वह स्थान ज्योतिहीन तथा मलिन दिखलाई देने लगता—

''संचारिणी दीपशीखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा
नरेंद्र मागहि इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपाल।''

गोस्वामी तुलसीदास ने जनकसुता जानकी की तुलना दीपशिखा से करते हुए लिखा—

''सुंदरता कहुं सुंदर करई।
छविगृह दीपशिखा जनु बरई।।''

दीपक, अंधकार के विरुद्ध अनवरत संघर्ष का प्रतीक है। किसी भी परिस्थिति में यह पराजय स्वीकार नहीं करता। उसका दायरा भले ही सीमित हो, किंतु उसमें वह अजेय और अक्षुण्ण साहस का प्रतीक है। दीपक हमें आत्मविश्वास का संदेश देता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए वेद, मनुष्य को कहते हैं—''तू ही तेरा दीपक बन, तू ही तेरा सूर्य बन तथा अपनी शक्तियों पर श्रद्धा रख।'' दीपक का यह स्वरूप आज के थके-हारे और तनावग्रस्त मानव के लिए एक आदर्श प्रेरणा है।

10/611, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राज.)

द्रविड़भाषा और साहित्य

डॉ. जितेंद्रकुमार सिंह 'संजय'

युवा लेखक डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय' की हिंदी आलोचना, काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र एवं भाषाविज्ञान पर डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के जूनियर फैलो अवार्ड सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति : उप प्राचार्य, श्री भगवान सिंह महाविद्यालय, भगवानपुरम्, दुबार कलां, मिर्जापुर-231211 (उ.प्र.)

भारतवर्ष के दक्षिणी भूभाग की भाषाएं द्रविड़ भाषा-परिवार की पुत्रियां हैं। इनका इतिहास अत्यंत समृद्ध है। 'द्रविड़' नाम देशवाचक है। भौगोलिक अभिधान के रूप में इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है। भारत के दक्षिणी भूभाग के ब्राह्मणों के लिए 'द्रविड़' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'स्कंदपुराण' में विवृत है—

"कर्णाटाश्चैव तेलङ्गाः राष्ट्रवासिनः।
आन्ध्राश्च द्राविड़ा पञ्च
विन्ध्य दक्षिणवासिनः।।"[1]

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त पंचद्राविड़ाः पद की व्याख्या करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा लिखते हैं—"कर्णाट, तैलंग, गुर्ज्जर (गुजरात), राष्ट्र (महाराष्ट्र) और आंध्र-विंध्याचल से दक्षिण दिशा में इन पांच देशों में निवास करने वालों को 'पंचद्रविड़' कहते हैं। इससे तो उन पांच देशों की द्रविड़ संज्ञा पाई जाती है, जो मद्रास से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ है।"[2]

वस्तुतः आधुनिक अर्थ में भारतीय भाषाओं का अध्ययन पाश्चात्य विद्वानों ने किया और हमारे देश की भाषाओं के पारिवारिक नामकरण भी उन्हीं की देन है। 'आर्यभाषा-परिवार' नामकरण प्रो. मैक्समूलर द्वारा किया गया है[3] और 'द्रविड़ भाषा-परिवार' नामकरण पादरी राबर्ट काल्डवेल ने किया है।[4] विद्वानों ने नामकरण में उनके प्रचलन को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। कालांतर में भाषाविदों ने इन नामकरणों को प्रायः स्वीकार कर लिया। इस समय ये दोनों ही परिवार भारतवर्ष की भाषाओं के दो प्रधान परिवार हैं। संप्रति 'द्रविड़ भाषा-परिवार' की भाषाओं के चार प्रदेश हैं—तमिलनाडु (तमिल भाषा), आंध्रप्रदेश (तेलुगु भाषा), कर्नाटक (कन्नड़ भाषा) और केरल (मलयालम् भाषा)। इन प्रांतों का राजनीतिक विभाजन भाषाओं के आधार पर हुआ है। चारों ही प्रांत भौगोलिक क्रम में सलग हैं और स्वतंत्र परिवार के पार्थक्य को व्यक्त करते हैं। द्रविड़-परिवार—दक्षिण भारत का प्रमुख भाषा-परिवार है।

प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर के.ए. नीलकंठ शास्त्री अपनी सुप्रथित पुस्तक 'नंद-मौर्य-युगीन भारत' में 'द्रविड़' शब्द और 'द्रविड़-भाषा' की मीमांसा करते हुए लिखते हैं—"वर्तमानकाल में द्रविड़ भाषा-परिवार भारत तक ही सीमित है, परंतु यदि आदिम द्रविड़ों को भूमध्यसागरीय प्रदेश का माना जाए तो द्रविड़ों को उस बड़ी जाति का मानना चाहिए जिसकी मान्यताएं प्राचीन ईजीयन और लघु एशिया के लोग थे और जो भोरोपीय हेलेनियों के यूनान में आने से पहले यूना और आइसलैंड और लघु एशिया में रहते थे। मैंने सुझाया है कि इन लोगों की एक जाति का नाम 'द् र् (अ) मिल्' या 'द् र् (अ) मिज़्' था, जिसकी एक शाखा वर्तमान क्रीट द्वीप में पाई जाती है। उसके नाम का यूनानी रूपान्तर होकर 'टरमिलई' हो गया है। एक दूसरी शाखा, 'लीशिया' में दक्षिण लघु एशिया में रहती है और 'ट्रम्मिलि' कहलाती है। इस भूमध्यसागरीय जाति के जिन लोगों ने भारत पर आक्रमण किया उनकी अनेक उपजातियां थीं। ड्रमिज़् उन्हीं में से एक थी। आर्य प्रभाव में आकर इनको 'ड्रमिड' अथवा 'ड्रमिल' कहा जाने लगा। अंत में जाकर उसका रूप 'द्रविड़' हो गया। यह सब ईसा-काल के पहले की बात है (ईसा के समय के आसपास वह उपजाति अपने को 'ड्रमिज़्' कहती थी)। उस समय तक वे लोग सुदूर दक्षिण भारत में बस चुके थे और अपने राज्य स्थापित कर चुके थे और अपनी विशिष्ट संस्कृति भी बना चुके थे। सिंहल द्वीप के आर्यभाषा-भाषियों ने, जो गुजरात और सिंध से वहां आकर बसे थे, उक्त 'ड्रमिज' नाम का उच्चारण सुना और अपनी पालि भाषा में और सिंहली भाषा में भी 'ड्मिल' लिखा। यूनान और मिस्र के व्यापारियों को उसका उच्चारण 'ड्मिर्' सुनाई दिया और उसके स्थान को उन्होंने 'डमिरका' नाम दिया, जो स्पष्ट ही 'डमिज़्कम' था। तब कतिपय बहुव्यापी ध्वनि-परिवर्तनों के कारण द्रमिज, ड्रमिज़् (संभवतः कन्नडिगों की) भाषा में भी परिवर्तन हुआ जिसमें एक ही घोष स्पर्श का अघोष में परिवर्तन ग्, ज्, ड्, द्, ब् के स्थान पर क्रमशः क्, च्, ट्, ज्, प् हो गया। ईसा की कुछ शताब्दियों के बाद यह भाषा उस अवस्था में पहुंची, जो प्राचीनतम तमिल ग्रंथों (संगम ग्रंथों) में मिलती है। अब इस भाषा का नाम 'तमिज' या 'तमिल' हो गया जो आज भी इसके 'तमिल' नाम में सुरक्षित है।"[5]

प्रो. नीलकंठ शास्त्री की उपर्युक्त मीमांसा पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव से मुक्त नहीं है। 'द्रविड़' शब्द का संबंध उन्होंने 'तमिल' से संपृक्त किया है। भाषा-परिवार के रूप में द्रविड़-परिवार की मूल भाषा तमिल को माना गया है, किंतु 'तमिल' के स्थान पर 'द्रविड़' में भौगोलिक व्याप्ति होने के कारण तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम्‌भाषी क्षेत्र भी आ जाते हैं। अतः द्रविड़ नाम ही प्रासंगिक है।

तमिल भाषा एवं साहित्य

तमिल भाषा, द्रविड़ भाषा-परिवार की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में अभी तक यह निर्णय नहीं हो सका है कि किस समय इस भाषा का प्रारंभ हुआ। विश्व के विद्वानों ने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के समान तमिल को भी अति प्राचीन तथा संपन्न भाषा माना है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा तमिल की विशेषता यह है कि यह अति प्राचीन भाषा होकर भी लगभग 2500 वर्ष से अविरत रूप से आज तक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यवहृत है। इस भाषा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर यह निर्विवाद निर्णय हो चुका है कि तमिल भाषा ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व ही सुसंस्कृत एवं सुव्यवस्थित हो गई थी।

भाषा के प्रथम नामकरण की तिथि पर विचार करने के लिए हमारे पास तमिल का प्रामाणिक ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' है। तमिल भाषा-साहित्य के विकास में आधारभूत तीन कविसंघों का विवरण तमिल-वाङ्मय में उपलब्ध होता है। 'तोल्काप्पियम्' द्वितीय कविसंघकाल का ग्रंथ है। विद्वानों ने इसे पाणिनि (400 ई.पू.) से पूर्व का माना है। इस ग्रंथ में पूर्ववर्ती ग्रंथ-लेखकों का भी उल्लेख है। इस ग्रंथ में तमिल पद का प्रयोग हुआ है। अतः इस प्रमाण के आधार पर तमिल भाषा को कहने वाला वह तमिल पद पाणिनि के व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' से भी पूर्व का है।

भाषामूलक प्रांतों के वर्गीकरण से तमिलप्रदेश आज अतीव संकुचित हो गया है। तमिल के सर्वप्राचीन ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' में तमिलप्रदेश की सीमा में उत्तर तिरुपति तथा दक्षिण में कुमरी मानी गई है। कुमरी से अभिप्राय आजकल की कन्याकुमारी से नहीं है। पुरातनकाल में कुमरी नामक नदी थी। उस समय कुमरी तथा पहुली नदी के मध्य तमिल के 49 देश विद्यमान थे। समय-समय पर हुए सागर-प्रलय में तमिल का विशाल भूभाग तथा वे देश विलीन हो गए हैं। किस प्रकार तमिलप्रदेश नष्ट हुआ, इसका विवरण तमिल के प्रमुख एवं प्राचीन महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की टीका से जाना जाता है। तमिलभाषा का तुलनात्मक व्याकरण लिखने वाले काल्डवेल ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि तमिलप्रदेश की सीमा समस्त कर्नाटक, पूर्व और पश्चिम-घाट के नीचे पालघाट से लगाकर कुमारी अंतरीप तथा उत्तर में वगोपसागर के उपकूल तक है। उन्होंने तमिलप्रदेश का क्षेत्रफल 60,009 वर्गमील माना है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार ईसा से अनेक शताब्दियों पूर्व तमिलभाषी प्रदेश पूर्व में जावा द्वीपसमूह से लेकर दक्षिण पश्चिम में अफ्रीका तक विस्तृत था। आज की गणना के अनुसार तमिलप्रदेश के 12 जिलों में तथा श्रीलंका में तमिल-जनभाषा है। आज संसार में इस भाषा के बोलने वालों की संख्या लगभग तीन करोड़ है।

भाषाओं के समान तमिल लिपि का भी विद्वानों ने अध्ययन कर निर्णय किया है। कुछ विद्वान् भारत की सभी लिपियों का संबंध ब्राह्मी लिपि से ही जोड़ते हैं, जो नागरी लिपि का आधार है। तमिल के महान् विद्वान् राघवय्यंगार का मत है कि तमिल की आदिम लिपि का संबंध प्राचीन मिस्री लिपि से है।

भारतीय भाषाओं में तमिल ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसकी वर्णमाला अन्य भाषाओं की वर्णमाला की अपेक्षा अति न्यून है। इस भाषा में 12 स्वर, 18 व्यंजन तथा एक विसर्ग सदृश अर्धस्वर है।

पाण्ड्य राजाओं के संरक्षण में तमिल साहित्य का संवर्धन हुआ। 'इरैयनार अहप्-पोरुल' नामक ग्रंथ में तमिल कविसंघों का जो विवरण दिया गया है, उसका सारांश यहां देना उचित होगा। इस ग्रंथ के अनुसार प्रथम कविसंघ ई.पू. 9,950 से ई.पू. 5,550 तक अर्थात् 4,400 वर्ष तक काव्य-निर्माण के काम की देखभाल करता रहा। इस कविसंघ के सदस्य 89 कवि थे। इस संघ का प्रधान ग्रंथ 'अगत्तियम्' नामक व्याकरण है, जो संप्रति अप्राप्य है। यह ग्रंथ 12,000 सूत्र में निर्मित तमिल भाषा का आलोचनात्मक ग्रंथ माना गया है। इस काल में 'परिपाडल', 'मुदुनारै', 'मुदुगुरुक' तथा 'कलवियलुरै' प्रभृति ग्रंथ लिखे गए। सामुद्रिक प्रलय होने के कारण पाण्ड्यों की राजधानी दक्षिण मदुरा सागरमग्न हो गई। तदनंतर कपाटपुरम् नामक स्थान पर पाण्ड्यों ने अपनी राजधानी का निर्माण कर द्वितीय कविसंघ की स्थापना की। इस संघ के 59 सदस्य थे। यह संघ लगभग 3,700 वर्ष तक साहित्य-निर्माण का कार्य करता रहा। ई.पू. 1,850 में इस संघ की समाप्ति हो गई। समाप्ति का कारण सागर की उथल-पुथल ही है। द्वितीय संघकाल के ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्', 'महापुराणा', 'इसैनुणुक्कुम', 'भूतपुराणम्' प्रभृति हैं।

अंत में वर्तमान मदुरै में तृतीय कविसंघ की स्थापना हुई। इसमें नक्कीरर आदि 49 कवि सदस्य थे। यह संघ 1,850 वर्ष तक रहा। किन्हीं अज्ञात कारणों से इस कविसंघ का विघटन हुआ। प्रथम और द्वितीय कविसंघ के दीर्घकाल तथा विवरणों के बारे में कुछ लोग संदेह करते हैं। उन कविसंघों के ग्रंथ भी आजकल उपलब्ध नहीं हैं। संप्रति विद्यमान ग्रंथ तृतीय कविसंघ के हैं। अतः तृतीय कविसंघ के संबंध में विद्वानों की आस्था बनी हुई है। इस आस्था का कारण मदुरै नगर में आज भी प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामग्री है। तृतीय कविसंघ के साहित्य में वर्णित मंदिर तथा मूर्तियों का प्राप्त होना तृतीय कविसंघ का सत्ता को प्रमाणित करता है।

आज तक के प्राप्त तमिल साहित्य को तमिल के विद्वानों ने विभिन्न कालों में विभाजित

किया है। इस काल-विभाजन के आधार पर पाठक तमिल साहित्य के क्रमिक विकास को ठीक से समझ सकते हैं। कालों का विभाजन इस प्रकार हैं—(1) संघपूर्वकाल, (2) संघकाल, (3) संघोत्तरकाल, (4) भक्तिकाल, (5) कम्बरकाल, (6) मध्यकाल तथा (7) आधुनिक काल।

द्वितीय कविसंघ का एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' लक्षण ग्रंथ है। इसके लेखक महर्षि अगस्त्य के शिष्य महर्षि तोल्काप्पियर हैं। 'तोल्काप्पियम्' पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' के सदृश अद्भुत रचना है। यह ग्रंथ ऐंद्र व्याकरण से प्रभावित है। खंडत्रय में विभक्त इस ग्रंथ में 1,660 सूत्र हैं, जिनमें क्रमशः अक्षर, शब्द तथा काव्य (विषयवस्तु एवं शैली) का विवेचन है।[6] संघकाल के प्रमुख काव्यग्रंथ संग्रह के नाम एट्टुत्तोगे (आठ संग्रह), पत्तुपाट्टु (दस कविताएं) और पदिनेण्कील्कणक्कु (अठारह लघुकविता-संग्रह) हैं। इन्हीं ग्रंथों में जगतप्रसिद्ध 'तिरुक्कुरल' नामक ग्रंथ भी हैं। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम की बहुत सुंदर एवं सजीव व्याख्या की गई हैं।

संघोत्तरकाल में महाकाव्यों की रचना हुई। तृतीय कविसंघ के अंतिम काल में उत्तरापथ से वैदिक, बौद्ध और जैन-धर्मावलंबी दक्षिणापथ आकर अपने अपने धर्म का प्रचार करने लगे। इस युग में ही संस्कृत और पालि भाषा का प्रचार हुआ। इसी समय इन भाषाओं का तमिल के साथ सम्मिश्रण हुआ। इस युग में पांच सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य—(1) शिलप्पदिकारम्, (2) मणिमेखलै, (3) जीवकचिंतामणि, (4) वलयापदि और (5) कुंडलकेशि की रचना हुई।

संघोत्तरकाल में महाकाव्य की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई। लगभग ई. सन् 600 में समस्त दक्षिण भारत में शैव धर्म का व्यापक प्रचार हुआ। इसी समय वैष्णव धर्म का प्रचार धीरे धीरे होने लगा। शैव (नायन्मार) और वैष्णव (आलवार) सारे देश में पद-यात्रा कर धर्म तथा भक्ति का प्रचार करने लगे। इस प्रकार भक्ति का युग प्रारंभ हुआ और शैव एवं वैष्णव धर्म-संबंधी भक्ति-गान और काव्यों की रचना विपुल मात्रा में हुई।

भक्तिधारा को प्रभावित करने वाले बारह आलवार (द्वादश वैष्णव) हैं। इन लोगों ने भी शैव संतों के समान सारे देश में भ्रमण कर वैष्णव धर्म और भक्ति का प्रचार किया। इनकी रचनाओं को 'दिव्यप्रबंधम्' (4,000 पद्य) कहा जाता है। आलवारों में सभी जाति में उत्पन्न संत थे। इन आलवारों के गेय पदों का आज तक मंदिरों में वेद के समान परायण किया जाता है।

भक्तिकालीन शैव-वैष्णव संत कवियों ने तमिल-साहित्य की सुरसरिता में वह गति उत्पन्न की, जिससे पुनः कवियों की प्रवृत्ति प्रबंधकाव्य रचना की ओर झुकी। इसी का परिणाम है कि भक्तिकाल के अंत में अनेक प्रबंधकाव्यों की रचना हुई। इस काल को विद्वानों ने प्रबंधकाल की संज्ञा से अलंकृत किया है। इसी युग में 'पेरियपुराण', 'कंबरामायण' तथा 'नलवेण्बा' आदि प्रबंध काव्यों की रचना हुई हैं। इस काल के प्रमुख कवि कंबर हैं। कुछ लोगों ने प्रबंधकाल को कंबर के नाम से 'कंबरकाल' भी माना है।

कंबर (12वीं शती) कृत रामायण 12 सहस्र 'विरुत्तम्' छंद में निर्मित है। यह ग्रंथ प्रबंधकाव्य होकर भी नाटकीय अंशों से पूरित है। अतः इसे विद्वान् लोग दृश्यकाव्य भी मानते हैं। तमिल काव्य-परंपरा का चरमोत्कर्ष कंबरकृत रामायण में पाया जाता है।

13वीं शती के पश्चात् लगभग 200 वर्ष तक का काल टीकाकाल समझा जाता है। इस युग में नवीन काव्यों की रचना न होकर संघकालीन तथा भक्तिकालीन ग्रंथों की टीकाएं लिखी हुई हैं। इसी समय से तमिल भाषा में गद्य का युग प्रारंभ होता है। प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' पर 'इलंपूरणम्' नामक टीका इसी युग में रची गई। 'तिरुक्कुरल्' की प्रामाणिक टीका इस युग की प्रसिद्ध कृति समझी जाती है। इस टीका के लेखक प्रसिद्ध भाष्यकार परिमेललगर हैं। नच्चिनार्किनियार इस युग के सर्वश्रेष्ठ टीकाकार समझे जाते हैं। इन्होंने तमिल के प्रसिद्ध काव्यों पर टीका लिखी है। इनकी टीका व्याकरण-ग्रंथ पर भी मिलती है।[7]

तेलुगु भाषा एवं साहित्य

अर्वाचीन भारतीय-भाषाओं में 'तेलुगु' एक प्रधान भाषा है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 1,13,110 वर्गमील प्रसृत है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी के पश्चात् सर्वाधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषा तेलुगु ही है। इनके अन्य नाम 'तेनुगु' एवं 'आंध्र' हैं। 'आंध्र' शब्द का प्रयोग क्रमशः 'जातिबोधक', 'देशबोधक' एवं 'भाषा-बोधक' अर्थ में होता है। 'तेनुगु' और 'तेलुगु' शब्द 'आंध्र' के परवर्ती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण[8], महाभारत के सभापर्व, रामायण[9], गिरिनार के गुहाभिलेख[10], शाहबाजगढ़ी के शिला-लेख, मनुस्मृति, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मांडपुराण प्रभृति में आंध्र जाति का उल्लेख मिलता है। इतिहासकार प्लिनी ने भी आंध्र जाति का उल्लेख किया है। इतना सब होते हुए भी स्वयं आंध्र शातकर्णी (सातवाहन) और इक्ष्वाकु शासकों ने अपने शिलालेखों[11] में आंध्र जाति का उल्लेख नहीं किया है। संभवतः वे लोग विश्वामित्र द्वारा अभिशप्त संतति के अनुयायी कहलाना न चाहते थे। पुनः तृतीय शताब्दी के आसपास के पल्लवराज शिव स्कंदवर्मा के एक ताम्रपत्र (मैदवोलु में प्राप्त) और हरिहडगल्लिवाले लेख में आंध्र राजाओं के राज्य के लिए सर्वप्रथम 'अंधापथीयो' (आंध्रपथ) और 'सातवाहनिरट्ठ' (सातवाहन राष्ट्र) नाम मिलते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग की रचनाओं में भी इस राज्य के लिए 'आंध्रमंडल' नाम मिलता है। शातकर्णिराज्य अपने शिलालेखों में 'दक्षिणापथ' नाम ही देते थे। नासिक के गोतमीबालाश्री के लेख में (दक्षिण) 'पथेसरो' उल्लेख मिलता है।

'आंध्र' शब्द का प्रयोग भाषा के लिए होने लगा है। तेलुगु के सर्वप्रथम महाकाव्य 'भारतग्रंथ' के रचयिता नन्नय भट्टारक के समय में उनके आश्रयदाता राजराज द्वारा प्रदत्त एक ताम्रपत्र में नन्नय के सहयोगी नारायण भट्ट को 'आंध्रकविताविशारद्' कहा गया है। इनका समय 11वीं शती है, किंतु उस समय के पूर्व ही यहां की भाषा के लिए 'तेनुगु' नाम व्यवहार में था और 'तेलुगु' नाम 1200 ई. के आसपास प्रचलित हुआ। 'तेरुगु' या 'तेनुगु' शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में पंडितों में मतैक्य नहीं है। तेलुगु शब्द को कुछ लोग 'त्रिलिंग' का विकार मानते हैं तो दूसरे 'त्रिकालिंग' का।

भाषाशास्त्रियों के अनुसार तेलुगुभाषी की उत्पत्ति के बारे में दो मत पाए जाते हैं। द्रविड़ भाषाओं का सर्वेक्षण करके उनका तुलनात्मक व्याकरण प्रस्तुत करने वाले काल्डवेल तथा उनकी तरह सोचने वाले तेलुगु को द्राविड़भाषा-परिवार का एक सदस्य स्वीकार करते हुए भारत-यूरोपीय-परिवार से उसे भिन्न मानते हैं, किंतु आंध्रभाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं का समन्वयात्मक अध्ययन करके 'आंध्रभाषा चरित्र' नामक वृहदाकार ग्रंथ प्रस्तुत करने वाले चिलुकूरि नारायण राव का मत है कि तेलुगु आर्य-परिवार की भाषा है। जिस प्रकार आधुनिक भारतीय भाषाएं प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि अपने-अपने क्षेत्रीय भाषा-विकारों की परिणाम हैं, उसी प्रकार तेलुगु भी दक्षिण भारत में ईसा के पूर्व और बाद की सदियों में प्रचलित प्राकृत का ही, जिसमें हालकृत 'गाथासप्तशती' और गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' वगैरह हैं, क्रमानुसार विकसित रूप है। पश्चिमी पंडित ओल्डनवर्ग ने अपने 'त्रिपिटक' नामक ग्रंथ के दूसरे खंड की भूमिका में लिखा है कि लंका में प्राप्त 'त्रिपिटक' आदि बौद्ध ग्रंथों की भाषा 'पालि' उस समय आंध्र जनपदों में व्यहत प्राकृत ही थी। दोनों में अंतर नहीं है। तेलुगुभाषा के व्याकरण-ग्रंथ 'आंध्र शब्द-चिंतामणि' में नन्नय भट्टारक ने तेलुगु के प्रादुर्भाव के बारे में आज से लगभग 900 वर्ष पूर्व स्पष्ट लिखा है कि ''आद्यप्रकृतिः प्रकृतिश्चाद्ये, एषा तयोर्विकृतिः।'' नारायण राव लिखते हैं कि ''सच बात तो यह है कि ई.पू. 300 से लेकर ई. सन् 500 तक दक्षिण भारत में व्याप्त प्राकृतों को लेकर शोधकार्य पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ। दक्षिणी प्राकृतों में 'द्राविड़ी प्राकृत' भी थी। अन्य भारतीय प्राकृतों की तरह उसका भी विकास हुआ। दूसरी प्राकृतों पर द्रविड़ प्राकृत का जैसा प्रभाव पड़ा, उसी तरह द्रविड़ भाषाओं पर भी अन्य प्राकृतों का उतना ही असर रहा। प्राचीनतम आर्यभाषाओं से ही जिस प्रकार दूसरी प्राकृतें निकली थीं, उसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं का भी विकास हुआ है।''

जहां तक तेलुगु लिपि का प्रश्न है, यह तो सभी लोग मान चुके हैं कि वह प्राचीन ब्राह्मी की दक्षिणी शाखा का ही परिणाम है। दक्षिण की चारों लिपियों में कन्नड़ लिपि के साथ इसका घनिष्ठ संबंध है। दोनों प्रायः एक-सी लगती हैं। लोग यह मानते हैं कि 3-4 शताब्दियों के पूर्व तक दोनों भाषाओं की एक ही लिपि थी।

तेलुगु-वर्णमाला अत्यंत वैज्ञानिक एवं संपूर्ण है। उसमें 56 अक्षर हैं। तेलुगु भाषा के सभी शब्द अजन्त या स्वरान्त होते हैं। हिंदी आदि भारतीय भाषाओं की तरह व्यजनांत नहीं। इससे यह भाषा संगीत के लिए अत्यंत उपयुक्त है। कर्नाटक संगीत के सभी वाग्गेयकारों ने इस भाषा में कृतियां रची हैं। तेलुगु की इसी संगीतात्मकता को देखकर काल्डवेल ने उसे 'पूर्वी इटालिया' कहा है। तेलुगुभाषा-भाषी जनता का उच्चारण प्रायः स्पष्ट एवं शुद्ध रहता है। समस्त ध्वनियों का उच्चारण वे कर लेते हैं।

आधुनिक तेलुगु के युगप्रवर्तक साहित्यकार कं. वीरेशलिंगम् पन्तुलु के अनुसार तेलुगु के 1250 वर्ष के साहित्य का काल-विभाग इस प्रकार है—(1) अज्ञातयुग (700 ई. से 1050 ई. तक), (2) आदियुग (1050 ई. से 1500 ई. तक), (3) मध्ययुग (1500 ई. से 1750 ई. तक), (4) वर्तमानयुग (1750 ई. से अद्यतन)[12]।

अज्ञातयुग में 'तुम्मेदपदमुलु' (भ्रमरगीत), 'गोव्विपदमुलु', 'यक्षगानमुलु', 'मेलुकोलुमुलु' (प्रभातियां), 'सुद्दुलु' प्रभृति काव्यविधाओं का प्रणयन हुआ है। आदियुग में साहित्य का प्रणयन धार्मिक आस्था के साथ हुआ। आदिकवि नन्नय भट्टारक ने अपने आश्रयदाता चालुक्यनरेश राजराज नरेंद्र की प्रेरणा से महाभारत का तेलुगु काव्यानुवाद किया। नन्नय की असमय मृत्यु हुई, जिसके कारण महाभारत का पूरा अनुवाद नहीं हो पाया। शेष कार्य कविब्रह्म तिक्कन सोमयाजी एवं महाकवि प्रबंधपरमेश्वर के द्वारा पूर्ण हुआ। तेलुगु साहित्य में इन्हें 'कवित्रयी' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

राजा नन्नेचोड, नाचन सोमनाथ, पाल कुरिक सोमनाथ, रायनि भास्कर, बमोर पोतना, महाकवि श्रीनाथ प्रभृति इस युग के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं तथा 'कुमारसम्भवमु', 'उत्तर हरिवंशमु', 'भास्कर रामायणमु', 'आंध्र महाभागवतमु', 'काशीखंडमु', 'शृंगारनैषधमु', 'बसवपुराणमु' प्रभृति साहित्य के गौरवग्रंथ हैं। इनमें अंतिम रचना स्वतंत्र ग्रंथ है।

मध्ययुग को प्रबंधयुग भी कहा जाता है। यह तेलुगु साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। महाकवि श्रीनाथ के साथ अनुवादों की परंपरा रुक-सी गई। सोलहवीं शती के प्रारंभ से स्वतंत्र महाकाव्य-प्रणयन का सूत्रपात हुआ। महात्मा विद्यारण्य के दिशा-निर्देशन से संचालित विजयनगर के राजाओं में कृष्णदेवराय सर्वाधिक यशस्वी शासक थे। वे स्वयं विद्वान् कवि थे और उन्होंने अपने दरबार 'भुवन-विजय सभा' में अल्लसानि पेद्दना, नंदितिस्मना, तेनालीरामकृष्ण, धूर्जटि, भटुमूर्ति मादयगारि मल्लना, अय्यलराजु रामभद्रकवि, कांदुकूरि, रुद्रकवि संज्ञक 'अष्ट दिग्गज' महाकवियों को प्रश्रय दिया था, जिन्होंने 'मनुचरित्रमु', 'पारिजातापहरणमु', 'पांडुरंगमाहात्म्यमु', 'कालहस्तीश्वरशतकमु', 'बसुचरित्रमु' आदि अद्वितीय महाकाव्य रचे। स्वयं श्रीकृष्णदेवराय ने 'आमुक्तमाल्यदा'

नामक महाग्रंथ का प्रणयन किया। भट्टुमूर्ति ने 'बसुचरित्रमु' नामक प्रबंध के अतिरिक्त 'वरसभूपालीयमु' नामक रीतिग्रंथ एवं 'हरिश्चंद्र नलोपाख्यानमु' नामक द्व्यर्थी काव्य का प्रणयन किया। इनके अलावा पिंगलि सूरन्ना नामक एक और महाकवि ने 'कलापूर्णोदयमु' नामक अद्भुत महाकाव्य रचा, जिसके समान सर्वलक्षणसंपन्न अन्य काव्य दृष्टिगत नहीं होते।

इस युग के उत्तरार्द्ध में साहित्य का रंगमंच विजयनगर राज्य के पतन के बाद, दक्षिण में तंजाऊर के राजाओं के आश्रय में चला गया। रघुनाथरायलु, अच्युत विजयराघव विद्वत्कवि एवं कविपोषक नरेश थे। तंजाऊर की ही भांति मदुरै में भी तिरुमल नायक आदि राजाओं ने साहित्य को बहुत प्रश्रय दिया था। सुकवि चेमकूर-वैंकटकविकृत 'विजय-विलास', 'शेषम् वेंकटपतिकृत 'तारा-शशांकविजय', कवयित्री मुद्दुपलनिकृत 'राधिकास्वान्तनमु', विजयराघवकृत 'रघु-नाथनायकाभ्युदयमु', कवयित्री रंगाजम्माकृत 'उषापरिणयमु' प्रभृति अनुपम ग्रंथ किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकेंगे। इस युग के पूर्वार्द्ध की कवयित्री आतुकूरि मोल्ला ने एक सरस रामायण का प्रणयन किया जो तेलुगुभाषी जनता के मध्य अत्यंत लोकप्रिय है।

इन अनुवादों तथा प्रबंधों के अतिरिक्त प्राचीन तेलुगु का शतक-साहित्य भी विशेष महत्त्व रखता है। शतककाव्य-प्रणयन की परंपरा अनुवाद-युग में ही प्रारंभ होकर अन्य साहित्यिक रचनाओं के समानांतर बराबर चलती रही है। ई. सन् 1171 के सुप्रसिद्ध शैव कवि पंडितताराध्य की रचना 'शिवतत्त्व-सारमु' के साथ इस विधा का सूत्रपात हुआ था। कुल मिलाकर तेलुगु में 1000 से भी अधिक शतककाव्य लिखे गए थे, जिनमें 600 के लगभग उपलब्ध हैं। ये शतक भक्ति, शृंगार और नीतिपूर्ण रचनाएं हैं, जिनमें सौ या उससे अधिक संख्या में छंद हैं। प्रत्येक शतक का एक 'मकुट' होता है, जो प्राचीन हिंदी के सतसईकारों के नामों की तरह, रचना के प्रत्येक छंद में जोड़ा जाता है। तेलुगु के अत्यंत प्रचलित शतक-ग्रंथों में 'वृषाधिपशतक', 'नारायणशतक', 'दाशरथिशतक', 'बेमन-शतक', 'सुमतिशतक', 'आंध्रनायकशतक', 'भास्करशतक', 'नरसिंहशतक' प्रभृति उल्लेखनीय हैं। यथावाक्कुल अन्नमय्या पालकुटिकि सोमनाथ, पोतनामात्य, गोपन्ना, वेना, बद्देन, भास्कर, कूर्मनाथ कवि, कासुल पुरुषोत्तम कवि प्रभृति अन्यत्र प्रौढ़ एवं सफल शतककार हुए हैं।

प्राचीन तेलुगु साहित्य के दृश्यप्रबंधकों को यक्षगान कहा जाता है। संगीत, अभिनय एवं नृत्य, इन तीन कलाओं में प्रवीण कलाकार इनके प्रदर्शन किया करते थे। कन्दुक्करि रुद्रकविकृत 'सुग्रीवविजयमु' तंजाऊर के राजा विजयराघव कृत 'रघुनाथाभ्युदयमु', संतप्रवर त्यागराज कृत 'प्रह्लाद भक्तविजयमु' ऐसे दृश्यप्रबंधों में प्रधान हैं। 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'भागवत' की कथाओं को यक्षगानों के रूप में अभिनीत करने की अत्यंत प्राचीन परंपरा तेलुगु जन-जीवन में रही।[13]

कन्नड़ भाषा एवं साहित्य

कर्नाटक राज्य की भाषा को कन्नड़ कहते हैं। प्राचीन कन्नड़-काव्यों में कावेरी से गोदावरी तक कर्नाटक के विस्तार का उल्लेख मिलता है। नृपतुंग (814-877 ई.) नामक राष्ट्रकूट कवि ने कन्नड़ की सीमाओं का वर्णन इस प्रकार किया है–

''कावेरियिन्द गो-दावरिवरमिर्द
नाडदा कन्नड़ोल्।
भाविसिद जनपदं वसु-धावलय
विलीन विशद विषय विशेषं।।''[14]

प्राक्तन ग्रंथों में 'कन्नड़', 'कर्नाट', 'कर्नाटक' प्रभृति शब्द परस्पर पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। महाभारत में 'कर्नाट' शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है।[15] द्वितीय शताब्दी के तमिल-महाकवि इलंगो अडिगल-द्वारा रचित 'शिलप्पदिकारम्' नामक काव्य में कन्नड़ भाषा बोलने वालों का नाम 'करुनाडर' बताया गया है। वराहमिहिरकृत 'वृहत्संहिता', सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर', गुणाढ्यकृत पैशाची 'वृहत्कथा' आदि ग्रंथों में भी 'कर्नाट' शब्द का बराबर उल्लेख मिलता है।

यद्यपि कन्नड़ भाषा रामायण महाभारत काल में भी बोली जाती थी, तथापि ईसा के पूर्व लिखा हुआ कन्नड़ का न कोई ग्रंथ मिलता है, न कोई शिलालेख ही। बेलूर के पास हल्मिडि नामक गांव में प्राप्त शिलालेख में कन्नड़ के गद्य का सर्वप्रथम दर्शन होता है। यह शिलालेख सन् 450 ई. में लिखा माना जाता है। सातवीं शताब्दी में लिखे गए बादामि (बीजापुर जिले का एक गांव) और श्रवण-वेलगोला के शिलालेखों से कन्नड़ की सुंदर पद्य रचना का परिचय मिलता है।[16]

यद्यपि उपर्युक्त शिलालेखों के आधार पर यह बताया जा सकता है कि कन्नड़ में ईसा की सातवीं शताब्दी के पहले ही गद्य-पद्य की रचना हुआ करती थी, तथापि नवीं शताब्दी के पहले का कोई ग्रंथ अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। अब तक प्राप्त रचनाओं में सबसे प्राचीन ग्रंथ 'कविराजमार्ग' है। यह आचार्य दंडी के 'काव्यादर्श' पर आधारित रीतिग्रंथ है। इसका रचनाकाल सन् 815-877 ई. के बीच का माना जाता है। इस बात में विद्वानों में वैमत्य है कि इसके रचयिता मान्यखेट के राष्ट्रकूट चक्रवर्ती स्वयं नृपतुंग थे या उनके कोई दरबारी कवि। प्रो. मुगलि का यह निश्चित मत है कि नृपतुंग इसके लेखक नहीं थे। उनका अनुमान है कि इसके लेखक नृपतुंग के दरबारी कवि श्री विजय थे।[17]

अब तक कन्नड़ साहित्य के इतिहास पर जितने छोटे-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं, उनका अवलोकन करने से यही मालूम होता है कि काल-विभाजन के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सर्वाधिक मान्य काल-विभाजन प्रो. मुगलि का है। (1) पंपपूर्वयुग (950 ई. तक), (2) पंपयुग (950 ई. से 1150 ई. तक), (3) वसवयुग (1150 ई. से 1500 ई. तक), (4) कुमार-व्यास युग (1500 ई. से 1900 ई.

तक) और (5) आधुनिक युग (1900 ई. से अद्यतन)।

कन्नड़ साहित्य के इतिहास में पंपयुग (950-1150 ई.) को स्वर्णयुग के नाम से भी जाना जाता है। इस युग में छंदशास्त्र, काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, कोश, ज्योतिषशास्त्र, चिकित्साशास्त्र प्रभृति विषयों पर सर्वांगपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन हुआ। इस प्रकार इस युग में कन्नड़ साहित्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई। इस युग के कवि पंप, पोन्न तथा रन्न 'रत्नत्रयी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। महाकवि पंप अथवा आदि पंप से दो काव्य रचे–'आदिपुराण' और 'विक्रमार्जुनविजय' अथवा 'पंप-भारत'। 'आदिपुराण' में जिनसेनाचार्यकृत संस्कृत पूर्वपुराण के आधार पर प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ का जीवन-चरित चित्रित किया गया है और 'विक्रमार्जुनविजय' में महाभारत के कथानक का निरूपण किया गया है। ये दोनों चंपूकाव्य हैं। पंप कन्नड़ के आदिकवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 902 ई. में हुआ था।

पोन्न पंप के समकालीन थे। इन्होंने 'शांतिपुराण', 'जिनाक्षरमाला' तथा 'भुवनैक-रामाभ्युदय' नामक ग्रंथत्रयी का प्रणयन किया, जिसमें अंतिम ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। रन्न की मुख्य रचनाएं दो हैं–'अजिनपुराण' तथा 'साहसभीमविजय' अथवा 'गदायुद्ध'। 'गदायुद्ध' के नायक भीम हैं। गदायुद्ध में भीम जैसे पात्र के द्वारा वीर रस की अनूठी व्यंजना हुई है। इसी काव्य से रन्न की कीर्ति अचल हुई है।

पंपयुग के अन्य कवियों में चाउंडराय, नागवर्म (प्रथम), दुर्गसिंह, चंद्रराज, नागचंद्र, नागवर्म (द्वितीय) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। चाउंडरायकृत 'चाउंडराय पुराण' प्राचीन कन्नड़ गद्य का सुंदर उदाहरण है। नागवर्म (प्रथम) के दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं–'कर्नाटक-कादंबरी' तथा 'छंदोबुधि'। 'कर्नाटक-कादंबरी' बाण की कादंबरी का कन्नड़ानुवाद है। प्रो. मुगलि का मत है कि कन्नड़ में अनुवादित जितने ग्रंथ हैं, उनमें नागवर्म (प्रथम) की 'कर्नाटक-कादंबरी' सर्वश्रेष्ठ है।[18] चंद्रराज और श्रीधराचार्य नागवर्म (प्रथम) के समकालीन कवि हैं। चंद्रराज का कामशास्त्र पर लिखा हुआ 'मदनतिलक' नामक ग्रंथ और श्रीधराचार्य का 'जातकतिलक' नामक ज्योतिष ग्रंथ, दोनों उत्तम कृतियां हैं। इसी काल में दुर्गसिंह ने 'पंचतंत्र' का अनुवाद किया, जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के मध्य नागचंद्र नामक अन्य कवि द्वारा 'मल्लिनाथपुराण' एवं 'रामचंद्रचरितपुराण' का प्रणयन किया गया। पंपयुग में महाकवियों का आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपनी महान् कृत्तियों से कन्नड़ को समृद्ध बनाया, इसलिए इसका नाम स्वर्णयुग पड़ा। यद्यपि इस काल में कलात्मक प्रौढ़ काव्यों का निर्माण हुआ, तथापि समाज के साधारण लोगों के जीवन के साथ साहित्य का संपर्क नहीं रहा। इसका मुख्य कारण कवियों का राज्याश्रयी होना है। इसका परिणाम यह हुआ कि न बोलचाल की भाषा साहित्य के सर्जन के लिए उपयुक्त समझी गई, न कन्नड़ के देशी छंदों का प्रयोग किया गया। सर्वत्र संस्कृत का प्रभाव पड़ा। चंपू-शैली में जो प्रौढ़ काव्य रचे गए, वे साधारण जनता की वस्तु न होकर पंडितों तक ही सीमित रहे। कन्नड़ साहित्येतिहास में बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से पंद्रहवीं शती तक का काल 'वसवयुग' कहलाता है। इस काल का अन्य अभिधान 'क्रांतियुग' है।

इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संस्कृतनिष्ठ कन्नड़ के स्थान पर बोलचाल की कन्नड़, साहित्य के निर्माण के लिए उचित समझी गई और संस्कृत की काव्य-शैली के बदले देशी छंदों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। पिछली शताब्दियों में जैन मतावलंबियों का साहित्य-क्षेत्र में सर्वाधिकार था। इस युग में भिन्न-भिन्न मतावलंबियों ने साहित्य के निर्माण में योग दिया और एक महत्त्वपूर्ण विषय यह था कि साहित्य की श्रीवृद्धि में भक्ति एक प्रबल प्रेरक शक्ति के रूप में सहायक हुई।

इस काल के कवियों में हरिहर, राघवांक पद्मरस, नेमिचंद्र, बंधुवर्मा, जन्न, अडप्पा, मल्लिकार्जुन, केशिराज, रट्टकवि, कुमुदेंद-मुनि प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने मार्गीछंदों का प्रयोग न करके कन्नड़ के विविध देशी छंदों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया।

पंद्रहवीं शती से उन्नीसवीं शती के अंत तक का कालखंड 'कुमारव्यासयुग' की संज्ञा से अभिमंडित है। इस अवधि में कन्नड़ साहित्य की प्रतिष्ठा अपने उत्कर्ष को प्राप्त हुई। इस काल के सर्वाधिक प्रथित कवि नार्णप्प (नाराणप्प) हैं, जो 'कुमारव्यास' के अभिधान से लोकप्रिय हुए। कुमारव्यास ने 'कन्नड़ भारत' अथवा 'गदुगिन भारत' और 'ऐरावत' संज्ञक दो काव्यग्रंथ लिखे, किंतु 'ऐरावत' को निर्विवाद रूप से कुमारव्यासकृत नहीं माना जाता है। 'कन्नड़ भारत' में महाभारत के प्रथम दस पर्व की कथा का निरूपण किया गया है। 'कन्नड़ भारत' न केवल कुमारव्यास का, अपितु कन्नड़ साहित्य का गौरवग्रंथ है। कुमारव्यास से प्रेरित होकर तिम्मण्ण कवि ने महाभारत के अंतिम आठ पर्व की कथा का निरूपण 'कृष्णराज भारत' संज्ञक काव्य में किया। भागवत का समग्रतः कन्नड़ पद्यानुवाद चाटुविट्ठलनाथ नामक भागवत कवि ने प्रस्तुत किया। कुमारवाल्मीकि (नरहरि) ने 'तोरवेरामायण' का प्रणयन किया। लक्ष्मीशकृत 'जैमिनि-भारत', रुद्रभट्टकृत 'जगन्नाथविजय', नागरसकृत 'वासुदेवकथामृतसार' प्रभृति ग्रंथ कुमारव्यास युग के अद्वितीय रत्न हैं। इस कालखंड में 'षट्पदि' शैली में बहुत से काव्यग्रंथ रचे गए। सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में षडक्षरदेव द्वारा रचित चंपूत्रयी–'राजशेखरविलास', 'शबरशंकरविलास' एवं 'वृषभेंद्रविजय' के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी युग में महान् वीरशैव संत-द्वारा रचित 'त्रिपदि' छंद हिंदी के दोहे की तरह अपनी स्वतंत्र अस्मिता रखते हैं।

मलयालम् भाषा एवं साहित्य

पर्वत और सागर के मध्य में द्वितीया के चंद्रमा की भांति केरल की भूमि फैली है। पौराणिक आख्यान के अनुसार केरल का संबंध परशुराम से होने के कारण इसे भार्गव क्षेत्र भी कहा जाता है। 545 ई. पू. विदेशियों ने इसे 'मला' संज्ञाभिहित किया। इसका प्रारंभिक नाम 'मलयाण्मा' या 'मलयाय्म' था। कतिपय विद्वान् मललालम् को संस्कृत से निष्पन्न मानते हैं, किंतु संस्कृत के अनंत शब्दों से अलंकृत होने के बाद भी मलयालम् विभक्ति, प्रत्यय, रूप, सर्वनाम आदि के द्वारा तमिल के सन्निकट है। मलयालम् की संस्कृतनिष्ठ शैली को 'मणिप्रवालम्' कहा जाता है। 51 अक्षर के योग से मलयालम् की अक्षरमाला का निर्माण हुआ है, जो पूर्णतः नागरी वर्णमालानुरूप है।

व्याकरण और उच्चारण में मलयालम् हमेशा मितस्वभाव और प्रयत्नलाघव का पालन करती है। जहां चेतना प्रव्यक्त है, वही लिंग-व्यवस्था है। अचेतनों को नपुंसक की सीमा में डाल दिया गया है। नामों के पहले लिंगद्योतक शब्द लगा दिए जाते हैं।

मलयालम् में केवल एकवचन और बहुवचन हैं। विशेषण विशेष्यों को लिंगसमता की आवश्यकता नहीं है।

उत्तम पुरुष सर्वनाम के दो बहुवचन रूप हैं। एक केवल वक्ता को और दूसरा वक्ता और श्रोता, दोनों को प्रकट करता है। क्रियाओं के विधिरूप और निषेधरूप हैं। संस्कृत और अंग्रेजी जैसी भाषाओं में जिस व्याक्षेपक सर्वनाम का प्रयोग है, वह इसमें नहीं है, कर्मणि और भावेप्रयोग भी नहीं है।

जब भाषा का स्वतंत्रता से विकास होने लगा तो वह साहित्य को जन्म देने लगी। साहित्य के उदयानुसार स्थान-निर्णय लिया जाए तो यथाक्रम तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम् कह सकते हैं, किंतु काल्डवेल, नस्ट्रकनोव प्रभृति पाश्चात्य पंडितों के अनुसार बोलचाल की भाषा में सबसे अधिक प्राचीन ग्रंथ मलयालम् भाषा में पाए जाते हैं। आरंभ में केरल पर तमिल राजाओं का शासन था। इस समय मलयालम् भाषी महाकवि इलंगो अडिगल ने 'शिलप्पदिकारम्' जैसे तमिल ग्रंथ रचे। प्राचीन शिलालेखें में भी तमिल भाषा दृग्गत होती है, क्योंकि तमिल उस समय की राजभाषा थी। धीरे-धीरे पाट्ट (गीत) और मणिप्रवाल नाम की दो शाखाओं से साहित्य का विकास हुआ। 'रामायण' के युद्धकांड की कथा के आधार पर एक प्राचीन तिरुविदांकुर के राजा ने 'रामचरित' नामक काव्यग्रंथ रचा। यह मलयालम् भाषा का प्रथम काव्यग्रंथ है। द्राविड़ लिपियों में रची हुई इस पुस्तक में तमिल का अंश पाया जाता है। ईस्वी सन् बारहवीं शती में इसका निर्माण हुआ। इसमें जनता की व्यवहार की भाषा नहीं, बल्कि विकासोन्मुखी मलयालम् की मधुरता है। 'रामचरित' के चार शताब्दी पहले ही मलयालम् में ललित गान और प्राचीन कथाओं का प्रचार हो गया था।

14वीं शती में 'कणिश्शरामायण' रचा गया। इसमें भी तमिल मिली हुई है। सप्रत्यय संस्कृत शब्दों के प्रयोग भी पाए जाते हैं। प्रतिभाशली कवि रामप्पणिक्कर ने भावगंभीर, किंतु गेय छंदों में रामायण की कथा रची है। 'उण्णुनीलीसंदेश' भी इसी काल की रचना है। विभक्त्यंत संस्कृत शब्द और मलयालम् के सामंजस्य से उत्पन्न मणिप्रवाल शैली में यह संदेशकाव्य रचा गया है। इससे यह बात विदित होती है कि संस्कृत का प्रभाव धीरे-धीरे भाषा में बढ़ता आ रहा था, किंतु 15वीं शती में जो 'रामकथापाट्ट' रची गई, उसमें तमिल की बहुलता दृग्गत होती है। 'कणिश्शरामायण' के काल में चेरुश्शेरी नपूनिरों ने मलयालम् भाषा में 'कृष्णगाथा' लिखकर उसकी ललित-मधुर शैली की अनर्घसंपदा का प्रवर्तन किया।

देश के वीर साहसिक नेताओं की वीरता का वर्णन करते हुए उत्तर केरल के अज्ञात कवियों ने ओजस्वी भाषा में 'वटक्कन पाट्टकल' रचे हैं। इनमें भी कृष्णगाथा की-सी अकलंक ललित मलयालम् शैली का रूप प्रस्फुटित होता है। केरल में भाषा के प्रादेशिक भेद मौजूद थे। अतः एक ही काल में रचित होने के बावजूद इन कृतियों की भाषा में किसी तरह का साम्य दृग्गत नहीं होता। 'रामचरित' जैसे गीत और 'उण्णुनीलीसंदेश' जैसे मणिप्रवाल काव्य 12वीं शती के पहले ही लिखे गए थे।

शनैः शनैः गीत और मणिप्रवाल के लक्षण प्रकट करने वाले रीतिग्रंथ 'लीलातिलकम्' की रचना हुई। यद्यपि इसकी रचना संस्कृत में की गई है, तथापि उदाहरण के रूप में असंख्य सुंदर श्लोक मलयालम् काव्यों से उद्धृत हैं।

'भद्रकालिप्पाट्ट', 'सर्पप्पाट्ट', 'तीयाट्ट-पाट्ट', 'कृषिप्पाट्ट' प्रभृति गीत तथा 'तम्पुरानपाट्ट', 'कणियाकुल तुपोर' प्रभृति वीरगाथाएं आरंभ काल की रचनाएं हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाओं के आधार पर 'कणिश्शरामायण', 'भाषा भगवद्गीता', 'कृष्णगाथा', 'भारतमाला' प्रभृति भावपूर्ण साहित्यिक रचनाएं इसी युग में हुईं। 'गीता' का प्रथम अनुवाद भी इसी समय मलयालम् भाषा में हुआ।

कोट्टारक्कर तम्पुरान ने रामायण कथा आठ भागों में विभक्त कर कथावली साहित्य का प्रवर्तन किया। उण्णायिवार्यर, कोट्टय-तम्पुरान, इटयिम्मन वम्पि प्रभृति महान् कवियों ने इस शाखा को संपन्न किया। उण्णायिवार्यरकृत 'नलचरितम्' अभिनय योग्यता, शिल्प सुभगता एवं सुकुमार भावों के लिए विख्यात है। केरल की यह कला विश्व-कला-कला-मंडप के लिए अमूल्य उपहार है।

सत्रहवीं शती में केरलीय कविकुलगुरु श्रीतुंचत्तेषुत्तिइन ने मणिप्रवाल भाषा का परिष्कार कर एक सार्वदेशिक भाषा-शैली में 'महाभारत', 'अध्यात्म रामायण' प्रभृति संस्कृत ग्रंथों का भक्तिपूर्ण तथा भावोज्ज्वल काव्यानुवाद किया। उन्होंने द्रविड़ छंदों का विकास किया। संक्षेप में वे भाषा और भाव दोनों के सुधारक थे।[19]

वस्तुतः द्रविड़ भाषा और साहित्य की अनर्घ संपदा अपने अप्रतिम माधुर्य और निष्कलंक लालित्य के कारण श्रुत-विश्रुत है। भारतीय

वाङ्मय को भक्ति के 'उज्ज्वलनीलमणि' से अलंकृत करने का गौरव द्रविड़ भाषा और साहित्य को ही है। 'दिव्यप्रबंधम्' से निःसृत भक्ति-मंदाकिनी ने अपने अमृत तत्त्व से संपूर्ण भारतीय प्रजा को आप्लावित किया है। तत्त्वतः द्रविड़ भाषा द्वारा 'भक्ति' के रूप में भारतीय-वाङ्मय को जैसा रागात्मक सारस्वतोपहार समर्पित किया गया है, वैसा उपहार अत्यंत दुर्लभ है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम् की परंपराएं आपादमस्तक भारतीय हैं। इनका वास्तविक मूल्यांकन भारतीय-दृष्टि से ही संभव है। वस्तुतः द्रविड़ भाषा का काव्य-स्तवक तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम् की रस-गंगा से अभिसिंचित है। ऐसे श्रेष्ठ साहित्य को प्राप्त कर भारतीय-वाङ्मय के लक्षाधिक पृष्ठ गौरवान्वित हुए हैं। निश्चय ही द्रविड़ भाषा और साहित्य की परंपरा महनीय है।

संदर्भ–

1. स्कंदपुराण : उद्धृत–डॉ. राजमल बोरा : भारत की भाषाएं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2005 ई., पृ. 91
2. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : ओझा निबंध संग्रह, भाग-1, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम संस्करण : 1954, पृ. 9
3. डॉ. भगवान सिंह : हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, भाग-1, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 1987, पृ. 37-38
4. Rt. Rev. Robert Caldwell : A comparative Grammar of the Dravidian or South Indian family of Languages, University of Madras, 1961, Page 3 & 4.
5. प्रो. के.ए. नीलकंठ शास्त्री : नंद-मौर्य-युगीन भारत (अनुवादक मंगलनाथ सिंह), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1969, पृ. 364
6. डॉ. एम. शेषन् : तमिल संगम-साहित्य, जुलाई 2009 ई., पृ. 16
7. श्री चंद्रकांत, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, प्रेसीडेंसी कॉलेज, मद्रास के निबंध तमिल (भाषा तथा साहित्य) के आधार पर लिखित : हिंदी साहित्य कोश (प्रधान संपादक–डॉ. धीरेंद्र वर्मा), पृ. 271-273
8. तस्यह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा असुः, पञ्चाशत् एकज्यायांसो मधुच्छंदसः पञ्चाशत् कनीयांसः, तद्वै ज्यायांसो न ते कुलम् मेनिरे, तान् अनुव्याजहारन् तानवः प्रजा भक्षिस्तेति एतेंध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठा। –ऐतरेयब्राह्मण।
9. वाल्मीकिरामायण, किष्किंधाकांड, 41
10. सम्राट् अशोक के गिरिनार-गुहाभिलेख में 'अन्धपरिन्दिषु' पद प्रयुक्त हुआ है।
11. ई.पू. 221 से ई. सन् 218 तक राज चलाने वाले आंध्र सम्राटों के शिलालेख, नासिक, कन्हेरी, कार्ली, नानाघाट, अमरावती, चिन्नचिन्ना प्रभृति स्थानों में प्राप्त हुए हैं।
12. साहित्य में प्रतिपादित विषय के अनुसार मोटे तौर से इसके क्रमशः चार और भी नाम दिए जा सकते हैं–1. शासन युग–लेखों और ताम्रपत्रों का काल; 2. पुराणयुग–संस्कृत के पुराण ग्रंथों का अनुवाद युग; 3. प्रबंध युग–अनुकृत या स्वतंत्र काव्य रचना का युग और 4. गद्ययुग–नवीन विकास का युग।
13. श्री राममूर्ति रेणु (आकाशवाणी हैदराबाद) के निबंध तेलुगु (भाषा तथा साहित्य) के आधार पर लिखित : हिंदी साहित्य कोश (प्रधान संपादक–डॉ. धीरेंद्र वर्मा), पृ. 278-281
14. नृपतुंग : उद्धृत–प्रो. ना. नागप्पा : कर्नाटक की हिंदी को देन : रजत-जयंती ग्रंथ : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिंदीनगर, वर्धा, 1962, पृ. 84
15. कर्नाटकाश्च कुटाश्च पद्यजालाः सतीनीराः, महाभारत, सभापर्व 78, 94 तथा कर्नाटका महिषिका विकल्पा मूषकास्तथा; तदेव, भीष्मपर्व 58-59
16. प्रो. के.वेंकटरामप्पा : कन्नड़-साहित्य, पृ. 1-3
17. प्रो. आर.एस. मुगलि : कन्नड़ साहित्य चरित्रे, 1960 ई., पृ. 52
18. प्रो. आर.एस. मुगलि : तदेव, पृ. 117
19. श्री ए. चंद्रहासन् के निबंध मलयालम् (भाषा तथा साहित्य) के आधार पर लिखित : हिंदी साहित्य कोश (प्रधान संपादक–डॉ. धीरेंद्र वर्मा), पृ. 480-482

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
श्री भगवान सिंह महाविद्यालय,
भगवानपुरम्, दुबार कलां, मिर्जापुर-231211 (उ.प्र.)

हिंदी, हिंदुस्तान और डॉ. रामविलास शर्मा

डॉ. कुमुद शर्मा

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर कुमुद शर्मा की 12 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पत्रकारिता का अनुभव। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

भारतीय मनीषा के प्रतीक 'डॉ. रामविलास शर्मा' ने अपनी प्रखर रचनाधर्मिता से कवि, जीवनीकार, आत्मकथाकार, आलोचक, समीक्षक, विचारक, चिंतक, भाषाविद्, इतिहासज्ञ, समाजशास्त्री, दार्शनिक, संस्कृतिकर्मी जैसी बहुआयामी भूमिकाओं में हिंदी रचनाशीलता को नए आयाम दिए। मगर, हैरानी की बात यह है कि अपनी मौलिक चिंताओं, बौद्धिक विमर्शों से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाले डॉ. शर्मा पर समय-समय पर प्रहार किए जाते हैं। प्रहारों का यह सिलसिला आज भी थमा नहीं है। हालांकि आधुनिक हिंदी आलोचना के इतिहास में किसी की भी वह उपलब्धि नहीं रही जो रामविलासजी की रही। निराला और प्रेमचंद संपूर्ण रूप से उन्हीं की ही खोज थे अन्यथा प्रेमचंद साहित्य के बियांबां में खो गए होते और निराला तो सतह पर ही नहीं आते।

हाल के कुछ वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में रामविलासजी पर जो सामग्री प्रकाशित होती रही उसमें कई तरह की टिप्पणियां और निष्कर्ष पढ़ने को मिलते रहे जैसे–

''वानप्रस्थ में अध्ययन कक्ष में बैठ कर मार्क्सवाद के भारतीय संस्करण की रूपरेखा तैयार करते हुए आत्मगौरव और राष्ट्रप्रेम के

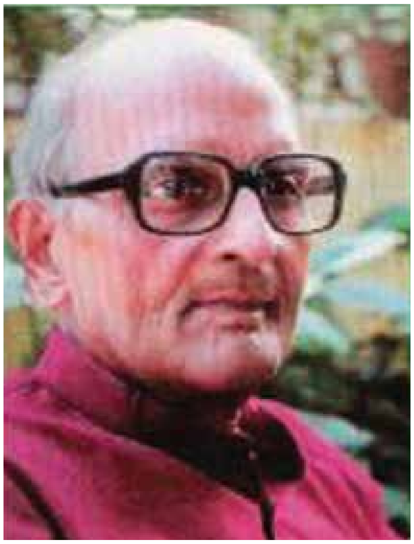

साथ उसके समन्वय की निष्पत्तियां बना रहे थे।''

इस टिप्पणी में सवाल उठता है क्या इससे पहले वे राष्ट्र निरपेक्ष थे? क्या इससे पहले आत्मगौरव और राष्ट्रीयता के भावों से उनका कोई नाता नहीं था? क्या इससे पहले की उनकी कृतियां मानवीय मूल्यों और राष्ट्रीय मूल्यों से सरोकार नहीं रखती थीं?

रामविलासजी की समूची साहित्य साधना का प्रयत्न हिंदी और हिंदुस्तानी के संरक्षण और संवर्द्धन का रहा है। अपनी पुस्तक 'मेरे साक्षात्कार' में एक जगह उन्होंने कहा है– ''यदि हिंदीभाषी लोग अपना इतिहास नहीं समझते, अपनी संस्कृति की जानकारी नहीं रखते तो वे स्वयं तो डूबेंगे ही साथ में देश को डुबो देंगे। मेरा सारा प्रयत्न इस दिशा में है कि न तो हिंदी जाति डूबे न उसके साथ सारा देश डूबे।'' हिंदी और हिंदुस्तान के प्रति उनके गहरे अनुराग का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

रामविलासजी के समूचे रचनाकर्म में निरूपित उनका इतिहासबोध, जातीय चेतना, उनकी जीवनदृष्टि, देश की संप्रभुता, स्वदेशी उत्पादन, स्वभाषा दृष्टिकोण, राष्ट्रीय चरित्र, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, हिंदी की जातीय चेतना के प्रति गौरव भाव तथा भारतीय जीवन मूल्य मनुष्य के प्रति, समाज के प्रति, देश के प्रति, उनके रचनात्मक दायित्व का ही तो प्रमाण है।

'तारसप्तक', 'बुद्ध वैराग्य' तथा 'प्रारंभिक कविताएं', 'सदियों के सोए जाग उठे' की कविताओं के फलक से लेकर उनके जीवन के अंतिम चरण के ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश' का अवलोकन करने पर उनका हिंदी प्रेम, उनका देशानुराग आसानी से समझ में आ जाता है। 'बुद्ध वैराग्य' तथा 'प्रारंभिक कविताएं' पुस्तक में उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियां इसका प्रमाण हैं–

''हां, भारत का तेज गया न कहीं
भारत का पौरुष नष्ट नहीं
आहत भारत भयभीत नहीं
वीरो की जननी भूमि यही
सुन पड़ती है जो पुकार कहीं
मेरा झांसी देएगा नहीं।।''

राष्ट्रीय जागरुकता के ऐतिहासिक केंद्र झांसी पर लिखी गई उनकी कविता देश के

प्रति उनके भावों की पहचान कराती है। देश पर कुर्बान होने वाले लोगों के प्रति उनके सम्मान को दर्शाती है। देश के मूलभूत प्रश्नों व समस्याओं से टकराने वाला रचनाकार राष्ट्रप्रेमी ही कहा जाएगा। राष्ट्रीयता वस्तुतः है क्या? राष्ट्रीयता से आशय है देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं के प्रति हमारी क्या सोच है, हमारा क्या व्यवहार है, यह राष्ट्रीय आचरण है। इन समस्याओं के प्रति हमारे भावों का रिश्ता ही राष्ट्रीयता है।

उनकी 'जागृति देश', 'अहे देश के दुर्दिन' जैसी युगीन समस्याओं पर केंद्रित कविताएं, सामयिक स्थितियों के प्रति उनके भावों की पहचान करवाती हैं। 'सदियों के सोए जाग उठे' में राजनीतिक चेतना से संपन्न कविताएं हैं। 'रूपतरंग' की कविताओं में 'शारदीया', 'सिलहार', 'हड्डियों का ताप', 'परिणति' आदि कविताओं में रामविलासजी ने धरती के प्रति अपने मानसिक जुड़ाव को प्रकृति सौंदर्य और संस्कृति सौंदर्य को छंदों में ढाला है। उनकी संवेदनशीलता ने मानवीय करुणा की आर्द्रता में भीगकर गांव के मर्मस्पर्शी बिंब उकेरे हैं।

उनकी कविताओं का ताना-बाना सिद्धांत और विचारधारा से कम परिवेशगत अनुभवों, अनुभूतिगत गहराइयों और यथार्थ जीवन की मार्मिक चिंताओं से अधिक बुना गया है। इतिहासबोध, संस्कृति, सामाजिकता और युगबोध ने उनके रचनात्मक व्यक्तित्व को गति दी है।

डॉ. रामविलास शर्मा में एक भारतीय व्यक्ति का स्वाभिमान भरा हुआ था। उनके लिए कोई भी सिद्धांत राष्ट्र से बड़ा नहीं था। सिद्धांत को किनारे रखकर सच्चे साहित्यकार की परिभाषा गढ़ते हुए वे कहते हैं—

''लेखक सारथी होता है जो लीक देखते हुए साहित्य की बागडोर संभाले उसे उचित मार्ग पर ले चलता है।'' (प्रगति और परंपरा)।

देश व मनुष्य के प्रति अपनी रचनात्मक ईमानदारी और दायित्व के निर्वाह में स्वयं को भी जांचते चलते हैं। इसलिए देश और परिस्थिति के अनुकूल सुविचारित और अनुभूत को कह सकने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते।

भाषा, समाज और इतिहास की सर्वांगीण समझ से उन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य तथा हिंदुस्तान को समझा और समझाया। नवजागरण और लोकजागरण के भारतीय स्रोतों को खोजते हुए महाभारत और रामायण की प्रभावसंपन्नता को दर्शाते हुए यह माना कि—

''महाभारत और रामायण का प्रभाव सारी भारतीय काव्य परंपरा है। इसके बिना भारत में न तो नवजागरण हो सकता था, न लोकजागरण।''

रामविलास शर्मा की दृष्टि में भाषा और साहित्य की उत्कृष्टता का मापदंड उसका अपनी धरती से गहरा जुड़ाव रहा हो। परखने की इसी कसौटी के कारण भारतेंदुयुगीन साहित्य के संदर्भ में उनका विचार है कि—

''भारतेंदु युग का साहित्य हिंदी भाषी जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। भारतेंदु युग की जिंदादिली, उसके व्यंग्य और हास्य, उसके सरल सरस गद्य, लोक संस्कृति से उसकी निकटता से सभी परिचित हैं, ये उसकी जातीय विशेषताएं हैं।''

इसी तरह 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में हिंदी नवजागरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भाषा परिमार्जक, भाषा संशोधन के अतिरिक्त द्विवेदीजी के महत्त्वपूर्ण प्रसंग को खोजते हुए वे उनके चिंतन को मार्क्सवादी विचारकों से अधिक वैज्ञानिक मानते हैं—

''किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि मेरी दृष्टि में द्विवेदीजी मार्क्सवादी विचारक थे। द्विवेदीजी मार्क्सवादी विचारक नहीं थे। इसके साथ निवेदन है कि किसी मार्क्सवादी विचारक को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उनका चिंतन द्विवेदीजी के समग्र चिंतन से अधिक वैज्ञानिक और प्रगतिशील है।... द्विवेदी जी के लिए दार्शनिक विषयों की चर्चा राष्ट्रीय मान-सम्मान से जुड़ी हुई थी।''

डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक स्वरूप लोक, समाज, देश और संस्कृति की गहरी समझ से उपजता है। अपने साक्षात्कारों में एक जगह उन्होंने कहा कि—

''आलोचना से मध्य वर्ग को साहित्य का इतिहास और सामयिक परिस्थितियों को समझाने का काम किया है।''

'भारतेंदु हरिश्चंद्र और नवजागरण की समस्याएं', 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', 'भारतीय साहित्य की भूमिका' जैसी आलोचनात्मक कृतियां उनके इतिहासबोध और जातीय चेतना को सामने रखती हैं। 'भारतीय साहित्य की भूमिका' के अंत में स्वदेशी उन्नयन और स्वभाषा पर बल देते हैं। भारत की राष्ट्रीय क्षमता का विकास कैसे हो? देश कैसे खुशहाल हो, भ्रष्टाचार का, विसंगतियों का अंत कैसे हो। उनकी मानवीय और राष्ट्रीयता चिंता के प्रमुख बिंदु हैं। उनके जिन मूल्यों को समाजवादी मूल्य कहा जाता है वे भी हिंदी जाति के सांस्कृतिक विरासत से उपजते हैं।

क्या वजह है भारतेंदु, रामचंद्र शुक्ल, तुलसीदास, कालिदास, भवभूति, निराला और ऋग्वेद की स्थापनाओं को स्वीकार करने वाले रामविलासजी यशपाल, राहुल, मुक्तिबोध, रांगेय राघव जैसे मार्क्सवादियों को अपने व्यंग्य की नोंक पर ले आते हैं और उनके

कटु आलोचक बनकर उभरते हैं। 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं' में प्रगतिशील परंपरा के अंतर्विरोधों को उभारते हैं। यशपाल की कृतियों में यथार्थ चित्रण के नाम पर यौन विकृतियों के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। उनकी साड़ी जंफर उतार परिस्थिति को 'साड़ी चोली उतारोवाद' की संज्ञा देकर कड़ी आलोचना करते हैं। मार्क्सवादियों को रामविलासजी की यह आलोचना गैर-जिम्मेदार और बदनीयत से भरी लगती है। रामविलासजी के बारे में प्रचारित किया जाने लगा कि रामविलासजी नर-नारी संबंधों के यथार्थ चित्रण का विरोध कर रहे हैं। इसके जवाब में रामविलासजी का तर्क था जो सन् 1997 में छपी उनके कविता संग्रह 'बुद्ध वैराग्य तथा प्रारंभिक कविताएं' की भूमिका में उद्धृत है–

''समस्या यह है कि समाज में स्त्रियों और पुरुषों को स्थायी संबंध कायम करने चाहिए या इन संबंधों को बदलते रहना चाहिए। स्त्री पानी भरा गिलास है कोई भी आकर पी ले, बस पानी साफ होना चाहिए। मैंने इस स्वच्छंद भोगवाद का विरोध किया है नर-नारी संबंधों के यथार्थ चित्रण का नहीं।''

रामविलासजी किन प्रतिमानों से यशपाल की कृतियों में चित्रित यौन विकृतियों का खुलकर विरोध करते हैं। ये प्रतिमान भारतीय संस्कारों, भारतीय संस्कृति में निःसृत पारिवारिक मूल्यों के प्रतिमान हैं। यहां वे तुलसीदास की मर्यादाओं से अनुशासित होकर विरोध का झंडा उठाते हैं।

'अपनी धरती अपने लोग' में जो आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र है वे घर-परिवार और प्रकृति के प्रति उनके रागात्मक संबंध उनकी गहरी मानवीय और भारतीय दृष्टि के परिचायक हैं। इससे जाना जा सकता है कि उनका लेखकीय मन बृहत्तर भारतीय जीवन संदर्भों से भारतीय मूल्यों से जुड़कर सार्थकता पाता है। भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्थावान बनकर उन्हीं मूल्यों के निर्माता बनकर सामने आते हैं।

रामविलासजी के हिंदी प्रेम से संदर्भित बहुत सारे प्रसंगों का जिक्र किया जा सकता है। उनके मन में शुरू से ही हिंदी के प्रति गहरी आस्था थी। वे सच्चे अर्थों में हिंदी निष्ठ थे, हिंदी प्रेमी थे। अपने एक संस्मरण में अमृतलाल नागर ने उनके हिंदी प्रेम को उजागर करते हुए लिखा है कि आप उनकी मातृभाषा की एक कमजोरी दिखलाएंगे तो वह आपकी मातृभाषा या अपनाई गई भाषा की जब तक एक सांस में एक दर्जन कमजोरियां नहीं दिखला देंगे तब तक उनको चैन नहीं मिलता।

यहां पर रामविलास शर्मा सीधे लठैत हो जाते हैं। सन् 1938 के आस-पास ऑल इंडिया रेडियो की हिंदी विरोधी नीति से मोर्चा लेने के लिए पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लखनऊ से 'आकाशवाणी' नामक एक बुलेटिन प्रसारित करना शुरू किया। रामविलासजी उनके लिए नित्यप्रति अपनी ड्यूटी बांधकर रेडियो सुनते और बुलेटिन के लिए मसाला बटोरते। इलाहाबाद के मासिक 'तरुण' में उनका और श्री रघुपति फिराक का दंगल भी हुआ।

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी-उर्दू विवाद में उर्दू को हिंदी की एक शैली मानते हैं। हिंदी की उपेक्षा उन्हें तनिक भी बर्दाश्त नहीं थी। उनका प्रगाढ़ हिंदी अनुराग ही था कि उर्दू समर्थकों को हिंदी के प्रति जो हेय भावना थी, वह उनके हृदय को छलनी कर देता था। फिर वे उर्दू के हिमायतियों से जमकर लोहा लेते थे। इसकी पुष्टि 'अमृतलाल नागर' के इस कथन से होती है–

''मैं विलास को तअस्सुबी नहीं मानता। उर्दू के प्रति उनके मन में दुर्भावना तनिक भी नहीं, हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि वे उर्दू के हिमायती आंदोलनकारियों की हिंदी के प्रति हिकारत भरी नजर से चिढ़ते अवश्य रहे हैं और रामविलास जब चिढ़ते हैं तो चिढ़ाने वाले की नाक पच्ची किए बिना उसे छोड़ते नहीं हैं। हिंदी के प्रति उर्दू के हिमायतियों, काले साहबों और दूसरी भाषाओं के 'स्नॉब स्कॉलरों' की बगैर पढ़ी-समझी अन्यायपूर्ण आलोचनाओं से वे तड़प उठते हैं। सेर के जवाब में यदि वे सवासेर फेंकते तो शायद इतने बदनाम कभी न होते लेकिन सेर पर ढ़ैया, पसेरी पर दस सेरा बटखरा खींच मारना रामविलासजी का स्वभाव है।'' यह उदाहरण रामविलासजी के हिंदी प्रेम और हिंदी निष्ठा का जीता जागता प्रमाण है।

रामविलासजी के मन में हिंदी के प्रति, अपने देश के प्रति, अपनी धरती के प्रति जो गहरा अनुराग था वह अंत तक बना रहा। वे अंत तक भारतीय मूल्यों की, जातीय मूल्यों की दीप्ति में प्रकाश ग्रहण करते रहे। हिंदी के प्रति, भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अटूट आस्था का ही प्रमाण है उनका ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश'।

इस पुस्तक में उन्होंने अतीत को, अतीत की परंपराओं को इतिहास की यात्रा में निषेधात्मक नहीं बल्कि समनात्मक रूप में देखा है। जातीय अस्मिता और जातीय चेतना के सकारात्मक पक्ष को उजागर करते हुए देश की सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रति लोकमानस में छिपी भक्ति को उद्घाटित किया है। भारत की प्राचीन संस्कृति की व्यापकता को पहचान कर उसमें अध्ययन को प्रासंगिक बनाकर इस ग्रंथ की रचना की गई है। प्राचीन संस्कृति के प्रति उपेक्षा के भाव से वे चिंतित हैं। उनकी दृष्टि में प्राचीन संस्कृति के अध्ययन की उपेक्षा और वर्तमान सांस्कृतिक समस्याओं के अध्ययन की उपेक्षा वास्तव में लोकमानस की उपेक्षा है।

रामविलासजी की दृष्टि में भाषा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और जातीय अस्मिता व चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम भी। इसीलिए इस पुस्तक में उनका

जोर भारत राष्ट्र के संवर्धन और विकास में हिंदी प्रदेश की निर्णायक भूमिका पहचानने पर है। उन्होंने पाटलिपुत्र, काशी, मथुरा और उज्जयिनी भारत के इन प्राचीन नगरों से भारतीय संस्कृति का गहरा संबंध स्थापित करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि इन नगरों के बिना हिंदी का प्रसार भारत के सबसे बड़े जातीय क्षेत्र में संभव ही नहीं था। इन नगरों की भूमिका के कारण ही हिंदी प्रदेश के जनपद प्राचीन काल में एक-दूसरे से संबद्ध हुए—''दक्षिण में तमिलनाडु, उत्तर में कश्मीर, पूर्व में असम और पश्चिम में गुजरात दूर-दूर के इन प्रदेशों को जोड़ने वाला इनके बीच स्थित विशाल हिंदी प्रदेश हैं। ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र की रचना यहीं हुई। यहीं कालिदास और भवभूति ने अपने ग्रंथ रचे। मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यों की आधारभूमि यही प्रदेश था। उत्तरकाल में दिल्ली और आगरा इस प्रदेश के बहुत बड़े नगर बने।... विद्यापति, कबीर, तुलसीदास जैसे कवि इसी क्षेत्र में हुए। इसी प्रदेश में संगीतकार तानसेन का जन्म हुआ।''

भारत के सांस्कृतिक उतार-चढ़ाव को दर्शाते हुए रामविलासजी हिंदी में हिंदी राष्ट्र के विशाल इतिहास को विवेचित करते हैं। वे ऋग्वेद को भारतीय चिंतन का आदिग्रंथ मानते हैं और यह भी कहते हैं कि सारे संसार में ज्ञान-विज्ञान ऋग्वेद से ही गया है।

जो लोग यह कहते हैं कि भारत में राष्ट्रीय चेतना की उत्पत्ति अंग्रेजों के आगमन के बाद हुई। रामविलासजी ने इस धारणा को निराकार बताते हुए यह तथ्य स्थापित किया है कि जब अंग्रेज जाति का जन्म भी नहीं हुआ था, तब से यहां के साहित्य में भारत राष्ट्र की धारणा विद्यमान है। संस्कृत कभी लोकभाषा नहीं रही, वह पंडितों की भाषा है, उसमें जो कुछ भी लिखा है वह ब्राह्मणों के हित में लिखा है। इस मान्यता का खंडन करते हुए रामविलासजी ने ऋग्वेद, महाभारत आदि से प्रमाण जुटाकर यह सिद्ध किया है कि संस्कृत लोकव्यवहार की भाषा थी और उसमें अद्भुत वक्तृत्व कला भी विद्यमान थी। जो लोग प्राचीन संस्कृति को सामंतों और पुरोहितों की रचना मानते हैं तथा आज के युग में उसकी प्रासंगिकता स्वीकार नहीं करते यह पुस्तक उनकी अज्ञानता को दूर करती है।

रामविलास शर्मा का समूचा व्यक्तित्व और कृतित्व इस बात का प्रमाण है कि वे एकाधिकारवाद के नहीं लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्षधर हैं। वे समतावादी समाज चाहते थे, लेकिन जो चीज राष्ट्र के विरुद्ध थी, जो वैचारिक आजादी को छीनती थी, जो हमारी प्रवाहमान भारतीय संस्कृति की चमक को धूमिल कर सकती थी, वे उनके विरुद्ध खड़े हुए।

रामविलासजी ने अपना पहला दायित्व अपने देश के प्रति समझा। एक भारतीय स्वाभिमान को साथ लिए वे भारत की संस्कृति और हिंदी प्रदेशों की जीवंत विरासत से साक्षात्कार कराते हैं। एक सच्चे जागरूक साहित्यकार की भूमिका में देश की सामाजिक स्थितियों से ज्वलंत समस्याओं से टकराते हैं। गुणवत्ता और परिमाण की दृष्टि से जो साहित्य संपदा हमें सौंप गए हैं, उसे किसी वाद या सिद्धांत के चौखटे से नहीं समझा जा सकता। सिद्धांत के सीखचों से बाहर निकल कर धरती और हिंदी के प्रति उनकी सच्ची निष्ठा को समझा जा सकता है।

188, नेशनल मीडिया सेंटर, शंकर चौक,
गुड़गांव-122002 (हरियाणा)

मौलाना अबुल कलाम आजाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. खालिद बिन यूसुफ खां

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. खालिद बिन युसुफ खान वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान हैं। इनकी सात पुस्तकें तथा चालीस रिसर्च पेपर प्रकाशित और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर की बारह कांफ्रेंस में हिस्सा ले चुके हैं। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

मौलाना अबुल कलाम आजाद का जन्म 9 अगस्त, 1888 ई. में मक्का में हुआ था। इनका नाम अहमद, ऐतिहासिक नाम फिरोज बख्त, उपाधि अबुल कलाम एवं उपनाम आजाद था। इनका पैतृक स्थान दिल्ली था। इनके पिता मौलाना खैरुद्दीन ने एक अरब महिला से विवाह किया था, जो उनके गुरु शेख मुहम्मद जाहिद वली की भांजी थी। मौलाना खैरुद्दीन के पांच बच्चे हुए। इनमें से तीन पुत्रियां—जैनब, फातिमा तथा हनीफा एवं दो पुत्र—अबूनस गुलाम यासीन तथा अबुल कलाम मोहीउद्दीन अहमद थे। दोनों भाइयों का उपनाम क्रमशः 'आह' तथा 'आजाद' था। मौलाना के पूर्वजों में से एक जमालुद्दीन इलियास 'शेख बहलोल' मुगल सम्राट के समकालीन थे। यह उन धर्माचार्यों में से थे जिन्होंने उस वक्तव्य पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया था, जिसमें कहा गया था कि बादशाह किसी नए धर्म का प्रवर्तक हो सकता है। जमालुद्दीन के पुत्र शेख मुहम्मद ने अपने पिता के पदचिह्नों पर चलते हुए ग्वालियर के नरेश के सम्मुख उसकी अधीनता स्वीकार करने से मना कर दिया था, परिणामस्वरूप उन्हें बंदी बना लिया गया था। मौलाना मुनव्वरुद्दीन, आजाद के परदादा थे, जो सन् 1855 ई. में भारत की तत्कालीन परिस्थितियों से विचलित होकर हिजाज चले गए थे।

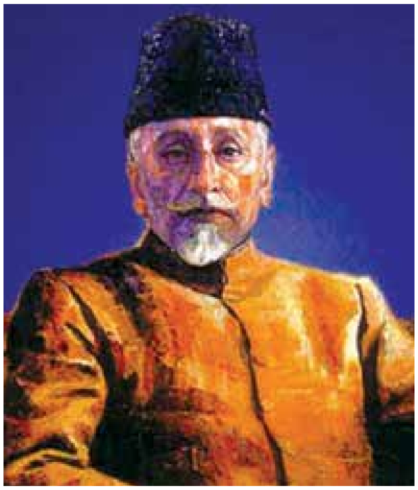

सन् 1898 ई. में मौलाना खैरुद्दीन सपरिवार कोलकाता आ गए। यहां 15 वर्ष की आयु में आजाद ने निजामी पाठ्यक्रम समाप्त कर लिया था। मौलाना की स्मरण शक्ति अति तीव्र थी, उन्हें जो भी पढ़ाया जाता वह प्रथम बार में ही याद हो जाता था। बाल्यावस्था में मग्रिब की नमाज के पश्चात् इनके यहां बैठक होती थी, जिसमें पचास-साठ लोग एकत्रित होते थे तथा आजाद से विभिन्न विषयों पर प्रश्न करते थे। उस समय आजाद की आयु मात्र दस-ग्यारह वर्ष की थी। वे लोग आजाद को 'वीर-पुत्र' कह कर पुकारते थे।

प्रायः व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था को क्रीड़ा में व्यतीत कर देता है, परंतु आजाद पुस्तक लेकर किसी कोने में छिपकर पढ़ते थे। कोलकाता में लाल डिग्गी पार्क में जब प्रातः सैर करने जाते तो पुस्तक साथ में ले जाते एवं बेंच पर बैठकर पढ़ते। आजाद ने अपनी पुस्तक 'गुबार-ए-खातिर' में लिखा है कि ''चौबीस वर्ष की आयु में जब लोग यौवन एवं ऐश्वर्य की मादकता की यात्रा आरंभ करते हैं तो मैं यात्रा समाप्त करके अपने तलवों के कांटे चुन रहा था। लोग जीवन के जिस मोड़ पर कमर बांध रहे थे, मैं खोल रहा था।'' मौलाना ने अपनी बात मीर के इस शेर से कही है—

''काम थे इश्क में बहुत पर मीर।
हम फारिग हुए शताबी से।।''

सन् 1903 ई. में 15 वर्ष की अल्पायु में आजाद ने एक पाक्षिक पत्रिका 'लिसान-उल-सिद्क' (सत्यवाणी) के नाम से निकाली थी। जिसका उद्देश्य समाज सुधार, उर्दू का प्रचार-प्रसार, साहित्यिक अभिरुचि तथा उर्दू प्रकाशनों का वस्तुनिष्ठ विवेचन अर्थात् आलोचना था। उनका मत था कि रीति-रिवाजों के समक्ष शिक्षा परास्त हो जाती है। जो शिक्षित व्यक्ति बाहर सभ्य एवं स्वच्छंद रहता है, वही घर में घुसते ही पुरातन रीतियों के पाश में बंध जाता है। अतः इसके लिए एक शक्तिशाली आंदोलन के आरंभ पर उन्होंने बल दिया।

मौलाना का मत था कि मुसलमानों की दरिद्रता के पीछे उनके रीति-रिवाजों का भी प्रमुख हाथ है। उदाहरणस्वरूप लखनऊ के 'बब्बन मियां' के विवाह पर पांच हजार रुपए ऋण लिए गए अथवा 'छुट्टन मियां' के खतने पर दो घर गिरवी रखे गए। अतः ऐसे रिवाजों को यदि साधारणतः मनाया जाए तो ये दो परिवार दरिद्र होने से बच सकते हैं। उनके विचार में मुसलमानों में शिक्षा का अभाव मूलतः रीति-रिवाजों के प्रति आग्रह के कारण हैं, क्योंकि बहुत से मुसलमानों के मत में अंग्रेजी सीखना निषिद्ध है। अतः इस प्रकार की मान्यताएं सामाजिक सुधारों की अवहेलना हैं।

जुलाई सन् 1912 ई. को आजाद ने 'अल-हिलाल' नामक एक सचित्र साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन किया। उनके एक घनिष्ठ मित्र ने अल-हिलाल पर टिप्पणी की कि क्या आप मुसलमानों के समस्त रोगों का उपचार धर्म तथा कुरआन को समझते हैं? आप अपने धार्मिक रंग में राजनीति को भी रंग देते हैं, दोनों को इस प्रकार संयुक्त कर देते हैं कि इनमें भेद करना भी कठिन हो जाता है। अतः आप राजनीतिक शिक्षा को धार्मिक शिक्षा से पृथक् करके स्पष्टः बतला दें कि आप अपनी जाति को किस मार्ग पर ले जाना चाहते हैं?

मौलाना ने उत्तर में लिखा कि कुरान के रहस्यों एवं उसके बोध में उस व्यक्ति का कोई भाग्य नहीं जो आत्म-शुद्धता से विहीन हो, चाहे वह कितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो। मानवीय कर्मो की चाहे कोई भी शाखा हो हम तो उसे धार्मिक दृष्टि से ही देखते हैं। हमारे पास यदि कुछ है तो कुरान ही है, जिसके अतिरिक्त हम कुछ और नहीं जानते। समस्त विश्व के प्रति हमारे नेत्र बंद हैं तथा समस्त ध्वनियों के श्रवण से हमारे कान बधिर हैं। यदि दर्शन के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है तो विश्वास कीजिए कि हमारे पास तो 'ज्योति-पुंज-दीपक' द्वारा प्रदत्त एक ही 'प्रकाश' है, जिसे हटा दीजिएगा तो हम वस्तुतः अंधे हो जाएंगे। कुरान एक ऐसी पुस्तक है, जिसका अवतरण इसीलिए हुआ है कि मानव को अंधकार से निकाले तथा ज्योति की ओर ले जाए।''[1]

मौलाना आजाद के अनुसार मनुष्य के विश्वव्यापी भ्रातृत्व के मार्ग में चार सबसे बड़े अवरोध थे—जाति, जन्मभूमि (देश), वर्ण तथा भाषा। परंतु इस्लाम ने इन चारों का प्रतिषेध करते हुए कहा कि सबकी जाति एक ही है, जन्मभूमि के विषय में कहा कि अरब हो अथवा अन्य देश का निवासी हो, सब एक ही ईश्वर के द्वारा सृष्ट वसुधा के वासी हैं। भाषा तथा वर्ण के संबंध में निर्णय दिया कि यह विधाता के विधान तथा उसकी सत्ता के प्रतीक हैं। अतः कहा जा सकता है कि इस्लाम का आह्वान 'मानवता' तथा 'मानव-भ्रातृत्व' का आह्वान था।

इस प्रकार 'अल-हिलाल' नामक पत्रिका ने तीन वर्षो के भीतर ही भारतीय मुसलमानों की धार्मिक तथा राजनीतिक मानसिकता को अत्यंत नवीन गतिशीलता प्रदान की। सरकार की भेदभाव उत्पन्न करने वाली नीति ने मुसलमानों को भ्रमित कर दिया था कि देश में हिंदुओं की संख्या अधिक है, अतः भारत यदि स्वतंत्र हो गया तो हिंदू राज स्थापित हो जाएगा। परंतु अल-हिलाल ने मुसलमानों को संख्या के स्थान पर धर्मनिष्ठा पर निर्भर रहने का निर्देश दिया तथा बिना किसी भय के हिंदुओं से हाथ मिलाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। अतः अंग्रेजों ने अल-हिलाल की जमानत जब्त कर ली। परंतु आजाद ने 'अल-बलाग' नाम से उसे पुनः प्रकाशित किया। परंतु सन् 1916 ई. में भारत सरकार ने आजाद को नजरबंद कर दिया।

आजाद ने सन् 1916 ई. में 'अल-बलाग' के पृष्ठों पर 'कुरानानुवाद' तथा उसके भाष्य के प्रकाशन की घोषणा की थी, परंतु 15 वर्षो तक यह कार्य स्थगित रहा। सन् 1921 ई. में कुरान का मूल पाठ लिखा जा चुका था, परंतु सरकार ने आजाद को 1921 ई. में पुनः गिरफ्तार कर लिया तथा कुरान की पांडुलिपि भी जब्त कर ली, जो बाद में उन्हें क्षत-विक्षत अवस्था में ही प्राप्त हो सकी। सन् 1930 ई. में मेरठ जेल में कुरान के अनुवाद का कार्य पूर्ण हुआ।

9 अप्रैल, सन् 1943 ई. को मौलाना आजाद की धर्मपत्नी जुलैखा बेगम का देहांत हो गया। मौलाना ने अपने परम मित्र नवाब सद्रयार जंग को अहमद नगर जेल से बीस पत्र लिखे थे, जिन्हें मौलाना के निजी सचिव मुहम्मद अजमल खां ने 'गुबार-ए-खातिर' (मालिन्य-चित्त) नाम से सन् 1946 ई. में प्रकाशित किया।

मौलाना ने 17 वर्ष की आयु में मसीता खां से सितार बजाना भी सीखा। इस विषय में मौलाना लिखते हैं कि जिस गली में भी कदम उठाया उसे पूरी तरह छान कर छोड़ा। त्याग व सदाचार का मार्ग मिला तो उसमें भी किसी से पीछे न रहे।

15 अगस्त, सन् 1923 ई. को मौलाना ने कांग्रेस के विशिष्ट अधिवेशन की अध्यक्षता मात्र 35 वर्ष की आयु में की थी। वे सबसे कम आयु वाले कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने अधिवेशन में हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए कहा था कि जब हिंदुओं को बचाओ तथा मुसलमानों को बचाओ की स्थिति उत्पन्न हो गई हो तो राष्ट्र को बचाने की चिंता कौन करे? मौलाना ने कहा कि स्वराज की प्राप्ति में यदि विलंब हुआ तो यह हिंदुस्तान की हानि होगी, किंतु यदि हमारी एकता जाती रही तो वह मानव जाति की हानि होगी।

महात्मा गांधी की 78वीं वर्षगांठ पर मौलाना ने कहा कि जिस हिंदुस्तान ने संसार को शांति तथा मानवतावाद का यह महानतम पुरुष दिया है, स्वयं उसी हिंदुस्तान में किस प्रकार शांति को धूल-धूसरित किया जा रहा है। पंजाब में पानी की पांच नदियां हजारों वर्षो से बह रही थीं, परंतु अब छठी नदी मनुष्य के गर्म-गर्म रक्त की बहने लगी है। पानी की नदियों पर हमने ईंट-पत्थर तथा लोहे के पुल बनाए थे। इस छठी नदी का पुल अब मनुष्यों के शव से चुना जा रहा है।

23 अक्टूबर, सन् 1947 ई. को दिल्ली की जामा मस्जिद में मुसलमानों के सम्मुख भाषण देते हुए मौलाना ने कहा कि तुम्हें स्मरण है, मैंने तुम्हें पुकारा, तुमने मेरी जीभ काट ली, मैंने लेखनी उठाई, तुमने मेरे हाथ काट दिए, मैंने चलना चाहा, तुमने मेरे पांव काट दिए, मैंने करवट लेनी चाही, तुमने मेरी कमर तोड़ दी। अभी उस बात को कुछ अधिक समय नहीं बीता जब मैंने तुमसे कहा था कि द्विराष्ट्र की अवधारणा आभ्यंतरिक जीवन के लिए प्राणघातक रोग के समान है, उसको छोड़ दो। ये स्तंभ जिनका तुमने प्रश्रय ले रखा है, अत्यंत तीव्रता से टूट रहे हैं। परंतु तुमने सुनी-अनसुनी कर दी। मौलाना ने पुनः कहा कि मैं कहता हूं कि जो कीर्तिमान स्तंभ तुम्हें इस हिंदुस्तान में अतीत के स्मारक के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं वे तुम्हारे ही सार्थवाह के

पदचिह्न हैं, उन्हें विस्मृत मत करो, उन्हें छोड़ो नहीं। उनके उत्तराधिकारी बनकर रहो तथा समझ लो कि यदि तुम भागने के लिए उद्यत नहीं हो तो फिर तुम्हें कोई शक्ति इस देश से भगा नहीं सकती। अतः आओ प्रण करो कि यह देश हमारा है, हम इसके लिए हैं तथा इसके मौलिक भाग्य-निर्णय हमारी आवाज के बिना अपूर्ण ही रहेंगे।

मौलाना ने 15 फरवरी, सन् 1940 ई. में कांग्रेस के अधिवेशन में कहा कि मैं मुसलमान हूं तथा गर्व से अनुभव करता हूं कि मुसलमान हूं। इस्लाम की 1300 वर्ष की वैभवशाली परंपराएं मुझे थाती के रूप में प्राप्त हुई हैं। मैं तत्पर नहीं हूं कि इनका कोई लघुतम अंश भी नष्ट हो। मैं गर्व के साथ अनुभव करता हूं कि मैं हिंदुस्तानी हूं। अब इस देश की धरती पर इस्लाम का दावा उतना ही समीचीन है जितना कि हिंदू धर्म का। यदि हिंदू धर्म कई हजार वर्षों से यहां के लोगों का धर्म रहा है तो एक हजार वर्ष से इस देश में इस्लाम धर्म भी प्रचलित है। हमारे 1100 वर्ष के मिले-जुले इतिहास ने हमारी समानधर्मी सर्जनात्मक तथा रचनात्मक उपलब्धियों ने हिंदुस्तान को समृद्धिशाली बनाया है। हमारी भाषाओं, हमारे काव्य, हमारे साहित्य, हमारी संस्कृति, हमारी कला, हमारी वेश-भूषा, हमारी जीवनचर्या, रीति-रिवाजों पर इस समानधर्मी जीवन की छाप लगी हुई है। हमारी भाषाएं भिन्न थीं किंतु हम एक समान भाषा का उपयोग करने लगे, हमारे रीति-रिवाजों तथा आचरण में विभिन्नता थी किंतु उन्होंने एक-दूसरे को प्रभावित किया तथा परिणामतः एक नया रूप धारण कर लिया।

13 जनवरी, 1948 ई. को शिक्षा मंत्री के रूप में मौलाना ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से प्राप्त होने वाली शिक्षा का विरोध करते हुए भारत की भाषाओं के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने पर बल दिया। मौलाना ने साहित्य अकादमी, संगीत अकादमी तथा ललित कला अकादमी की सृष्टि की। मौलाना ने शिबली सोसायटी आजमगढ़ को उर्दू किताबों के संरक्षण हेतु 60 हजार रुपए का अनुदान दिया।

इस प्रकार देश का सच्चा सपूत 22 फरवरी, सन् 1958 ई. को दिल्ली में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मौलाना ने 162 पत्रिका एवं पुस्तकों की रचना की, जिसमें प्रमुख हैं—

सन् 1899 ई.—कलकत्ते से 'नैरंग-ए-खयाल' मासिक पत्रिका का प्रकाशन।

सन् 1901 ई.—साप्ताहिक 'अल-मिस्बाह' का प्रकाशन।

सन् 1902 ई.—'एहसान-उल-अखबार' कलकत्ता से साप्ताहिक समाचार का प्रकाशन।

सन् 1907 ई.—'दारुल सल्तनत' साप्ताहिक पत्रिका का संपादन।

सन् 1912 ई.—साप्ताहिक पत्रिका 'अल-हिलाल' का प्रकाशन।

सन् 1915 ई.—अल-हिलाल को बंद कर 'अल-बलाग' का प्रकाशन।

सन् 1919 ई.—'तजकिर' : आत्मकथा प्रकाशित।

सन् 1931 ई.—'तर्जुमान-उल-कुरआन' (प्रथम खंड) प्रकाशित।

सन् 1946 ई.—'गुबार-ए-खातिर' तथा 'कारवान-ए-खयाल' प्रकाशित।

संदर्भ—

1. असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय।। वृ. उ.
2. ऐ पैगम्बर। जिस समय तुम कुरान का पाठ करते हो, हम तुम में और उन व्यक्तियों के बीच में जिन्हें कियामत के दिन पर विश्वास नहीं है, एक आवरण डाल देते हैं तथा उनके हृदयों पर लिहाफ ओढ़ देते हैं ताकि वे कुरान न समझ सकें और उनके कानों के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि ताकि वे सुन न सकें।" कुरान 17/46

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
ए.एम.यू., अलीगढ़-202202

मुस्लिम कवियों का हिंदी साहित्य में योगदान

डॉ. शिखा रस्तौगी

मुरादनगर में डिग्री कॉलेज में प्राचार्या डॉ. शिखा रस्तौगी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कार्य में संलग्न। लेखन के अलावा कई सामाजिक संगठनों में भी सक्रिय।

मनुष्य के मन में उठने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति ही साहित्य है और भाषा उस अभिव्यक्ति का साधन। भाषा पर किसी एक वर्ग विशेष, संप्रदाय, धर्म अथवा समुदाय का एकाधिकार नहीं होता। धर्म की दृष्टि से भारत प्रारंभ से ही संसार के प्रमुख धर्मों की सम्मिलित भूमि रहा है। बिहार का बौद्ध धर्म, दक्षिण भारत का भक्ति आंदोलन, उत्तरी भारत की वैष्णव भक्ति और राम-कृष्ण आदि अवतार तथा अरब से आई इस्लाम की मान्यताएं आदि सारे देश में समान रूप से मानी जाती हैं।

प्रत्येक धर्म, वर्ग, समुदाय, जाति के व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति हेतु कोई भी भाषा अपनाने को स्वतंत्र होते हैं। प्रारंभ से ही हिंदी किसी एक वर्ग विशेष की भाषा न रहकर सामान्य जन की भाषा रही है। सभी ने उसे मुक्त कंठ तथा मुक्त भाव से गले लगाया है। हिंदी की सहजता, व्यापकता ने सभी को आकर्षित किया है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक के उपासकों में हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमान साहित्यकारों के नाम भी आदर से लिए जाते हैं क्योंकि हिंदी साहित्य का इतिहास किसी एक भाषा का इतिहास नहीं है, उसमें न जाने कितने साहित्यकारों का सहयोग सम्मिलित है जो वस्तुतः अहिंदीभाषी तथा अहिंदीभाषी क्षेत्रों के हैं, निःसंदेह उन्होंने हिंदी और उसके वैभव से प्यार किया, उसको आदरपूर्वक स्वीकार किया और स्वयं अपने सृजन कार्य से उसमें पूरा-पूरा योगदान किया। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि जिन विद्वानों, साहित्य सेवियों ने जितना सेवा कार्य किया है वह किसी स्वार्थ या बल प्रयोग के कारण नहीं किया है। वरन् हिंदी के प्रति उनके आकर्षण, हार्दिक प्रेम, विशुद्ध जिज्ञासा एवं विशुद्ध ज्ञान पिपासा की देन है। सभी आधुनिक भाषाओं का विकास आठवीं-बारहवीं शताब्दी के मध्य हुआ है। हिंदी उस समय मध्य देश की भाषा थी इसलिए चारों दिशाओं में उसने विकास किया।

भारतीय जनमानस आज धर्म, जातिवाद के मिथ्या झंझावात की ज्वाला में झुलस रहा है, ऐसे में उन रचनाकारों की पंक्तियों में सच्चे भक्तों की आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं जो चंदन लेप के समान शीतलता प्रदान करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में साहित्यिक खड़ी बोली में अनेक मुस्लिम कवियों ने साहित्य सृजन किया। ऐसे ही उनमे कुछ प्रमुख नाम हैं—ख्वाजा बंदानवाज, बुरहानुद्दीन जानम, अब्दुल मखीमी, मुहम्मद हुसैनी, निजामी लुत्फी, फिरोजशाह मिराजी, शाहबाज हुसैनी तथा बली साहब आदि। बुरहानुद्दीन जानम की कुछ पंक्तियां हैं—

''ये सब बोल, हिंदी बोल।
पणत अनुभव सेती खोल।।
ऐब न राखे हिंदी बोल।
मनों तो चख देखे खोल।।''

विचित्र संयोग है कि हिंदी का पहला कवि एक मुस्लिम ही था अर्थात् अमीर खुसरो जिनकी रची गई मुकरियां, पहेलियां और नाना गीत आज भारत भर में पढ़े-सुने और गाए जाते हैं। खुसरो तुर्क पिता और भारतीय मां की संतान थे जिनसे उन्हें गंगा-जमुनी संस्कार मिले थे। अपने हिंदी प्रेम के कारण ही उन्होंने हिंदी को फारसी और तुर्की से श्रेष्ठ माना था—

''इस बात मुफ्त श्रेष्ठ हिंद व
हुज्जत किः राजेह अस्त।
बार फारसी व तुर्क अत्र
अल्फाज-ए-खुशगवार।।''

अमीर खुसरो ने तीन पुस्तकें हिंदी में लिखी—'खलिक बारी', 'हालात-ए-कन्हैया' तथा 'नजरान-ए-हिंदी'। इनके अतिरिक्त गुलबर्गा के बंदानवाज, गेसूदराज ने अपनी हिदायतनामा और मीरागुल आशकीन नामक पुस्तकों का प्रणयन करके साहित्य सेवा की।

हिंदी साहित्य के प्रारंभिक कालांतर्गत अमीर खुसरो का नाम आता है तो हिंदी मध्यकाल में अनेक मुस्लिम कवि और अकबरी दरबार के कवि और उनकी रचनाओं को देखा जा सकता है। रामकाव्य पर मुस्लिम रचनाकारों तथा मनीषियों ने स्फुट काव्य रचा गया। श्री रसूल खां रसूल की भावपूर्ण पंक्तियों में सहज व्यक्त है—

''है रखवारे रसूल के जो धनुधारे हुए
महाकाल के काल है।
सज्जनों के लिए जो सुखदायक
दुष्टजनों के लिए तलवार है।।''

यद्यपि मुसलमान भारत में आक्रमणकारी रूप में प्रविष्ट हुए थे परंतु यहां की रीति-नीति से प्रभावित होकर यहीं के होकर रह गए और यहां के सभ्यता-संस्कृति के साथ ही भाषा को भी अपना लिया। हिंदी भाषा को ही अपने हृदयस्थ उद्‌गार प्रकट करने का माध्यम बनाया। साहित्य क्षेत्र में जितना योगदान सूर, तुलसी, बिहारी, पंत, निराला, महादेवी इत्यादि हिंदू कवियों का है उतना ही योगदान कबीर, जायसी, रसखान, रहीम, बोधा, आलम, इंशाउल्लाह खां, दीन मौहम्मद दीन, मिर्जा हसन नासिर, आशुकवि, अब्बास अली खां, 'बास' आदि अनेक मुस्लिम कवियों ने अपने सांस्कृतिक परिवेश भिन्न होते हुए भी इन महान कवियों ने हिंदी साहित्य की सेवा की।

क्रांतिकारी व्यक्तिव के धनी महाकवि कबीर, जिन्होंने शताब्दियों का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित करते हुए अपने युग में व्याप्त वैमनस्य, द्वेष, सांप्रदायिकता दूर करने का बीड़ा उठाते हुए हिंदू-मुसलमानों के बीच जो व्यर्थ भेदभाव उठे थे, उनके बारे में कहा—

''वही महादेव, वही मुहम्मद,
ब्रह्म आदिम कहिए।
कोई हिंदू, कोई तुरुक कहावैं,
एक जमीं पर रहिए।।''

हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल डालते हुए कहा—

''पूजा सेवा नेम व्रत,
गुडियन का सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं,
तब लग संयम मेल।।''

जहां एक ओर मुस्लिम शासक भारत की आध्यात्मिकता और अस्मिता को मिटाने का प्रयास कर रहे थे वहीं दूसरी ओर मुस्लिम कवि भारत की भावात्मक एकता को बनाए रखने में तन मन से प्रयासरत थे। आदिकाल का सर्वप्रथम ग्रंथ 'संदेश रासक' है जिसकी रचना मुस्लिम कवि अब्दुर्रहमान ने की है। यह रासो काव्य परंपरा में सबसे प्रामाणिक और प्रथम कृति है। अब्दुर्रहमान मुल्तान के रहने वाले थे। 'संदेश रासक' की पंक्ति है—

''कह बहुर विणि बदरूरासउ गासियई।''

इसी काल में अमीर खुसरो भी हुए जिनका नाम अबुल हसन था। वह फारसी कवि हैं। फारसी में इनकी गणना फिरदौसी, सेखसदी निजामी के साथ होती है। खुसरो की महत्ता व लोकप्रियता का कारण उनकी हिंदी भाषा की असंख्य रचनाएं हैं। इन्हें अपने हिंदी भाषा के ज्ञान पर गर्व था। स्वयं के बारे में इनका वक्तव्य था—

''मैं हिंदुस्तान की तूती हूं।''

इनकी मनोरंजनात्मक मुकरियां, पहेलियां सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। एक पहेली इस प्रकार है—

''तरवर से एक तिरिया उतरी
उसने बहुत रिझाया।
बाप के उसका नाम जा पूछा
आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा
बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरो में कहे
अपने नाम न बोली।।''

मध्यकाल में भारत में मुगल शासन रहा। मुगल साहित्य और कला प्रेमी थे। बाबर व उसके बेटे हुमायूं कवियों के आश्रयदाता थे। इनके दरबार के नवरत्न प्रसिद्ध हैं। अकबर ने भी हिंदी में काव्य रचना की। अकबर के पौत्र शाहजहां ने तथा शाजहां के बेटे औरंगजेब ने भी हिंदी भाषा में काव्य रचना की। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा की अनेक कविताएं मिलती हैं—

''कहते हो तुम न घर मेरे आया करे कोई।
पर दिल न रह सके तो भला क्या करे कोई।।''

साहित्य के विकास क्रम में मध्यकाल में जो धाराएं चली उनमें निर्गुण भक्ति के अंतर्गत आने वाली ज्ञानाश्रयी अथवा ज्ञानमार्गी (संतकाव्य) तथा प्रेमाश्रयी अथवा प्रेममार्गी (सूफी काव्य) दोनों धाराओं की समृद्धि का कारण मुस्लिम कवियों द्वारा सृजित काव्य था। सूफी धर्म का मूल आधार ही इस्लाम था। इनका उद्‌भव ही इस्लाम धर्म से हुआ। यह उदार भावना पर आधारित है। सूफी साधकों का जहां कहीं ज्ञान मिला उसे ग्रहण करके काव्य सृजन कर साहित्य संपदा को बढ़ाया। सूफी साधना का प्रचार करने वाले इस्लामिक कवि थे। इन्होंने निराकार ब्रह्म की कल्पना करके ऐकेश्वरवाद को स्वीकारा। गुरु कृपा को सब कुछ समझा गया तथा गुरु ही बन्दे को खुदा तक पहुंचाता है। इसकी पुष्टि मलिक मुहम्मद जायसी ने, जो जायस के रहने वाले थे, करते हुए कहा है—

''सैयद अशरफ पीर पियारा
जेहि मोहि पंथ दीनु उजियारा।
लेसा हिए प्रेम कर दीया,
उठी ज्याति या निरमल हीया।।''

प्रेम की पीर के गायक जायसी ने हिंदी साहित्य को उच्चकोटि के रहस्यवाद, विरह वर्णन के रूप में अप्रतिम निधि दी है। बारहमासा पद्धति पर वर्णित विरह गाथा हिंदी साहित्य में जायसी को अमर कर गई—

''मुहम्मद सती सराहिए,
जरै जो अस प्रिय लाभि।।''
× × ×
बरसै मघा झकोरि झकोरि।
भोर हुई नैन चुवे जस औरि।।
× × ×
पंचम बिरह पंचसर मारे।
रकत रोई सगरो वन वारे।
बूड़ि उठे सबै तरिवर पाता।
भीजि मंजीठ टेसू बन राता।।''

जायसी ने पद्‌मावत नामक महाकाव्य में कहा—

''चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा।
साजा विरह दुंद दल बाजा।।
× × ×

जैठ जरै जग चलै लुवारा।
उठहि बवंडर परहि अंगारा।।
× × ×
पूस जाड़ थर थर तन कांपा।
सुरूज जाई लंका दिसि चांपा।।''

मुस्लिम कवियों द्वारा हिंदी साहित्य में प्रेममार्गी काव्य अवधी भाषा मसनवी शैली, महाकाव्य रूप में लिखा गया जो मूलतः शृंगार रस है। इनकी विषय वस्तु तत्कालीन प्रचलित प्रेमाख्यानों पर आधारित है। हिंदू भावनाओं के प्रवाह के कारण हिंदू देवी-देवताओं, अप्सराओं, पक्षियों को भी स्थान दिया गया है। मुस्लिम कवियों द्वारा लिखा प्रेममार्गी काव्य धर्मनिरपेक्ष है। इसमें भारतीय धर्म-मुस्लिम धर्म का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है। इस प्रेममार्गी शाखा का प्रारंभ मुसलमान सूफी कवि मुल्ला दाउद की चंदायन से होता है। तत्पश्चात् प्रेमाख्यानक मुस्लिम कवियों की लंबी परंपरा मिलती है। जैसे–

कुतुबन–इन्होंने मृगावती नामक प्रेमाख्यानक लिखा।

मंझन–इनकी लिखी मधुमालती नामक प्रेमकथा प्रसिद्ध है। इनकी कविता की पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि इसमें इन्होंने आध्यात्मिकता का अच्छा पुट दिया है। यथा–

''देखत ही पहिचानऊ तोहि।
एक रूप जेहि दृश्योगी एही।।
रूप बुत अहै छिपाना है।
साहित्य सब दृष्टि समाना।।''

नूर मुहम्मद–इनकी काव्यकृति 'इंद्रावती' है।

शेख निसार–'युसुफ जुलेखा' की प्रेमकथा को अपने काव्य में स्थान दिया।

उस्मान–इन्होंने जहांगीर के राज्यकाल में संवत 1660 में 'चित्रावली' नामक काल्पनिक प्रेमकथा लिखी, उसके विषय में इन्होंने लिखा–

''कथा एक मैं हिय उपजाई।
कहत मीठ और सुनत सुहाई।।''

शेखनवी–इन्होंने अपनी काव्य रचना में विनय भाव प्रकट किया है–

''पोथी बाच नबी कवि कही।
जे कहु सुनि कहुं से नहीं।।''

इनके अतिरिक्त कासिमशाह, हाफिज, नजफ अली, फाजिल शाह इत्यादि मुस्लिम कवियों ने भी हिंदी भाषा में किंचित साहित्य सृजन किया है। सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत रामकाव्य और कृष्णकाव्य लिखने वाले प्रसिद्ध मुस्लिम कवि राम-कृष्ण को आलंबन बनकर सरस काव्य स्त्रोस्विनी प्रवाहित करने वाले मुसलमान कवि और कवयित्रियां बहुत से हैं।

रसखान–इन्हें हिंदी रस की खान माना जाता है। इन्होंने लिखा है–

''मानस हो तो वही रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो,
चरो नित नंद की धेनू मंझारन।।''

आलम–इनका 'माधवानलकामकंदकला' नामक शृंगार रस प्रधान प्रेमाख्यानक काव्य प्रसिद्ध है।

रहीम–रहीम भी हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि हुए। इनका 'मदनाष्टक' मूलतः कृष्णकाव्य ही है। इनके दोहों में राम के प्रति पूर्ण आस्था दिखाई देती है–

''धूर धरत निज सीस पे
कुछ रहीम केहि काज।
जोहे रज मुनि पत्नी तरी,
सो ढूंढत गजराज।।''

इसके अतिरिक्त रहीम ने नीतिपूर्ण दोहों की भी रचना की–

''रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर जो जुड़े जुड़े गांठ पड़ जाय।।''

रहीम ने भ्रमरगीत काव्य परंपरा में योगदान करते हुए कुछ बरवै छंद रचे हैं जिनमें विरह की प्रधानता है। इनकी गोपिकाएं मुग्धा नायिका बन गई हैं–

''धेरि रहो दिन रतियां बिरह बलाय।
मेहन की ये बतियां उद्धव हाय।।''

रसलीन–इनका पूरा नाम सैयद गुलाम नवी था। 'रसलीन' उपनाम था। इनके शृंगारी दोहे मनोहारी हैं जो दोहे साहित्य में विशेष प्रचलित हैं–

''अभी हलहल मद भरे,
स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत
जिहि चितबन इकबारा।।''

ज्योतिर्विद एवं कवि 'मिर्जा हसन नासिर' की अनेक कृतियां चर्चित हैं। जिसमें उन्होंने राम के अतिरिक्त हनुमंत महिमा का बखान करते हुए कहा–

''सूर्य का सा निज तेज
जिसने भूमि पर आकर दिखाया।
रूप ने जिसके सदा ही
रामभक्तों को लुभाया।
हेम लंका होलिका सी
एक पल में ही जलाई।
दानवों का दंभ जिसने
मृतिका में है मिलाया।।''

राष्ट्रीय कवि 'दीन मौहम्मद दीन' ने हनुमान जी पर बहुत रचनाएं लिखी हैं। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के प्रसिद्ध रचनाकार 'जुमई खां आजाद' ने भी हनुमानजी को भगवद् भक्त रूप रेखांकित किया है। युवा रचनाकार वाहिद अली 'वाहिद' की नव प्रकाशित काव्यकृति बाहिद के राम तथा आशु कवि अब्बास अली खां 'बास' की चर्चित काव्यकृति 'सीता स्वयंवर' कवि अहमद बख्श की 'रामायण' जो हरियाणा की लोक नाट्य शैली में लिखी है। इसके अतिरिक्त वर्तमान हिंदी की नई

कविताएं भी हनुमानजी एवं राम साहित्य पर लिखी जा रही हैं।

हिंदी साहित्य में संत काव्य परंपरा में अनेकों मुस्लिम संत कवि हुए हैं। जिसमें सर्वप्रथम कबीरदासजी का नाम लिया जाता है जो जन्मतः किसी भी धर्म से संबद्ध हों परंतु उनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवार एवं मुस्लिम वातावरण में हुआ था। स्वयं अपने विषय में इन्होंने 'कृत करणी जाति भया जुलाहा' ही लिखा है। इन्होंने हमेशा मंदिर-मस्जिद, राम-रहीम की एकता पर बल दिया है तथा इनके समन्वय में आजीवन लगे रहे—

''कांकर पाथर जोरि के,
मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे,
क्या बहरा हुआ खुदाय।।
× × ×
अरे इन दोऊन राह न पाई,
तुरुक कहे रहिमाना।
आपसु मंद दोऊ लरि-लरि मुये,
धरम काहू नहि जाना।।''

संत काव्य परंपरा में अन्य मुसलमान कवि शेख नेरूद्दीन, कमाल, दादू और रज्जब इत्यादि हैं।

रीतिकाल में रीतिमुक्त काव्यधारा में भी अनेक मुस्लिम कवि हुए हैं जिन्होंने साहित्य के भंडार को बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। रीतिकाल में मुस्लिम संत कवि थे। यारी साहब जिनका वास्तविक नाम यार मुहम्मद था। वे बावरी संप्रदाय के प्रसिद्ध संत थे। इन्होंने आत्मा-परमात्मा को प्रेयसी-प्रेमी मानकर शांत रस के नाना स्फुट पद रचे जिसमें योग, अध्यात्म, ज्ञान आदि के उपदेश प्रमुख वर्ण्य विषय थे। ऐसे ही एक और मुस्लिम संत थे 'दरिया साहब' जो बिहार प्रदेशी थे। उन्होंने किशोरावस्था में ही वैराग्य धारण करके देश भ्रमण किया। कुल मिलाकर 20 ग्रंथों की रचना की। इनका संग्रह है 'दरिया सागर'। इसी परंपरा में अन्य मुसलमान कवि शेख रमरोजितन, बीबी ताज, मुबारक, आलम, अली साहब खां प्रतिम उल्लेखनीय हैं।

हिंदी साहित्य की साठोत्तरी में मुस्लिम कवियों का सराहनीय योगदान रहा है जिनकी संस्कृति व भाषा भिन्न होते हुए भी उन्होंने हिंदी भाषा में साहित्य सृजन कर साहित्य का भंडार भरा है। यह अक्षरशः सत्य है कि प्राचीन मुसलमान कवियों द्वारा ही भारत की भावात्मक एकता की रक्षा हुई थी। हिंदू-मुसलमानों में जो सद्भाव था वो इन्हीं कवियों की देन थी।

प्रारंभ से ही भारतीय मुख्यतः हिंदी साहित्य ने मुस्लिम वर्ग के हिंदी सेवकों को अपनी ओर आकृष्ट ही नहीं किया बल्कि अपने वैशिष्ट्यों की ओर उनका सम्मान, प्रेम, प्रभाव और सक्रियता आदि को बढ़ाया है। इसी के फलस्वरूप मुस्लिम विद्वानों ने अपने प्रयासों से एक ओर हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में सहयोग दिया है दूसरी ओर विश्व भर में उसका प्रेमपूर्वक प्रचार-प्रसार किया है। यह उन्हीं की हिंदी सेवा है कि साहित्य को एक से बढ़कर एक उपयोगी ग्रंथ मिले हैं।

आधुनिक युग में भी मुसलमान साहित्यकारों द्वारा हिंदी सेवा कार्य हो रहा है किंतु उसका रूप परिवर्तित हो गया है। अब इन कवियों का योगदान काव्य क्षेत्र में कम गद्य क्षेत्र में अधिक मिलता है।

मुस्लिम महिलाएं भी कथा साहित्य क्षेत्र में योगदान कर रही हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदिकाल से लेकर अब तक साहित्य की सेवा करने वाले कवियों में मुस्लिम कवियों की अवर्णनीय भूमिका रही है। उनका सहयोग हिंदू साहित्यकारों से कम नहीं है। इसीलिए कहा जाता है—''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिंदू वारियें।।''

तेजपाल सिंह त्यागी, कुशलपाल त्यागी मैमोरियल डिग्री कॉलेज, मुरादनगर, गाजियाबाद।

कालजयी मंटो और उनका साहित्य

डॉ. आरती वर्मा

युवा लेखिका डॉ. आरती वर्मा की दो पुस्तकें प्रकाशित। वर्तमान में विनोबा भावे विश्वविद्यालय के अंतर्गत श्री रामकृष्ण महिला महाविद्यालय गिरीडोह में अध्यापन।

किसी ने कहा सआदत हसन एक नश्वर जीव था लेकिन मंटो कालजयी थे, यह बात सचमुच दिल को छू गई। आज इतने वर्षों बाद भी जब जहां से उनकी कहानियां पढ़ी, मेरे रोंगटे खड़े हो गए। उनके समय उनके जीवन की विडंबनाओं को देखा तो लगा एक सच्चा साहित्यकार ही इतना जुझारू हो सकता है। मंटो के व्यक्तित्व का निर्माण ही विलक्षण था। मंटो का जहां जन्म हुआ वहीं से उन्हें अपने पिता के कठोर स्वभाव और जीवन की वर्जनाओं, विधि-निषेधों से जूझना पड़ा था। मंटो अपने पिता की दूसरी पत्नी की संतान थे। उन्हें अपने परिवार में जितना स्नेह, प्यार और तवज्जो चाही थी वह उन्हें नहीं मिला, जिसके कारण उनके व्यक्तित्व के विकास पर भी प्रभाव पड़ा। उनके पिता पक्के धार्मिक व्यक्ति थे। नमाज और रोजे के भी पाबंद थे लेकिन उस वातावरण में मंटो का दम घुटता था। लोगों की नजरों में वे विधर्मी भी कहे जाते थे। मंटो ने अफसाने और फिल्मी स्क्रिप्ट बहुत सारे लिखे। उनके लेखन का वह दौर सन् 1940 से सन् 1950 तक का था। आजादी की लड़ाई परवान पर थी। उस समय हिंदू, मुस्लिम फसाद की बद दिमागी की घिनौनी तस्वीरें भी दिखाई पड़ती थीं। मंटो को महज 48 वर्ष की उम्र ही नसीब हुई थी, जिसमें से उनको लेखन के लिए 20 से 22 वर्षों का समय ही मिल पाया लेकिन इस अद्भुत लेखक ने मंटोनामा भी लिखा। वह भी अपनी मौत के पांच महीने पहले लिख पाए थे। पर जो भी

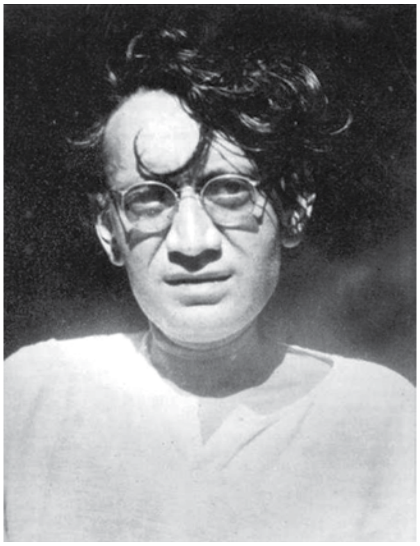

हो आज भी मंटो की कहानियां और उनके पात्र सर्वकालीन जान पड़ते हैं। मंटो के बारे में कहा जाता है कि विभाजन और उसके बाद की विभीषिका पर उन्होंने ज्यादा दहलाने वाली कहानियां लिखी हैं। मंटो उर्दू के वैसे ही कहानीकार थे, जैसे हिंदी में प्रेमचंद, बांग्ला में शरतचंद्र। मंटो आजाद मिजाज के व्यक्ति थे। वे अपने लेखन के पहले पन्ने पर 786 अवश्य लिखते थे। मंटो ने जो जीवन जीया उसी संघर्ष मनमुटाव को उन्होंने विविध विधाओं में अभिव्यक्त किया। बचपन से ही उन्हें नाटक और रंगमंच में गहरी रुचि थी। यह बात उनके पिता को पसंद नहीं थी। मंटो को मजाक करना और मजाक सहना दोनों पसंद था। मंटो जैसे बाहर थे, उतने ही अंदर से खुले दिल के इनसान थे। मुखौटे लगाना उन्हें कभी पसंद नहीं था। जलियावाला बाग के नरसंहार ने मंटो को गहरा आघात दिया था। भगत सिंह के जीवन का मंटो के जीवन पर प्रभाव पड़ा था। आवारगी, हताशा, निराशा, लाचारगी, अकेलापन, अजनबीपन और जीवन की अस्त-व्यस्तता ने उन्हें एक प्रकार से अराजक बना दिया था। बढ़िया सिगरेट, शराब और दोस्तों का साथ उनका शौक था। वे जुल्म और शोषण के विरुद्ध एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में अपनी छटपटाहट अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त करते।

रोजी-रोटी की समस्या मंटो के जीवन में निरंतर बनी रही। इसके लिए उन्हें कई पापड़ भी बेलने पड़े। कहानियां लिखकर घर चलाना कभी संभव नहीं था। इसके लिए उन्होंने रेडियो में काम किया, संपादन का कार्य किया। फिल्मों की पटकथाएं लिखीं और पांच सौ में किसी प्रकार अपना घर चलाया। मुंबई को भी उन्हें करीब से जानने का मौका मिला। वहां की चालें, गलियों, शराबखानों, जुआखानों, चकलों एवं अपराध जगत को उन्होंने नजदीक से देखा, जिसका चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। वेश्याओं से जुड़ी कहानियों में यौन प्रसंगों के साथ-साथ जिंदगी की कई उलझनों एवं उसके विद्रूप पक्षों को उन्होंने दिखाया।

दिल्ली में रहते हुए मात्र उन्नीस महीनों में इन्होंने सौ नाटकों की रचना की। मंटो की इस उपलब्धि को आकाशवाणी की पत्रिका के अंदर के पन्नों पर उसके छोटे से फोटोनुमा चौखटे के साथ प्रकाशित किया गया। यह एक रचनाकार की उपेक्षा थी, जिसे मंटो सहन नहीं कर पाए। रेडियो स्टेशन पर काम करते हुए मंटो की उपेन्द्रनाथ अश्क के साथ टकराहटों की खबर आती थीं।

मंटो अपनी पत्नी साफिया से बेहद प्यार करते थे। साफिया ने भी उसे घर की चिंताओं से मुक्त कर लिखने-पढ़ने का उचित वातावरण

दिया था। मंटो सांप्रदायिकता के पक्के विरोधी थे पर दुर्भाग्यवश भारत विभाजन का दंश भी उन्हें भोगना पड़ा। मंटो लाहौर बड़ी उम्मीद से गए थे। उन्हें लगा था कि वहां उनका सम्मान होगा और काम की कमी नहीं होगी। किंतु ऐसा नहीं हो पाया। वहां उन्हें गहरे आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। वे पैसों के लिए प्रतिदिन एक कहानी लिखते। उनकी कहानियों में विभाजन संबंधी विसंगति, विद्रूपता और तल्खी, बेचैनी दृष्टिगत होती। उनके लेखन में शरणार्थियों का पशुवत जीवन, दंगों की क्रूरता आदि स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

वहां मंटो की पांच कहानियों पर चले मुकदमों पर विचार किया गया। 'काली शलवार', 'धुआं' कहानी पर मुकदमा चला। पर बाद में अश्लीलता के आरोप से बरी किया गया। 'बू' कहानी पर मुकदमा लाहौर में चला। मंटो को कई बार मुंबई और लाहौर आना जाना पड़ा। 'धुआं' कहानी के लिए मंटो को गिरफ्तार किया गया। बाद में वे जमानत पर रिहा हुए। जीवन में वैसे ही पैसे की कमी थी। अनायास आए मुकदमों ने उन्हें तोड़ दिया और वे अपना मानसिक संतुलन खोने लगे। शराब पीना भी बढ़ गया। उन्हें पागलखाने जाने की नौबत आ गई। उनका आखिरी समय अवसाद, निराशा एवं संबंधहीनता, संवादहीनता में बीता लेकिन मंटो ने कभी अपने विचारों और जीवन दर्शन से समझौता नहीं किया।

मंटो के लेखन की शिखर कहानियां 'टोबाटेक सिंह', 'खोल दो', 'ठंडा गोश्त' उस अवधि की लिखी कहानियां हैं, जब मंटो सचमुच पागल हो गए थे। तभी तो दो बार उन्हें पागलखाने में दाखिल करवाया गया था। 'टोबाटेक सिंह' कहानी में मंटो के विभाजनजन्य मनोदृष्टि के कई पहलूओं को देखने का प्रयास किया गया है। इसमें शब्दों की मार बहुत दूर तक है। 'टोबाटेक सिंह' और जमीन का वह टुकड़ा जिसका कोई नाम नहीं महज शब्द नहीं ये कौमों, जातियों और संस्कृतियों के आर-पार ले जाते हैं। 'टोबाटेक सिंह' क्रूर राजनीतिक सत्ता के बरक्स खड़ा है, दरख्त सा गुमसुम, चुपचाप। इस कहानी में जमीन का वह टुकड़ा जिसका कोई नाम नहीं। राजनीतिक दुष्चक्रों का शिकार 'टोबाटेक सिंह' चीखता है और वह पछाड़ खाकर गिर जाता है। उसकी चीख के साथ दो राष्ट्रों के सिद्धांत बेदम हो जाते हैं। यह चीख अपने ही घेरे में दुबके, सहमे व्यक्ति की नहीं बल्कि उस व्यक्ति की है, जो घेरे के बाहर आने के लिए अपने व्यक्तित्व को कई संदर्भों और अर्थों में पहचानने की कोशिश करता है।

'खोल दो' कहानी में बंटवारे के क्रूर परिणामों को झेलने से बनी पागल मनःस्थिति में एक तल्खी उभारती है। शोषक केवल शोषक होता है। उसका कोई मजहब नहीं होता। बूढ़ा सराजुद्दीन अपनी जवान इकलौती बेटी सकीना को ढूंढ़ता है। आखिर उसे सकीना अस्पताल में मिलती है। डाक्टर सराजुद्दीन से कहता है कि खिड़की खोल दो। दूसरी तरफ सकीना के मुर्दा जिस्म में हरकत होती है। वह अपने बेजान हाथों से अपना अजारबंद खोलती है और सलवार नीचे सरका देती है। बूढ़ा पिता खुशी से चिल्लाता है जिंदा है! मेरी बेटी जिंदा है! दूसरी तरफ डाक्टर उसे देखकर सर से पैर तक पसीने से गर्क हो जाता है। वस्तुतः यह उस वक्त को रेखांकित करने वाला जबरदस्त अफसाना था।

'ठंडा गोश्त' कहानी पर अश्लीलता का आरोप लगाए गए। मुकदमा भी चलाया गया। असल बात यह थी कि ईश्वर सिंह एक जबरदस्त वासना संबंधी शौक का शिकार हो जाता है जिसके कारण उसकी मर्दानगी को लकवा मार जाता है। वह लूटमार और कत्ल के दौरान एक नौजवान मुस्लिम लड़की को उठाकर लाता है ताकि सहवास का सुख ले सके पर वह लड़की तो उसके कंधे पर ही मर जाती है। जब उसने देखा कि कंधे पर एक ठंडी लाश पड़ी है तो उस पर इसका ऐसा असर पड़ा कि वह सहवास की दृष्टि से नामर्द हो जाता है। उसकी इस कहानी में बर्बरता, हैवानियत के साथ एक शेष संवेदना भी दिखाई पड़ती है।

मंटो की कहानी टिटवाल का कुत्ता मोर्चा संभाले हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी जो एक कुत्ते की भौंकने की आवाज पर चपड़झुनझुन करते हैं। दोनों को शक होता है कि कहीं कुत्ता हिंदुस्तान का तो नहीं या पाकिस्तान का तो नहीं और बेचारे कुत्ते को दोनों तरफ की गोलियों का शिकार बनना पड़ता है। एक जवान अपनी बूट की एड़ी से जमीन खोदते हुए कहता है अब कुत्तों को भी हिंदुस्तानी या पाकिस्तानी होना पड़ेगा। ऐसे प्रश्न मंटो ने अपनी कहानियों में खड़े किए हैं।

मंटो की कहानियों में बिखरे हैं बंटवारे की विभीषिका, दोनों ओर की राजनीति एवं शरणार्थी कैंपों की बदहाली। गुरुमुख सिंह की वसीयत, शरीफन और रामखेलावन में मानवीय मूल्यों की उपस्थिति है, साथ ही जीवन के सरोकार को रेखांकित करने की पुरजोर कोशिश भी है। मेजोल कहानी में सामान्य महिला तरलोचन और उसकी मंगेतर कृपाल कौर को दुश्मनों के चुंगल से बचाती है और उसकी खातिर अपनी जान दे देती है।

मंटो के लेखन में जलता हुआ इतिहास दिखाई पड़ता है। विभाजन की खाई को महसूस किया जा सकता है। इन्हीं सभी कारणों से आज मंटो को देश, भाषा की सीमाओं से परे विश्व बिरादरी का हिस्सा माना जा सकता है।

मंटो को पढ़ते हुए लगता है मंटो आज भी हमारे बीच हैं, एक यादगार कथाकार के रूप में। यदि किसी ने एक बार मंटो को पढ़ा तो सहज ही उसे आप नजरअंदाज नहीं कर सकते। कथाकार तो पात्रों में जीता है, अभिव्यक्तियों में बसता है तो भला वह हमसे कैसे दूर हो पाएगा।

प्राध्यापिका, श्री रामकृष्ण महिला महाविद्यालय, गिरिडीह–815301 (झारखंड)

स्वाधीनता का संघर्ष और क्रांतिकारी महिलाएं

पंडित सुरेश नीरव

पंडित सुरेश नीरव एक जाने-माने साहित्यकार हैं। कविता, हास्य-व्यंग्य सहित अनेकों कृतियां प्रकाशित। विभिन्न सीरियल और टेलीफिल्म्स में लेखन। भारत के पूर्व राष्ट्रपतियों महामहिम ज्ञानी जैल सिंह व डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्मानित। अनेक हिंदी संस्थाओं से सम्मानित। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

स्वाधीनता, क्रांति, आजादी, मुक्ति सभी स्त्रीवाचक शब्द हैं। तो फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि भारत के स्वाधीनता-संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी न हो। भारत के वैदिक साहित्य में तो स्त्री शक्ति, रणचंडी, काली और दुर्गा के नाम से पहले से ही प्रतिष्ठित हैं। इसी क्रम में एक नहीं ऐसी अनेक वीरांगनाएं हमारे इतिहास के गौरवशाली पन्नों में दर्ज हैं जिन्होंने अपने साहस और सूझबूझ से आजादी की मशाल को न केवल जलाए रखा बल्कि युद्ध के मैदान में फिरंगियों को गाजर-मूली की तरह काटते हुए अंत में स्वतंत्रता की वेदी पर हंसते-हंसते अपने प्राणों का उत्सर्ग भी कर दिया। आज जब पूरा देश आजादी का जश्न मना रहा है तो हमारा फर्ज़ बनता है कि हम अपनी उन पूर्वज वीरांगनाओं का पूरी कृतज्ञता के साथ स्मरण करें।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम यानि सन् 1857 ई. से पहले का भी इतिहास यदि टटोलें तो भारतीय वीरांगनाओं में अंग्रेजों से लोहा लेने वाली प्रथम वीरांगना के तौर पर कित्तूर (कर्नाटक) की रानी चेनम्मा का नाम आता है। जिन्होंने सन् 1824 ई. में अंग्रेजों को मार भगाने के लिए 'फिरंगियों भारत छोड़ो' कहते हुए आजादी का बिगुल बजाया था। चेनम्मा ने रणचंडी का रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे। यह बात अलग है कि अंततः उन्हें पराजित होना पड़ा। मृत्यु से पूर्व रानी चेनम्मा काशीवास में रहना चाहती थीं। भले ही उनकी यह चाह पूरी न हो सकी हो पर रानी चेनम्मा की मौत के छह वर्ष बाद इसी काशी में क्रांति की देवी वीरांगना लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ।

भारत के स्वतंत्रता इतिहास में 29 मार्च सन् 1857 ई. का दिन बहुत महत्त्वपूर्ण है। बैरकपुर छावनी में इसी दिन मंगल पांडे ने सन् 1857 की क्रांति का सबसे पहला बिगुल बजाया था। मगर कितने लोग जानते हैं कि मंगल पांडे को चर्बी लगी कारतूसों की जानकारी भी लज्जो के मार्फत ही मिली थी। लज्जो बैरक के जमादार मातादीन की पत्नी थी जो अंग्रेजों के घरों में नौकरानी का काम करती थी। मेरठ में सैनिकों को बगावती बनाने और दिल्ली कूच करने तक की प्रेरणा उन्हें 9 मई, सन् 1857 ई. को मेरठ की साधारण-सी दिखने वाली महिलाओं ने ही दी थी, जिन्होंने बाजार में घूमते हुए सैनिकों से कहा था कि—एक वो तुम्हारे साथी हैं जो देश को आजाद करवाने के जुर्म में कैद कर लिए गए हैं, उन्हें फांसी पर लटकाया जाएगा और एक तुम लोग हो जो उन्हीं फिरंगियों की चाकरी कर रहे हो, जिन्होंने तुम्हारे भाइयों को बंदी बना लिया है। लानत है तुम पर। तुम्हें मूंछें शोभा नहीं देतीं। तुम्हें तो चूड़ियां पहन लेनी चाहिए। महिलाओं की यह फिकरेबाजी ही मेरठ विद्रोह का कारण बनी जिसकी आग 10 मई को धधक उठी।

अवध की बेगम हज़रत महल और झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई के पराक्रम की गाथाओं से तो सभी परिचित हैं मगर ऐसी तमाम और भी वीरांगनाएं रही हैं जिन्होंने अंग्रेजों से आमने-सामने की लड़ाई लड़कर उनके दांत खट्टे किए हैं। इनमें बेगम हजरत महल की महिला सैनिक दल की मुखिया रहीमी का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। रहीमी की अगुवाई में तमाम महिला सैनिकों ने अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया। नजाकत और नफासतवाले इस शहर लखनऊ की ही एक तवायफ हैदरीबाई के योगदान को भी नहीं नकारा जा सकता है जो अपने ग्राहक अंग्रेज अफसरों के जरिए मिलने वाली महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को यथा समय क्रांतिकारियों तक पहुंचा दिया करती थी।

बाद में हैदरीबाई कोठों की दीवार लांघकर रहीमी गुर्जरी के सैनिक दल में शामिल हो गई और उसने अंग्रेजों से देश की आजादी के लिए खुलकर युद्ध किया। अवध की ऐसी ही वीरांगनाओं में एक और नाम है वीरांगना ऊदा देवी का पति जब चिनहट की लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हो गए तो दस्ते की कमान अकेले संभाली। ऊदा देवी ने अकेले ही पीपल के घने पेड़ के ऊपर छिपकर लगभग 32 अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया था। मेरठ में भले ही सिपाही 9 मई, 1857 को बगावती हुए हों मगर अवध में तो इससे एक दिन पहले ही महिला क्रांतिकारी अंग्रेजों से डटकर लोहा ले रही थीं।

ऐसी ही एक वीरांगना आशा देवी थीं, जिन्होंने 8 मई, सन् 1857 ई. को अंग्रेजी सेना का

सामना करते हुए शहादत पाई। आशा देवी के बलिदानी जत्थे में जान हथेली पर लेकर लड़ने वाली स्त्री योद्धाओं में रनवीरी वाल्मीकि, शोभा देवी, वाल्मीकि, सहेजा वाल्मीकि, महावीरी देवी, नामकौर, राजकौर, इंदर कौर, हबीबा, गुर्जरी देवी, भगवानी देवी, भगवती देवी, कुशल देवी, रहीमी गुर्जरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अवध में यदि स्त्रियां रणक्षेत्र में फिरंगियों से लोहा ले रही थीं तो इधर कानपुर भी कतई पीछे नहीं था जहां पेशे से तवायफ अप्रतिम सौंदर्य की धनी अजीजनबाई 1 जून, सन् 1857 ई. को कानपुर में सूबेदार टीका सिंह के घर में नाना साहब की अगुवाई में तात्या टोपे, अजीमुल्ला खान, बालासाहब, और शमसुद्दीन खान क्रांति की योजना बना रही थी। आजादी की जंग में शिरकत करने के लिए अजीजन ने मस्तानी टोली के नाम से 400 महिलाओं की एक टोली बनाई थी जो मर्दाना भेष में रहती थी।

बिठूर के युद्ध में पराजित होने पर अजीजनबाई पकड़ी गई। उसे जनरल हैवलॉक के सामने हाजिर किया गया। जनरल हैवलॉक ने प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपनी गलतियों को स्वीकार कर क्षमा मांग ले तो उसे माफ कर दिया जाएगा। किंतु अजीजन ने एक वीरांगना की भांति उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। अंततः अजीजन को गोली मार दी गई और अजीजन शहीद हो गई। नानाजी पेशवा की ग्यारह वर्षीय पुत्री मैनादेवी भी क्रांतिकारी थी जिसे पेशवा और उनके साथियों का पता न बताने के जुर्म में अंग्रेजों ने जिंदा जला दिया था। अवध क्षेत्र से मुक्ति संग्राम में अपने शौर्य से इतिहास में नाम दर्ज करवाने वाली वीरांगनाओं में एक और महत्त्वपूर्ण नाम है—तुलसीपुर रियासत की रानी राजेश्वरी देवी का। जिसने होपग्रांट के सैनिक दस्तों के छक्के छुड़ा दिए थे। इसी तरह अवध की बेगम आलिया, मिर्जापुर रियासत की रानी तलमुंद, भदरी की तालुकदार ठकुराइन सन्नाथ कोइर और मनियारपुर की सोगरा बीबी ने बिना किसी बात की परवाह किए क्रांतिकारियों को रसद-पानी और आर्थिक सहायता दी।

मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर की बेगम जीनत महल, दिल्ली के शहजादे फिरोजशाह की बेगम तुकलाई सुल्तान जमानी बेगम भी क्रांति के दौरान महल छोड़कर युद्ध शिविरों में रहीं और वहीं रहकर सैनिकों को रसद पहुंचाने और घायल सैनिकों की सेवा का इंतजाम करती रहीं। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने भी अपनी सेना में 'दुर्गा दल' के नाम से महिलाओं की एक अलग टुकड़ी बनाई हुई थी। जिसका नेतृत्व झलकारीबाई के कुशल हाथों में था। इस दल में मोतीबाई, सुंदर-मुंदर, काशीबाई, जूही और दुर्गाबाई भी इसी दुर्गा दल की सैनिक थीं। मध्यप्रदेश के रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई ने भी सन् 1857 के संग्राम में अंग्रेजों से डटकर युद्ध किया और लड़ते-लड़ते मौत को गले लगा लिया।

मध्य प्रदेश में ही जैतपुर और तेजपुर की रानियों ने भी अपनी रियासत के अंग्रेजी हुकूमत से आजाद कर दतिया के क्रांतिकारियों को लेकर अंग्रेजी सेना से मोर्चा लिया। इन वीर महिलाओं की शृंखला में महावीरी देवी (मुंडभरः मुजफ्फरनगर) के योगदान को नहीं भुलाया सकता जिसने कि एक साधारण महिला होने के बावजूद सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अपनी बाइस महिला साथियों को संगठित कर अंग्रेजों से लड़ने का हौसला दिखाया था। अनूप शहर की चौहान रानी ने भी अंग्रेजों को हराकर अनूप शहर के थाने पर लगे यूनियन जैक की जगह हरा मुगलिया झंडा फहराकर स्त्री शक्ति का परिचय दिया था। स्वतंत्रता के पहले संग्राम के बाद जब भारत को आजाद करवाने का दूसरा दौर आया तो इसमें भी महिलाओं ने अपनी कुर्बानियां और योगदान पुरुषों से कम नहीं दिया।

सन् 1930 में बंगाल में सूर्यसेन के नेतृत्व में हुए चटगांव विद्रोह में युवा महिलाओं ने क्रांतिकारी आंदोलनों में स्वयं भाग लिया। जिनमें प्रीतीलता वाडेयर और कल्पनादत्त मुख्य हैं। प्रीतीलता वाडेयर ने एक यूरोपीय क्लब पर हमला किया और बंदी जीवन न बिताना पड़े इसलिए आत्महत्या कर ली। सन् 1931-32 के कोल आंदोलन में आदिवासी महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही। स्वाधीनता सेनानी बिरसा मुंडा के सेनापति—गया मुंडा की पत्नी जिसका नाम 'माकी' था वह तो लक्ष्मीबाई की तरह बच्चे को गोद में लिए फरसा-बलुआ के बूते अंग्रेजों से आखिरी सांस तक लड़ती रहीं।

उधर सन् 1930-32 में मणिपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की अगुआई रानी गुइंदाल्यू ने कर स्त्री शक्ति का परचम फहरा दिया। क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा की पत्नी 'दुर्गा भाभी' जो सरदार भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद के साथ कई एक्शनों में शामिल रहीं उनका नाम भला कौन नहीं जानता। ऐसे ही काकौरी कांड के क्रांतिकारियों का मुकदमा लड़ने के लिए अपनी शादी के लिए मां-बाप द्वारा इकट्ठा किया सोना बेच देने वाली देशभक्त सुशीला दीदी को भी कौन भुला सकता है।

सन् 1942 के आंदोलन में आजाद रेडियो चलाने वाली और '1942 की रानी झांसी' के नाम से जानी जाने वाले अरुणा आसफ अली और आजाद हिंद फौज की रानी झांसी रेजीमेंट की कमाडिंग ऑफिसर रहीं कैप्टन लक्ष्मी सहगल के अलावा कस्तूरबा गांधी, सरोजनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू, लीलावती मुंशी, सुभद्रा कुमारी चौहान और सुचेता कृपलानी से लेकर श्रीमती इंदिरा गांधी तक ऐसी अनेक महिलाएं हैं जिन्होंने देश की आजादी के लिए जेल यात्राएं की और तमाम तरह के कष्ट उठाकर इस देश को आजादी दिलाने में अपना सक्रिय योगदान दिया है। हमें अपनी देश की इन वीरांगनाओं पर गर्व है।

आई—204, गोविंदपुरम, गाजियाबाद—201003

कश्मीर 'धरती का स्वर्ग'

प्रो. मुहम्मद अफजल ज़रगर

कश्मीर सेंट्रल यूनिवर्सिटी में कुलसचिव पद पर आसीन प्रो. मुहम्मद अफजल ज़रगर बॉयो कैमिस्ट्री के प्रोफेसर हैं। हिंदी भाषा के प्रति उनका अत्यंत रुझान है। लेखक का यह लेख हिंदी सीखने वालों के लिए प्रेरणास्पद प्रयास है।

सदियों से कश्मीर 'धरती के स्वर्ग' के रूप में जाना जाता है। इसके अलौकिक प्राकृतिक सौंदर्य ने हर युग में बड़े-बड़े बादशाहों, शायरों तथा देश-विदेश के विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया है। जहां तक इसके नामकरण का प्रश्न है तो जनश्रुति के अनुसार 'कश्यप ऋषि' के नाम से इस प्रदेश का नाम कश्मीर पड़ा। कालांतर में कश्मीर ने कई परिवर्तन देखे, कई हुकूमतें देखीं, जिनका प्रभाव यहां के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर बहुत गहराई से पड़ा। यहां अशोक, विक्रमादित्य, ललितादित्य तथा अवंतिवर्मन जैसे पराक्रमी सम्राटों के अतिरिक्त ब्राह्मणों, बौद्धों, मुगलों, सिक्खों तथा डोगरों ने भी शासन किया। यह सुन्दर तथा शांत घाटी कई बार उजड़ी और बसी। विभिन्न राजाओं ने इसे खुले मन तथा खुली बाहों से अपनाया और यही मिली-जुली संस्कृति 'कश्मीरियत' कहलाई। यद्यपि यहां शासन करने वाले अधिकतर शासकों का यहां के लोगों से कम और यहां की सुंदर भूमि से अधिक प्रेम था। जैसे मुगल बादशाह 'अकबर' तथा 'जहांगीर' ने कई आलीशान बगीचों का निर्माण करवाया किंतु यहां के लोगों के हृदय पर विजय न पा सके। वास्तव में यदि देखा जाए तो यहां के लोगों के मन-मस्तिष्क पर सबसे सशक्त प्रभाव तुर्की, अरब, ईरान तथा बगदाद से आने वाले सूफी संतों का पड़ा। ये सूफी संत न केवल अपने साथ इस्लाम का रहस्यवादी रूप लेकर आए बल्कि अपने देशों का रहन-सहन, वेशभूषा, दस्तकारी, भाषा, खान-पान तथा संस्कृति भी लेकर आए। इस प्रकार कश्मीर में एक नवीन सांस्कृतिक तथा धार्मिक आंदोलन की शुरूआत हुई। इस आंदोलन की पहली कड़ी रहे 'हजरत अमीर कबीर सैयद अली हमदानी' (र), जिन्हें घाटी के लोग प्रेम तथा आदर से 'शाहे हमदान' के नाम से भी पुकारते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार 'शाहे हमदान' लगभग तीन सौ शिष्यों के साथ कश्मीर आए थे। उस समय यहां शैव, शाक्त तथा बौद्ध मत का वर्चस्व था। शाहे हमदान ने बिना कोई शस्त्र उठाए केवल प्रेम तथा सद्भाव से इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त ऊंच-नीच के भेदभाव को समाप्त कर सभी के लिए ईश्वर की अराधना का मार्ग प्रशस्त किया और सभी लोगों को चाहे वह किसी भी जाति या वर्ग के रहे एक बराबर बताया। उन्होंने सबको शांति, मानवता तथा भाईचारे का पाठ पढ़ाया।

शाहे हमदान द्वारा प्रज्ज्वलित मशाल को आगे बढ़ाया हजरत बुलबुलशाह (र) ने, जो कि एक बहुत ही सशक्त सूफी संत थे। शाहे हमदान की समकालीन संत कवयित्री रही हैं— 'ललद्यद', जिन्हें कश्मीर जनता लल्लेश्वरी, लल्लाआरिफा के नाम से भी जानती है। यूं तो ललद्यद के जन्म के विषय में कई मत उपलब्ध हैं। उनमें से क्रमशः तीन मत उभर कर आते हैं—डॉ. ग्रियर्सन तथा आर.सी. टेम्पल के अनुसार उनका जन्म 14वीं शताब्दी में हुआ तथा वह श्रीनगर (कश्मीर) से लगभग नौ मील दूर पांपोर नामक स्थान के निकट सिमपुरा गांव में एक ब्राह्मण के घर पैदा हुई। बाल्यावस्था से ही इस संत कवयित्री का मन सांसारिक बंधनों के प्रति विद्रोह करता रहा, जिसकी चरम परिणति बाद में 'वाख साहित्य' के रूप में हुई। वाख प्रायः चार पंक्तियों का एक सारगर्भित, सूत्रात्मक, स्वतंत्र तथा अपने आप में पूर्ण पद्य है। इसमें कवयित्री ने जीवन दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में गूंथ दिया है।

ललद्यद के पश्चात जिस महानुभूति को कश्मीरी समाज में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई वे थे शेख नुरूद्दीन वली (र) (1377 ई.)। इन्हें कश्मीरी जनता प्रेम तथा सम्मान से 'नुंद ऋषि' के नाम से भी पुकारती है। नुंद ऋषि कश्मीरी इस्लामी ऋषि संप्रदाय के प्रवर्तक संत कवि हुए हैं। कश्मीर में इस्लामी ऋषि संप्रदाय का आविर्भाव 14वीं शताब्दी से माना जाता है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इससे पूर्व जितने भी सूफी संप्रदाय कश्मीर आए थे वे सभी विदेशी थे किंतु इस्लामिक ऋषि संप्रदाय पूर्णतः कश्मीरी संप्रदाय है। इन ऋषियों ने अपने विचारों के प्रसार-प्रसार के लिए कभी भी धार्मिक कट्टरता तथा जोर जबरदस्ती का सहारा नहीं लिया, बल्कि अपनी उदार धार्मिक नीति, अपने आचरण, सदाचार एवं सादगी से जनता के हृदय को जीता। इस संप्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता रही 'हिंदू-मुस्लिम एकता'। कश्मीर में इन ऋषियों की दरगाहें यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। 'अबुल फजल' ने 'आइने अकबरी' में इन ऋषियों के संबंध में लिखा है—''ये कश्मीर के अत्यंत सम्मानित व्यक्ति थे। ईश्वर के ये सच्चे भक्त न किसी से कुछ मांगते थे, न ये मांस का आहार करते थे और न ही गृहस्थी में फंसते। धार्मिक सहिष्णुता इनका विशेष संबल थी।

नुंद ऋषि के पदों (श्रुकों) में जाति-पाति का विरोध लक्षित होता है। वे हिंदुओं और मुसलमानों को एक ही ईश्वर द्वारा पैदा किया गया मानते हैं। अपने एक श्रुख (श्लोक/पद) में वे कहते हैं—''अकिस मालिस माजिहन्द्यमितन दय त्रा विथ त क्याय मुसलमान क्योही ह्य-घन का बन्दन तोषि खोदाय।'' —(नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, स. 1965, पृ. 48)

इस प्रकार धार्मिक समन्वय तथा मानवतावाद की भावना अन्य कश्मीरी संतों में भी पाई जाती है। इनमें से कुछ प्रमुख संतों के नाम इस प्रकार हैं—रूपभवानी, शाह गफूर, न्यात्र साहब, शम्स फकीर, अहमद बटवारी, वाजा महमूद, वहाब खार, ख्वाजा हबीब

उल्लहा, शाह क्लंदर, अहद जरगर आदि। उपरोक्त सभी संतों ने मन, वचन तथा कर्म की पवित्रता पर बल दिया। इनके उपदेशों का प्रभाव कश्मीरी जनमानस तथा संस्कृति पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कश्मीर को विशिष्टता प्रदान करने में यहां की कला, संस्कृति तथा साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसका श्रेय काफी सीमा तक यहां के लोकप्रिय शासक बड़शाह उर्फ जैनुल आबिदीन (1420-1470 ई.) को जाता है। वे बहुत बड़े विद्वान तथा प्रजापालक थे। उनके दरबार में विद्वानों, संगीतज्ञों, कलाकारों, दस्तकारों को यथोचित सम्मान दिया जाता था। यही कारण है कि उनके दरबार में देश-विदेश से आए विद्वानों तथा गुणी व्यक्तियों की भीड़ लगी रहती थी। कश्मीरी इतिहासकारों के अनुसार विश्व भर में प्रसिद्ध कश्मीरी दस्तकारी (पेपरमशी, अखरोट की लकड़ी पर नक्काशी, कालीन बुनना, शाल बनाना, कागज निर्माण, शीशा तथा पत्थर तराशना), कश्मीरी वाज़वान (पकवान) आदि बडशाह के सद्प्रयासों से उनके शासनकाल में ही विकसित हुए हैं। उनके दरबार में 'सतूम' नामक हिंदी भाषा का बहुत बड़ा विद्वान हुआ करता था। 'बादशाह' का शासनकाल कश्मीरी इतिहास का 'स्वर्णकाल' माना जाता है।

कश्मीर की संस्कृति बहुत समृद्ध है। यहां की लोक कथाएं विश्व साहित्य में प्रसिद्ध हैं। मनोरंजन के साथ-साथ इनका मुख्य उद्देश्य नीति, धर्म, शिक्षा तथा उपदेश आदि रहा है। वैसे तो कश्मीर में लोककथाओं का खजाना भरा पड़ा है किंतु इनमें से बहुत कम लिखित रूप में उपलब्ध है।

सन् 1885 ई. में पादरी 'जॉन हिल्टन नावेल्स' ने कश्मीरी लोक-कथाओं और किस्सों को 'फोक टेल्स ऑफ कश्मीर' शीर्षक से संकलित किया। इससे पूर्व उन्होंने कश्मीरी कहावतों और मुहावरों को संकलित करके एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया था। इसके अतिरिक्त एक अन्य विदेशी विद्वान ऑरेल स्टाइन ने भी 'हातिम्स टेल्स' शीर्षक से कश्मीरी किस्सों को पुस्तक के रूप में संकलित किया, जिसे ग्रियर्सन ने संपादित कर प्रकाशित किया। 'स्टाइन' ने सन् 1912 ई. में यह किस्से उस समय के मशहूर किस्सागो 'हातिम तेली' की जबानी सुने थे। कश्मीरी साहित्यकारों ने जब इस लोककथाओं को लिपिबद्ध किया तो उन्होंने इन्हें अधिकतर गद्य-पद्य मिश्रित रूप में लिखा। इन कथाकारों ने कथा लिखते समय इनमें लोकगीतों का भी समावेश किया है। आज भी विभिन्न महफिलों में यह लोककथाएं लोक संगीत के साथ गा कर सुनाई जाती हैं। इन कथाओं में लोक प्रचलित विश्वासों तथा विभिन्न नियमों का चित्रण किया गया है। ऐसी ही कुछ प्रमुख कथाएं जो कश्मीरी लोकमानस में सदियों से बसी हुई हैं, इस प्रकार हैं—

'लैला-मजनू', 'शीरी-खुसरी', 'हियमाल', 'अकनन्दुन', 'बहराम-व गुल अन्दान', 'वमीक-अजरा', 'चद्रेवदन', 'मुमताज', 'युसुफ-जुलेखा', 'गुलनूर-गुलरेज', 'सोहनी-मयवाल', 'रैजा व जेबा', 'गुलरेज', 'ग्रीस्तनामा' आदि।

लोक नृत्य तथा लोक संगीत से अलग कश्मीरी संगीत का अपना एक इतिहास रहा है। कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' के अनुसार जब कश्मीर एक प्रमुख बौद्ध केंद्र के रूप में परिवर्तित हो चुका था, उस समय बौद्ध धर्म के अनुयायियों अथवा लामाओं ने संगीत की मधुर स्वर लहरियों को लोकप्रिय बनाया। धीरे-धीरे यह संगीत बौद्ध विहारों से निकल कर राजदरबारों तक पहुंच गया। नीलमत पुराण में भी विभिन्न उत्सवों तथा त्योहारों पर संगीत सभाओं के आयोजन का उल्लेख मिलता है। कश्मीरी संगीत को विकसित करने में सर्वप्रथम 'महाराज जलूक' का नाम उल्लेखनीय है। उनके पश्चात् 7वीं सदी में 'राजा ललितादित्य मुक्तापीड़' ने कश्मीरी संगीत को पल्लवित-पोषित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आठवीं सदी से दसवीं सदी के मध्य संगीत का अभूतपूर्व विकास होने लगा। नवीन राग-रागनियों का अन्वेषण किया गया। कई पुस्तकें रची गई किंतु उनमें से अधिकतर आज उपलब्ध नहीं हैं। जे.सी. दत्त अपनी पुस्तक 'किंग्स ऑफ कश्मीर' में लिखते हैं—''कश्मीर के पूर्ववर्ती राजाओं में कोई न कोई कलात्मक विशेषता अवश्य थी।'' महाराजा हर्ष स्वयं संगीत के विभिन्न वाद्यों को बजाना जानते थे। कश्मीर पर 266 वर्षों तक राज करने वाले 'शाहमीरी वंश' के प्रसिद्ध सुल्तान ज़ैन-उल-आबीदीन स्वयं एक बहुत बड़े संगीतकार थे। इनके दरबार में 'अधसोम', श्रीवर, मुल्ला जमील, मुल्ला जैदी और मुल्ला हसन तथा जाफरान आदि जैसे महान संगीतकार शामिल थे। तत्पश्चात् 'चक' शासकों, मुख्य रूप से युसुफ शाह चक ने संगीत को प्रोत्साहन दिया।

मुगलों के पश्चात् कश्मीर पर पठानों तथा सिक्खों ने शासन किया। इनका संगीतकारों की ओर रवैया नकारात्मक ही रहा, जिसके चलते इन्होंने संगीत तथा विभिन्न कलाओं पर प्रतिबंध लगा दिया। किंतु राजनीतिक बदलाव के साथ ही यह फिर से अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ प्रस्फुटित हुई। कश्मीरी संगीत की समृद्धि ने भारतीय संगीत के साथ-साथ विदेशी संगीत मुख्यतः ईरानी-तुरानी का योगदान भी सर्वोपरि है। कश्मीरी संगीत ने इन राग-रागनियों को संपूर्ण रूप से आत्मसात कर लिया है।

कश्मीर में शास्त्रीय संगीत की शुरुआत मुगलिया दौर से ही हो गई थी किंतु साठ के दशक से कश्मीरी संगीतकारों ने यहां के गीतों को शास्त्रीय संगीत की विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध कर गाने के सफल प्रयास किए।

जहां तक सुगम संगीत का प्रश्न है तो कश्मीर में इसका प्रारंभ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुआ। संचार माध्यमों के प्रचार-प्रसार से सुगम संगीत को काफी लोकप्रियता हासिल हुई। इस प्रकार कश्मीरी संगीत अपनी दीर्घ यात्रा तय करता हुआ वर्तमान स्वरूप तक पहुंचा है।

इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाए तो कश्मीर की स्वर्गरूपी धरती, यहां के लोग, कला, संस्कृति, धार्मिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक समन्वय सदियों से संपूर्ण विश्व के आकर्षण का कारण रहा है और भविष्य में भी बना रहेगा।

कुलसचिव, सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ कश्मीर, ट्रांजिट कैंपस, सोनवार, श्रीनगर-190004

हिंदी के विकास में वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों का योगदान

डॉ. सातप्पा लहू चव्हाण

सातप्पा लहू चव्हाण : आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से हिंदी-मराठी विषयक वार्ताओं का प्रसारण। कई सम्मान प्राप्त। अनेक सामाजिक आंदोलनों में सहभागिता। विभिन्न राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आलेख।

हिंदी के विकास में मुद्रित और विद्युत्यिकी जनसंचार माध्यमों का शुरू से महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मुद्रित जनसंचार माध्यमों में विभिन्न पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं, मुद्रणालयों से प्राप्त जन भावना को प्रस्तुति देने वाले सर्वजनहिताय दस्तावेज, विद्युत्यिकी जनसंचार माध्यमों में श्रव्य, श्रव्य-दृश्य जैसे रेडियो, ऑडियो, टी.वी., सिनेमा, वीडिओ और नए जनसंचार माध्यमों में उपग्रह संगणक प्रणाली, इंटरनेट, इंटरनेट द्वारा हम तक पहुंचने वाला वेब मीडिया, भ्रमणध्वनि, अंधजनों के लिए उपलब्ध सॉफ्टवेयर, आज वेब मीडिया ने अपनाने के कारण हिंदी भाषा वेब पर देखी और सुनी जा सकती है। अपने आप को अभिव्यक्त करने के लिए वेब मीडिया में हिंदी का प्रयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। भूमंडल उपग्रह संचार के विकास के कारण भौगोलिक देश, काल, वातावरण कैसा भी हो, वेब मीडिया के माध्यम से हिंदी भाषा विश्व स्तर पर अभिव्यक्त हो रही है। इस बात को हम नकार नहीं सकते। बहुभाषी साफ्टवेयर अंकुर, सुविंडो, आकृति, शब्द रत्न, शुभलाभ, आदि के उपयोग के कारण वेब मीडिया के माध्यम से हिंदी का विकास हो रहा है।

हिंदी का विकास : वेब मीडिया वाया नए जनसंचार माध्यम—हिंदी भाषा विकास को केंद्र में रखकर भारत सरकार की ओर से अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। भारत सरकार की ओर से आयोजित कार्यक्रमों को आम जनता तक पहुंचाने में नए जनसंचार माध्यमों ने विशेष कर वेब मीडिया ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपने उद्भवकाल से ही जनसंचार माध्यमों ने लोकशिक्षक की भूमिका में ही अपना कार्य जारी रखा है। सन् 1946[1] कंप्यूटर का जन्मवर्ष माना जाता है। बीसवीं सदी के आठवें दशक में ही 'सायबर स्पेस' का बोलबाला हुआ। सन् 1969[2] में अमेरिका में पहली बार 'इंटरनेट' का प्रयोग हुआ। सन् 1980[3] के दशक के अंत में यह विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ गया। सन् 1993 को व्यावसायीकरण होने के बाद तो इंटरनेट का प्रयोग करने वालों की बाढ़-सी आ गई।[4] इक्कीसवीं सदी में तो इंटरनेट सभी क्षेत्रों पर छा गया। डॉ. शंकर बुंदेले कहते हैं, ''इंटरनेट ने जीवन के अंग-प्रत्यंग को प्रभावित कर लिया है।''[5] कहना आवश्यक नहीं कि 'वेब मीडिया' इंटरनेट की ही देन है। इक्कीसवीं सदी में साहित्य की विभिन्न विधाओं के प्रचार-प्रसार में प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है। इक्कीसवीं सदी में साहित्य की विभिन्न विधाओं की स्थिति एवं संभावनाओं का अध्ययन करना है तो वेब मीडिया का एक स्वतंत्र विधा के रूप में अध्ययन करना अनिवार्य है। www वर्ल्ड वाइड वेब (विश्वव्यापी तरंग) को साइबर स्पेस, सुपर हाइवे, इंफॉर्मेशन सुपर हाइवे, द नेट और ऑन लाइन आदि नाम दिए हैं। ''इक्कीसवीं सदी का जनसंचार (Mass media) हमारे जीवन तथा राष्ट्रीय विकास और उसकी दिशा निर्धारण का एक अभिन्न अंग बन चुका है। प्रातः होते ही अधिकतर लोग समाचार पत्र पढ़ने में व्यस्त हो जाते हैं, तो सुदूर गांवों के कुछ लोग रेडियो खोल लेते हैं। कुछ अन्य लोग दूरदर्शन पर आंख-कान लगाए बैठ जाते हैं। इन विविध माध्यमों से हम राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, खेलकूद आदि से संबंधित गतिविधियों के समाचारों के अतिरिक्त विविध प्रकार के मनोरंजन का लाभ उठाते हैं। इन माध्यमों से प्रसारित विज्ञापन हमें उपभोक्ता संस्कृति से अनायास ही जोड़े रखते हैं। सच तो यह है कि जनसंचार के इन विभिन्न माध्यमों ने व्यक्ति से लेकर जनसमूह तक तथा एक देश से लेकर विश्व के विभिन्न देशों को एक सूत्र में बांध दिया है। इस बंधन के परिणामस्वरूप जनसंचार माध्यम राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर चिंतन, विचार, राजनीति, अर्थ, संस्कृति आदि के क्षेत्र में सम्मिलित प्रभाव डालने लगे हैं और उनमें विश्व का मानचित्र बदलने की क्षमता विकसित हो चुकी है... जनसंचार का उद्देश्य है विविध प्रकार के भावों, विचारों तथा जानकारियों को अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाना।''[6] कहना आवश्यक नहीं कि वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों ने विविध प्रकार के भावों, विचारों और जानकारियों का आदान-प्रदान सफलतापूर्वक किया है। अब तक जनसंचार माध्यमों को हम दृश्य, श्रव्य और दृश्य-श्रव्य इन प्रमुख तीन

वर्गों में रखकर देख रहे थे। अब दृश्य-श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत नए जनसंचार माध्यमों का विकास हो रहा है। ''दृश्य या लिखित जनसंचार माध्यम जिसमें समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पोस्टर, पैम्फलेट, होर्डिंग आदि की गणना की जाती है। श्रव्य जनसंचार माध्यम जिसमें रेडियो, ट्रांजिस्टर, ऑडियो कैसेट, टेलीफोन, मोबाइल फोन आदि। दृश्य-श्रव्य जनसंचार माध्यम जिसमें सिनेमा, टेलीविजन, वीडियो कैसेट आदि।''[7] उपर्युक्त आधुनिक जनसंचार माध्यमों के अतिरिक्त वर्तमान में हिंदी भाषा के विकास में नए जनसंचार माध्यम अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते नजर आते हैं।

कंप्यूटर, इंटरनेट, उपग्रह संचार प्रणाली, केबल, मल्टी-मीडिया, क्षेत्रीय चैनल, डीटीएच सेवा, विदेशी सेवा प्रभाग (ईएसडी), ब्लॉग, हिंदी वेब मीडिया, ई-मेल, पॉड कास्ट, वेबकास्ट, सोशल नेटवर्किंग साइट्स-फेसबुक, आरकुट, गुगल प्लस आदि नए जनसंचार माध्यमों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक संक्रमण को बढ़ाने के साथ-साथ हिंदी भाषा के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसे नकारा नहीं जा सकता। जागरण डॉट काम, अमर उजाला डॉट कॉम, भास्कर डॉट कॉम, वेबदुनिया डॉट कॉम, प्रभात खबर डॉट कॉम, तहलका डॉट कॉम का विचार करेंगे तो सन् 1997 से आज तक ऐसे अनेक वेब पेज मिलते हैं जिनके कारण हिंदी दैनिकों का स्तर ऊंचा होता गया। हिंदी वेब मीडिया नए जनसंचार माध्यमों में अपना अलग स्थान बना चुकी है। आज विश्व मीडिया की नजर हिंदी वेब मीडिया पर है, इसमें संदेह नहीं। ''वेब पत्रकारिता को हम इंटरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता आदि नाम से जानते हैं। जैसा कि वेब पत्रकारिता नाम से स्पष्ट है कि यह कंप्यूटर और इंटरनेट के सहारे संचालित ऐसी पत्रकारिता हैं जिसकी पहुंच किसी एक पाठक, एक गांव, एक प्रखंड, एक प्रदेश, एक देश तक नहीं, बल्कि समूचे विश्व तक है और जो डिजिटल तरंगों के माध्यम से प्रदर्शित होती है।... वेब मीडिया सर्वव्यापकता को भी चरितार्थ करती है, जिसमें खबरें दिन के चौबीस घंटे और हफ्ते के सातों दिन उपलब्ध रहती हैं।''[8] हिंदी भाषा विकास में नए जनसंचार माध्यमों में वेब मीडिया का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। हिंदी भाषा शिक्षण का प्रचार-प्रसार वर्तमान काल में नए जनसंचार माध्यमों के कारण गतिमान बन रहा है। आकाशवाणी से लेकर स्थानीय रेडियो स्टेशन (एलआरएस), सामुदायिक रेडियो स्टेशन (सीआरएस), एफएम गोल्ड, डीटीएच सेवा, विदेशी सेवा प्रभात (ईएसडी), डीडी के सभी चैनल्स हिंदी भाषा के विविध आयाम जनता के सामने रख रहे हैं। बीबीसी हिंदी (ऑनलाइन) की संपादिका सलमा जैदी कहती हैं, ''वेब जर्नलिज्म प्रिंट का ही विकसित रूप माना जाता है। यहां लिखने और छपने के स्टाइल में फर्क जरूर होता है। यहां वाक्य छोटे, सरल और आसानी से पढ़े जा सकने वाले शब्दों के इस्तेमाल के साथ लिखे जाते हैं। यहां पैराग्राफ छोटे होते हैं और खबर की भाषा ऐसी होती है जिसे लोग सहजता से समझ सकें।''[9] कहना सही होगा कि नए जनसंचार माध्यमों में वेब का करिश्मा सरल भाषा के लिए अपना प्रभाव बना रहा है। अक्षर साफ्टवेयर से हिंदी में शब्द संसाधन की शुरूआत मानी जाती है जो दिन-ब-दिन विकसित होती गई। अब हिंदी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर का प्रयोग आसान बन गया है।

यूनीकोड के कारण अब हिंदी भाषा का इंटरनेटीय रूप ज्ञानवर्धक दृष्टिगोचर होता है। ''कंप्यूटर पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों में काम करने के लिए तीन विकल्प उपलब्ध हैं—इनमें पहला है सामान्य कामों वाले सॉफ्टवेअर। आईबीएम पीसी कंप्यूटर पर द्विभाषी शब्द संसाधन के कई पैकेज बाजार में मिलते हैं। दूसरा विकल्प बहु-उपयोगी सॉफ्टवेअर का है। एमएम डॉस आधारित सॉफ्टवेअर का इस्तेमाल हो सकता है। तीसरा विकल्प 'भाषा' नामक एक बहुभाषी शब्द संसाधक है जिसका आईबीएम और समकक्ष कंप्यूटरों पर उपयोग हो सकता है।''[10] हिंदी भाषा विकास के कंप्यूटर प्रयोग में नए जनसंचार माध्यम अग्रणी हैं। इसे नकारा नहीं जा सकता। इन दिनों नए जनसंचार माध्यमों में ब्लॉग अपनी अलग भूमिका निभा रहे हैं। ''वर्ष 2003 में ब्लॉग की दुनिया में हिंदी का प्रवेश हुआ और आज बड़ी संख्या में हिंदी ब्लॉग भी पढ़े और पढ़ाए जा रहे हैं।''[11] चिट्ठा जगत हिंदी को लेकर अब अपनी विशालता की ओर बढ़ रहा है। यह बात सराहनीय है। राजनीति, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, वाणिज्य, अनुसंधान और शिक्षा आदि क्षेत्रों की जानकारी ब्लॉग पर हिंदी भाषा में उपलब्ध हो रही है। सन् 1997 से लेकर सन् 2013 तक के ब्लॉगिंग इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि दुनिया भर के अनेक साहित्यकार अब हिंदी भाषा में ब्लॉग लिख रहे हैं। अपनी बात को इस नए जनसंचार माध्यम के जरिए लोगों तक पहुंचा रहे हैं। इंटरनेट के कारण नए जनसंचार माध्यम हिंदी भाषा विकास के लिए सही दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं। साहित्य क्षेत्र में तो 'वेब मीडिया' के कारण नया आयाम प्रस्तुत हुआ है। अनामी शरण बाबल कहते हैं, ''जहां तक भारत में वेब पत्रकारिता का सवाल है, उसे मात्र 10 वर्ष हुए हैं। ये 10 वर्ष कहने भर को हैं। दरअसल भारत की वेब पत्रकारिता अभी शिशु अवस्था में है और इसके पीछे दरअसल

भारत में इंटरनेट की उपलब्धता, तकनीकी ज्ञान और रुझान का अभाव, अंग्रेजी की अनिवार्यता, नेट संस्करणों के प्रति पाठकों में संस्कार और रुचि का विकसित न होना तथा आम पाठकों की क्रय शक्ति भी है। भारत में इंटरनेट की सुविधा सन् 1990 के मध्य में मिलने लगी। भारत में वेब पत्रकारिता के चेन्नई का 'द हिंदु' पहला भारतीय अखबार है जिसका इंटरनेट संस्करण सन् 1995 में जारी हुआ।''[12] कहना आवश्यक नहीं कि इक्कीसवीं सदी में वेब मीडिया जनमानस पर छा रहा है। नए लेखकों को साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन करने हेतु आवाहन कर रही है। अतः वेब मीडिया एक स्वतंत्र विधा के रूप में सामने आ रहा है। इसे नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान में वेब मीडिया के विविध आयामों पर स्वतंत्र रूप से अनुसंधान करने की आवश्यकता है। ''भारत में मोबाइल तकनीकी और फोन सेवा की संभावनाओं का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि देश के बड़े टेलीकॉम ऑपरेटरों ने थ्रीजी सेवाओं के लाइसेंस के लिए हाल ही में करीब 16 अरब डॉलर यानी 75,600 करोड़ रुपए की बोली लगाई। संचार मंत्रालय के एक आंकड़े के मुताबिक देश में जून 2010 तक मोबाइल फोन उपभोक्ताओं की संख्या 67 करोड़ तक पहुंच गई थीं। यहां इस तथ्य पर गौर करने की जरूरत है कि इनमें से ज्यादातर फोन पर इंटरनेट सर्विस भी मौजूद है।''[13] अतः कहा जा सकता है कि वेब मीडिया दिन-ब-दिन विकसित हो रहा है। वेब मीडिया में हर व्यक्ति एक संवाददाता है।

व्यावसायिक-अव्यावसायिक रूप में कार्य करने वाले अनेक साहित्यकार अपनी-अपनी भाषा में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः साहित्य के क्षेत्र में वेब मीडिया के कारण नया बदलाव परिलक्षित होता है, इसे नकारा नहीं जा सकता। ''वेब पत्रकारिता, हाशिये के लोगों की आवाज के लिए एक वैकल्पिक मंच है। वेब पत्रकारिता में ब्लॉग के माध्यम से तमाम लोगों को मंच मिल सकता है। जहां से ये अपनी बात आसानी से कह सकते हैं। अपनी पीड़ा को व्यक्त कर सकते हैं।''[14] कहना आवश्यक नहीं कि वेब मीडिया प्रत्येक नागरिक की आवाज लोगों तक पहुंचाने में सहायक सिद्ध हो रहा है। अब ब्लॉग के माध्यम से अनेक लेखक अपनी बात लोगों के सामने रख रहे हैं। साहित्य की हर विधा का अध्ययन वेब पत्रिकारिता के माध्यम से किया जा सकता है। जयप्रकाश मानस कहते हैं, ''अब ब्लॉग इंटरनेट पर केवल निजी अभिव्यक्ति या स्वयं को अभिव्यक्त करने या भड़ास उतारने मात्र का स्वतंत्र साधन नहीं रहा। वह धीरे-धीरे साइबर जर्नलिज्म या ऑनलाइन जर्नलिज्म या इंटरनेट जर्नलिज्म की शक्ल भी धारण करने लगा है जिसे 'सिटीजन जर्नलिज्म कहा जाने लगा है, चाहे इसे एक ही व्यक्ति या पत्रकार द्वारा संचालित किया जाए या फिर समूह में।... ब्लॉगिंग पत्रकारिता जैसे सामूहिक बोध का जरिया भी बन सकता है।''[15] कहना आवश्यक नहीं कि ऑनलाइन पत्रकारिता के माध्यम से आम जनता के प्रश्नों को अभिव्यक्ति मिल रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं का प्रचार-प्रसार हो रहा है, इसे नकारा नहीं जा सकता। हिंदी नेस्ट, सृजनगाथा, अभिव्यक्ति, शब्दांजलि, साहित्य कुंज, छाया, गर्भनाल, भारत दर्शन, वेब दुनिया , ताप्तीलोक, कृत्या, रचनाकार, कलायन आदि वेब साहित्यिक पत्रिकाओं के साथ हंस, वागर्थ, तद्भव, नया ज्ञानोदय, मधुमती के साथ-साथ अनेक अखबार वेब मीडिया के अविभाज्य अंग बन चुके हैं। इसमें दो राय नहीं। ''हमारा अपना भारतीय प्रौद्योगिकी विकास आज अपने शीर्ष पर है। हमारी जनसंचार प्रणाली पहले से लगातार बेहतर होती जा रही है। इस विकास की कड़ी को जुड़ने में एक लंबा वक्त लगा है। सरकारें आती रही और जाती रही लेकिन भारतीय जनसंचार और प्रौद्योगिकी अपने विकास के पहिए को घुमाती रही।''[16] हिंदी भाषा के विकास में नए जनसंचार माध्यमों की उपादेयता का विचार किया जाए तो केबल, मल्टीमीडिया, इंटरनेट आदि अंतरिक्ष नए जनसंचार माध्यम समकालीन समाज में हिंदी भाषा के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को बढ़ावा देने में सफल हुए दृष्टिगोचर होते हैं। ऑडियो, डिजिटल आडियो, विविध कोडेक्स, डिवाइसेस, विभिन्न सॉफ्टवेअर्स और इलेक्ट्रॉनिक्स मेल मोबाइल, विडियो, ई-मेल, विजुअल डिस्प्ले टर्मिनल के माध्यम से हिंदी भाषा का नया रूप सामने ला रहे हैं।

नए जनसंचार माध्यमों में सर्वाधिक शक्तिशाली सूचना माध्यम के रूप में इंटरनेट का उल्लेख करना होगा। इंटरनेट के माध्यम से जो हिंदी का विकास हो रहा है वह सराहनीय है। वेब मीडिया इंटरनेट के कारण ही आज लोकप्रिय बन रहा है। स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एंड न्यू मीडिया स्टडीज, नई दिल्ली के प्रोफेसर सुभाष धुलिया का मत दृष्टव्य है, ''प्रौद्योगिकीय युग में आज लगभग सभी समाचार पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो और टेलीविजन चैनल्स ऑनलाइन हो रहे हैं। आज समाचार चैनलों पर दिखाए जाने वाली खबरों और प्रोग्रामों का इंटरनेट वर्जन मौजूद है और इसी तरह सभी समाचार पत्र-पत्रिकाएं भी वेब पत्रकारिता की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। इंटरनेट उपभोक्ताओं की तेजी से बढ़ रही संख्या इसी ओर इशारा कर रही है कि अगले कुछ वर्षों में वेब मीडिया कहीं अधिक प्रभावशाली मंच बनने की ओर उन्मुख है। हालांकि पश्चिमी

देशों में काफी हद तक यह पहले ही हो चुका है... नई प्रौद्योगिकी से समाचार मीडिया में भी आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं, साथ ही इसके विस्तार की गहराई और व्यापकता भी बेमिसाल है।''[17] अतः नए जनसंचार माध्यम भले ही व्यवसायवृत्ति के अनुसार विकास की ओर चल रहे हैं, उनका उद्देश्य जनहित का ही रहा है। अनेक चुनौतियों का सामना नए जनसंचार माध्यमों को करना पड़ रहा है। उसमें प्रमुख हैं भाषायी चुनौती। भाषायी चुनौती का सामना करने के लिए नए जनसंचार माध्यम अब विभिन्न सॉफ्टवेअर्स टूल्स का निर्माण कर भाषा विकास खासकर हिंदी भाषा की ओर ध्यान दे रहे हैं। केवल देवनागरी लिपि का कंप्यूटरी विकास ही हिंदी का विकास नहीं है बल्कि हिंदी का संपूर्ण कंप्यूटरी विकास होना जरूरी बन गया है, जो नए जनसंचार माध्यम इस संपूर्ण कंप्यूटरी विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ''हिंदी कंप्यूटरी का विकास हिंदी के विकास की गति और दिशा निश्चित करेगा। इस समय हिंदी के सम्मुख वैसा ही अवसर उपस्थित है जैसा बीसवीं शती के आरंभ में था। यदि हम सब हिंदी कंप्यूटरी का समुचित प्रबंधन कर सके तो यह हिंदी के तीव्रतम विकास का एक नया काल सिद्ध हो सकता है।''[18] कहना उचित होगा कि नए जनसंचार माध्यमों की इस भूमिका का हमें स्वागत करना होगा। अनेक चुनौतियों के कारण भले ही कंप्यूटरी हिंदी का संपूर्ण विकास नहीं हुआ हो पर इंटरनेट पर अब हिंदी का प्रयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। इस बात को हम नकार नहीं सकते।

विशेष कर वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यम आम जनता में बोली जाने वाली हिंदी भाषा में व्यवहार कर रहे हैं। अतः सामान्यजनों का रुझान हिंदी भाषा के प्रयोग के प्रति बढ़ रहा है। हम जानते हैं कि इंटरनेट पर सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाली पहली दस भाषाओं में हिंदी को स्थान नहीं मिला है लेकिन नए जनसंचार माध्यमों के प्रयासों से भविष्य में हिंदी का स्थान निश्चित होगा। इसमें दो राय नहीं। हिंदी-अंग्रेजी भाषा के सम्मिश्रण से हिंदी भाषा का हिंग्लिशीकरण जनसंचार माध्यमों द्वारा हो रहा है, इस आरोप का खंडन होना अनिवार्य है क्योंकि मानक हिंदी का प्रयोग वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यम अपनी तरफ से करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वेब मीडिया हिंदी के विकास में वर्तमान में अधिक प्रयासरत है और भविष्य में रहेगा, इस बात पर हमें दृढ़ रहना होगा।

हिंदी के विकास में वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों के योगदान के संदर्भ में अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपने उद्भवकाल से ही जनसंचार माध्यमों ने लोकशिक्षक की भूमिका में ही अपना कार्य जारी रखा है। वैसे देखा जाए तो हिंदी भाषा विकास को केंद्र में रखकर भारत सरकार की ओर से अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। भारत सरकार की ओर से आयोजित कार्यक्रमों को आम जनता तक पहुंचाने में वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्तमान में हिंदी भाषा विकास में वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यम अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते नजर आते हैं। नए जनसंचार माध्यमों ने विविध प्रकार के भावों, विचारों और जानकारियों का आदान-प्रदान सफलतापूर्वक किया है। अब तक जनसंचार माध्यमों को हम दृश्य, श्रव्य और दृश्य-श्रव्य इन प्रमुख तीन वर्गों में रखकर देख रहे थे। अब दृश्य-श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत नए जनसंचार माध्यमों का विकास हो रहा है। कंप्यूटर, इंटरनेट, उपग्रह संचार प्रणाली, केबल, मल्टी-मीडिया, क्षेत्रीय चैनल, डीटीएच सेवा, विदेशी सेवा प्रभाग (ईएसडी), ब्लॉग, हिंदी वेबसाइट्स, ई-मेल, पॉड कास्ट, वेबकास्ट, सोशल नेटवर्किंग साइट्स—फेसबुक, आरकुट, गुगल प्लस आदि नए जनसंचार माध्यमों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक संक्रमण को बढ़ाने के साथ-साथ हिंदी भाषा विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसे नकारा नहीं जा सकता। जागरण डॉट कॉम, अमर उजाला डॉट कॉम, भास्कर डॉट कॉम, वेबदुनिया डॉट कॉम, प्रभात खबर डॉट कॉम, तहलका डॉट कॉम का विचार करेंगे तो सन् 1997 से आज तक ऐसे अनेक वेब पेज मिलते हैं जिनके कारण हिंदी दैनिकों का स्तर ऊंचा होता गया। हिंदी वेब पत्रकारिता नए जनसंचार माध्यमों में अपना अलग स्थान बना चुकी हैं। आज विश्व मीडिया की नजर हिंदी वेब पत्रकारिता पर है। हिंदी भाषा शिक्षण का प्रचार-प्रसार वर्तमान काल में नए जनसंचार माध्यमों के कारण गतिमान बन रहा है।

अब हिंदी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर का प्रयोग आसान बन गया है। यूनीकोड के कारण अब हिंदी भाषा का इंटरनेटीय रूप ज्ञानवर्धक दृष्टिगोचर होता है। राजनीति, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, वाणिज्य, अनुसंधान और शिक्षा आदि क्षेत्रों की जानकारी ब्लॉग पर हिंदी भाषा में उपलब्ध हो रही है। सन् 1997 से लेकर सन् 2010 तक के ब्लॉगिंग इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि दुनियाभर के अनेक साहित्यकार अब हिंदी में ब्लॉग लिख रहे हैं। अपनी बात को इस नए जनसंचार माध्यम के जरिए लोगों तक पहुंचा रहे हैं। इंटरनेट के कारण नए जनसंचार माध्यम हिंदी भाषा विकास के लिए सही दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं। हिंदी भाषा के विकास में नए जनसंचार

माध्यमों की उपादेयता का विचार किया जाए तो केबल, मल्टीमीडिया, इंटरनेट आदि नए जनसंचार माध्यम समकालीन समाज में हिंदी भाषा के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को बढ़ावा देने में सफल दृष्टिगोचर होते हैं। आडियो, डिजिटल ऑडियो, विविध कोडेक्स, डिवाइसेस, विभिन्न सॉफ्टवेअर्स और इलेक्ट्रॉनिक्स मेल मोबाइल, विडियो ई-मेल, विजुअल डिस्प्ले टर्मिनल के माध्यम से हिंदी भाषा का नया रूप सामने ला रहे हैं। जिस तरह बीसवीं सदी में मुद्रित और विद्युत्यिकी मीडिया का स्वतंत्र विधा के रूप में अनुसंधान हुआ, ठीक उसी प्रकार इक्कीसवीं सदी में वेब मीडिया का स्वतंत्र विधा के रूप में अनुसंधान होना आवश्यक है। वेब मीडिया को एक वैकल्पिक मंच न मानकर इक्कीसवीं सदी की नई विधा के रूप में मान्यता देना उचित होगा। साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रतिभासंपन्न साहित्यकारों के विचारों को प्रस्तुति मिली है लेकिन वेब मीडिया में प्रतिभासंपन्न साहित्यकारों के साथ-साथ आम आदमी भी अपने विचार निडरता से विभिन्न ब्लॉग के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है। आम आदमी वेब मीडिया के माध्यम से सुदूर पहुंच रहा है। कम-अधिक मात्रा में वैश्वीकरण की प्रक्रिया गतिमान हो रही है। अतः वेब मीडिया की स्थिति दिन-ब-दिन मजबूत होती नजर आती है। वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यम आम जनता में बोली जाने वाली हिंदी भाषा में व्यवहार कर रहे हैं। अतः सामान्यजनों का रुझान हिंदी भाषा के प्रयोग के प्रति बढ़ रहा है। हम जानते हैं कि इंटरनेट पर सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाली पहली दस भाषाओं में हिंदी को स्थान नहीं मिला है लेकिन वेब मीडिया एवं नए जनसंचार माध्यमों के प्रयासों से भविष्य में हिंदी का स्थान निश्चित होगा। इसमें दो राय नहीं।

संदर्भ–

1. महेंद्रसिंह राणा–प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम, पृ. 391
2. वही, पृ. 402
3. वही, पृ. 402
4. वही, पृ. 402
5. सं. ज्योति व्यास–हिंदी भाषा विकास में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की भूमिका, पृ. 136
6. डॉ. महेंद्र सिंह राणा–प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम, पृ. 390
7. वही, पृ. 237
8. संपादक, हंसराज 'सुमन', एस. विक्रम, वेब पत्रकारिता, पृ. 15
9. सौरभ शुक्ल–नए जमाने की पत्रकारिता, पृ. 114
10. संपा. डॉ. शशि भारद्वाज–भाषा (द्वैमासिक), मई-जून, 2002, पृ. 258, 259
11. श्याम माथुर–वेब पत्रकारिता, पृ. 63
12. www.asbamassindia.blogspot.in तिथि 18/2/12
13. वही, तिथि 17/2/12
14. सं. हंसराज, एस. विक्रम–वेब पत्रकारिता, पृ. 8
15. वही, पृ. 125
16. संपादक, इरशाद अली–कंप्यूटर मंत्रा (मासिक), जनवरी 2013, पृ. 44
17. संपादक, शालिनी जोशी–वेब पत्रकारिता नया मीडिया नए रुझान, पृ. 08
18. संपादक, आर. अनुराधा–न्यू मीडिया इंटरनेट की भाषायी चुनौतियां और संभावनाएं, पृ. 70

सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
अहमदनगर महाविद्यालय,
अहमदनगर-414001 (महाराष्ट्र)

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं विश्वबंधुत्व के प्रतीक अगस्त्य

डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु'

डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु' के एक खंडकाव्य 'प्रतीक्षा'; दो महाकाव्य–'कौंडिन्य', 'अगस्त्य'; एक दोहा-संग्रह 'शब्द कहे आकाश' प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में संत तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कादीपुर, सुल्तानपुर, उ.प्र. में प्रोफेसर/अध्यक्ष पद पर कार्यरत।

''अयं निजः परोवेति
इति गणना लघुचतेसाम्।
उदारचरितानां तु
वसुधैव कुटुंबकम्।।''[1]

भारतीय संस्कृति का उक्त प्राचीन उद्घोष इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भारत ने विश्वबंधुत्व की परिकल्पना मानवता के ज्ञात इतिहास में सर्वप्रथम की थी। भारतीय चिंतन की वैश्विक पृष्ठभूमि के इतिहास के इतिवृत्त का शंखनाद उक्त श्लोक में है। यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसी सोच मंद बुद्धि वाले लोग रखते हैं, परंतु परिष्कृत बुद्धि तथा उदार चरित्र वाले लोगों के लिए संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार के समान है। अर्थात् मानवता एक है। यही कारण है कि भारतीय संसद के एक प्रस्तर पट्ट पर उक्त श्लोक उत्कीर्ण है।

भारतीय ऋषि अति प्राचीन काल से ही विश्व के अनेक दुर्गम क्षेत्रों की अकथनीय कष्टसाध्य यात्रा कर ज्ञान-विज्ञान का आलोक फैलाते थे। संबंधित जनता के भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति में अपना हाथ बटाते थे। वे 'कृण्वंतो विश्वमार्यम्'–संपूर्ण विश्व को आर्य बनाएं–के संकल्प के साथ कालजयी जनसेवा करते थे।

प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. आर.सी. मजूमदार का कथन है कि भारतीय मिशनरी साहस के कारण ही एशिया के उत्तर, दक्षिण, पूरब तथा पश्चिम दिशाओं के भूभाग, सभ्यता की दृष्टि से एक संपन्न और सफल क्षेत्र बने। एशिया के विस्तृत क्षेत्रों और विभिन्न जातियों पर भारतीय संस्कृति ने अपने प्रभाव की गहन नींव जमाई थी और बहुतों को तो उनकी आदि बर्बर अवस्था से निकाल कर सभ्यता के विकास की ओर उन्मुख किया था। अतएव पर्वतों और समुद्रों के पार प्रकृति निर्मित अपनी सीमाओं से अत्यंत परे भारत ने अपने सांस्कृतिक प्रभाव का जो प्रसार किया और एशिया को सभ्य बनाने में जो उसने योगदान दिया वह यूरोप के प्रति यूनान के योगदान की अपेक्षा कहीं अधिक था।[2]

प्राचीनकाल में भारत के अनेक ऋषियों ने विदेशों में जाकर जनसेवा के माध्यम से मानवता की अमूल्य सेवा की थी। महर्षि अगस्त्य ने दक्षिण पूर्व एशिया में अति प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार की पृष्ठभूमि में संबंधित क्षेत्रों में व्याप्त अज्ञानता तथा अशिक्षा को दूर कर मानव सेवा का प्रदीप आलोकित किया था। महर्षि अगस्त्य अत्यंत प्राचीन हैं अतएव उनकी दक्षिण-पूरब एशिया विषयक यात्रा का कोई पुस्तकीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होता परंतु दक्षिण-पूरब एशिया की जनगाथाएं तथा भारतीय पुराण महर्षि अगस्त्य की उक्त यात्रा की प्रत्यक्ष-परोक्ष पुष्टि अवश्य करते हैं। अगस्त्य की प्रस्तर प्रतिमाएं दक्षिण-पूर्व एशिया में मिलती हैं।[3] प्रसिद्ध इतिहासविद् सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है कि ''पूर्वी एशिया में भारत के सांस्कृतिक विस्तार के संबंध में जो जानकारी अभी तक प्राप्त है, उसके अनुसार यह असंदिग्ध है कि इस क्षेत्र में भारतीय उपनिवेशों का श्रीगणेश कौंडिन्य द्वारा किया गया था और भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रसार में महर्षि अगस्त्य का योगदान बहुत महत्त्व का था। यही कारण है कि जावा और बाली के हिंदू, अगस्त्य को अपना आदि गुरु मानते हैं और उनके अनेक स्मारक भी वहां विद्यमान हैं।''[4] प्रसिद्ध ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय का कथन है कि ''समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया में अगस्त्य का नाम 'भारत-गुरु' है। इसी संज्ञा से वे मलय, जावा, सुमात्रा आदि में पुकारे जाते हैं।''[5] ऐतिहासिक, पौराणिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों की सूक्ष्म विवेचना तलस्पर्शिनी दृष्टि से देखने पर अगस्त्य की दक्षिण-पूर्व एशिया विषयक सांस्कृतिक यात्रा ऐतिहासिक सिद्ध होती है। अगस्त्य विषयक सामग्री अनेक स्रोतों से मिलती है यथा वैदिक वाङ्मय, पौराणिक साहित्य, आर्ष महाकाव्य (रामायण तथा महाभारत) तथा अन्य अनेक संस्कृत ग्रंथ। दक्षिण में तमिल साहित्य में अगस्त्य पर प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। उनके संबद्ध स्थलों में पंजाब (वैदिक पंचनद) से लेकर तमिलनाडु फिर आगे समुद्र पार दक्षिण-पूर्व एशिया के

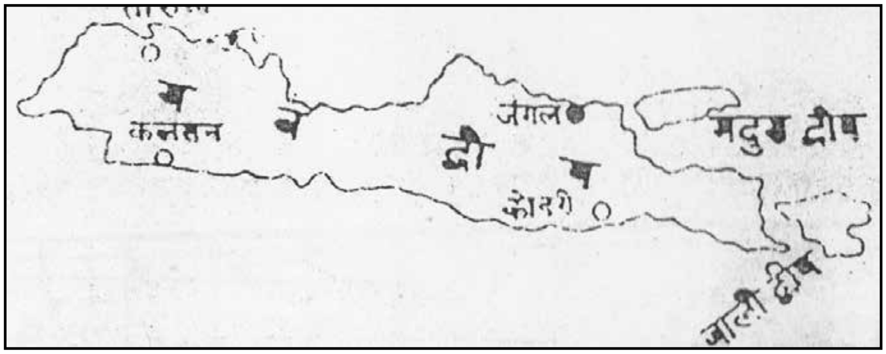

दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति – डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार से साभार

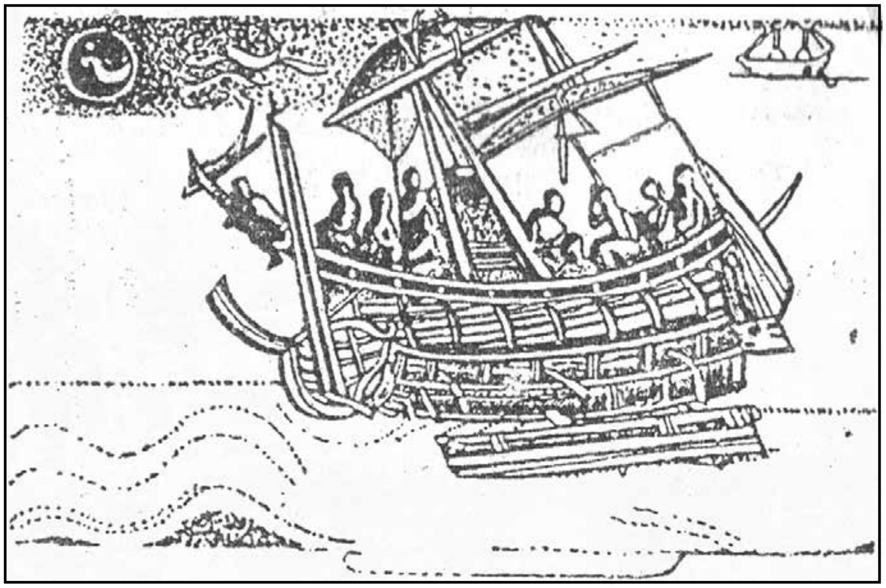

बोरोबुदुर की भित्ति पर अंकित एक प्रस्तर चित्र (भारतीय आवासकों का जावा की ओर प्रस्थान)
(श्री राधाकुमुद मुखर्जी के सौजन्य से प्राप्त – भाग-2, पृष्ठ 193)
वृहत्तर भारत (1969 संस्करण, चंद्रगुप्त वेदालंकार से साभार)

अगस्त्य (बोरोबुदूर), सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास – डॉ. बैजनाथ पुरी से साभार

अनेक द्वीप हैं। शायद ही किसी महापुरुष की सांस्कृतिक यात्रा इतनी लंबी रही हो।

अगस्त्य का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में ससम्मान मिलता है। ऋग्वेद (7-33-10, 13) में उन्हें 'मान' कहा गया है। वे मित्रावरुण के पुत्र हैं, ऐसा ऋग्वेद (7-33-13) में कहा गया है। अगस्त्य तथा लोपामुद्रा के मध्य के मधुर वार्तालाप का उल्लेख ऋग्वेद (1-179) करता है। ऋग्वेद (7-33-10, 13) के अनुसार अगस्त्य वशिष्ठ के भ्राता हैं, क्योंकि ये दोनों मित्रावरुण से उत्पन्न हुए हैं। ऋग्वेद के अन्यत्र भी अगस्त्य विषयक अनेक प्रकरण मिलते हैं। गोपथ ब्राह्मण (2-8) में अगस्त्य तीर्थ का नाम आया है। संभवतः यह अगस्त्य ऋषि के नाम पर बसाया गया कोई स्थान है परंतु यह स्थान कहां था अब कह पाना कठिन है। अगस्त्य के जन्म की कथा बृहद्देवता (5, 149-154) तथा ऋक्सर्वानुक्रमणी (अ.-12) में उपलब्ध होती है। पद्मपुराण सृष्टिखंड (अ. 22), विष्णुपुराण (4-5), मत्स्यपुराण (अ. 61), भविष्यपुराण (उत्तरार्द्ध, अ. 106) तथा वाल्मीकि रामायण (उत्तरकांड, सर्ग 55-57) में अगस्त्य के जन्म तथा उनकी कथाओं का वर्णन मिलता है। अगस्त्य द्वारा विंध्याचल को रोकने की कथा महाभारत (वनपर्व, अ. 104), ब्रह्मपुराण (अ. 118), स्कंदपुराण (काशीखंड, अ. 105, नागर खंड, 30-35), देवी भागवत (10/2-7), पद्मपुराण (सृष्टिखंड, अ. 19), भविष्यपुराण (उत्तरार्द्ध, अ. 106), वामनपुराण (अ. 18), आनंद रामायण (सारकांड, 10/79-119) आदि स्थानों पर मिलती है। अगस्त्य द्वारा समुद्र-शोषण की कथा महाभारत (वनपर्व, अ. 101-105), पद्मपुराण (सृष्टिखंड, अ. 19, 22), भविष्यपुराण (उत्तरार्द्ध, अ. 107), स्कंदपुराण (नागरखंड, अ. 33-35) तथा मत्स्यपुराण (अ. 61) में मिलती है। महाभारत के वनपर्व (अ. 96-97) में अगस्त्य तथा लोपामुद्रा के विवाह की कथा मिलती है। अगस्त्य द्वारा ताड़का को शाप देने का प्रकरण वाल्मीकि रामायण (बालकांड, सर्ग-25) में आया है।

दक्षिण भारत में अगस्त्य का सम्मान विज्ञान तथा साहित्य के सर्वप्रथम उपदेशक के रूप में होता है। वे अनेक प्रसिद्ध तमिल ग्रंथों के प्रणेता कहे जाते हैं। प्रथम तमिल व्याकरण की रचना अगस्त्य ने ही की थी। वहां उन्हें अब भी जीवित माना जाता है जो साधारण आंखों से नहीं दीखते तथा त्रावनकोर की सुंदर अगस्त्य

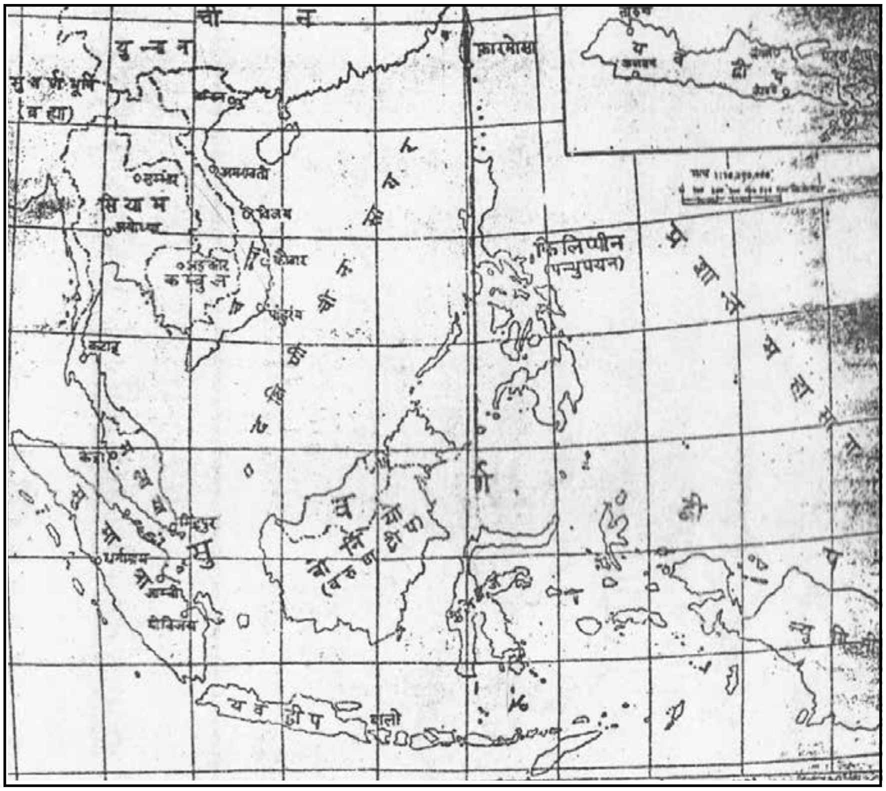

दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति – डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार से साभार

पहाड़ी पर वास करते माने गए हैं, जहां से पवित्र तिन्नेवेली की पवित्र पोरुनेई अथवा ताम्रमर्णी नदी का उद्‌भव होता है। शरीर त्याग के बाद अगस्त्य को आकाश के दक्षिणी भाग में एक अत्यंत प्रकाशमान तारे के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इस नक्षत्र का उदय सूर्य के हस्त नक्षत्र में आने पर होता है जव वर्षा ऋतु समाप्ति पर होती है। इस प्रकार अगस्त्य प्रकृति के उस रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मानसून का अंत करता है एवं विश्वास की भाषा में महासागर का जल पीता है (जो फिर चमकीले सूर्य को लाता है, जो वर्षाकाल में बादलों में छिप जाता है और पौराणिक भाषा में विंध्य की असामान्य वृद्धि को रोककर सूर्य को मार्ग प्रदान करता है।6)

अगस्त्य तथा विंध्याचल के मिथक में विंध्याचल के झुकने के प्रकरण का अर्थ स्थापित किया गया है कि अगस्त्य प्रथम आर्य थे, जिन्होंने विंध्याचल जैसे दुर्गम पर्वत

को पार कर दक्षिण भारत की यात्रा की थी। उल्लेखनीय है कि मनुस्मृति में आर्यावर्त की सीमा हिमालय तथा विंध्याचल के मध्य मानी गई है। अगस्त्य द्वारा समुद्रपान किया जाना यह प्रमाणित करता है कि उन्होंने समुद्र की दुस्तर यात्रा में अनेक कठिनाइयां सही होगी। दक्षिण-पूरब में तारे का नाम अगस्त्य रखा जाना अगस्त्य की दक्षिण-पूरब एशिया की सांस्कृतिक यात्रा का संसूचक है। इसी पृष्ठभूमि में संस्कृत के महान पंडित पद्‌मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय का यह कथन उल्लेखनीय है कि ''वैदिक संस्कृति के महनीय प्रचारक ऋषि अगस्त्य थे। ये दक्षिण भारत से वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के अग्रदूत के रूप में आज भी स्मरण किए जाते हैं। जावा (यवद्वीप) सुमात्रा (सुवर्णद्वीप) आदि पूर्वी देशों को भारतीय संस्कृति से अलंकृत करने का श्रेय महर्षि अगस्त्य को ही है, इसमें

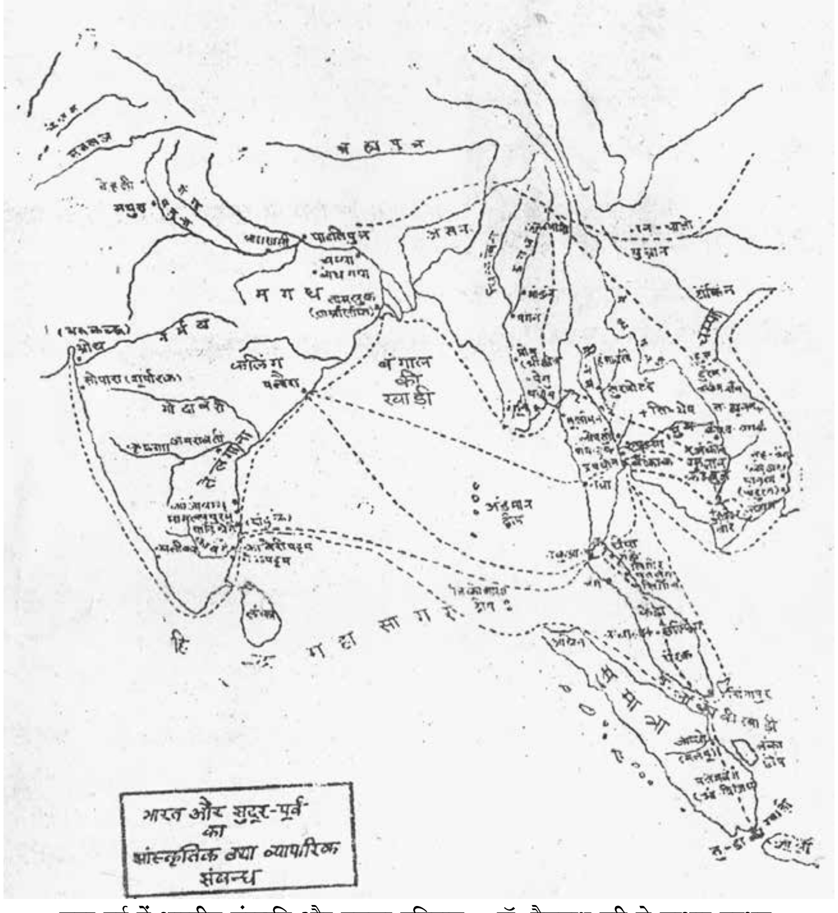

सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास – डॉ. बैजनाथ पुरी से साभार उद्‌धृत

भी तनिक संदेह नहीं। कृतज्ञता की रचना में इन देशवासियों ने समुद्र के तट पर ही नहीं, प्रत्युत् प्रत्येक नगर के मुख्य द्वार पर अगस्त्य की मूर्ति की स्थापना की है, जो आज भी विद्यमान है। दक्षिण भारत तथा वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसारक अगस्त्य मुनि थे—यह तो निर्विवाद है।''

दक्षिण भारत की एक अनुश्रुति के अनुसार अगस्त्य तथा कावेरी सहपाठी थे तथा दोनों में अनुराग था। कालान्तर में कावेरी की देह कावेरी नदी की जलधारा के रूप में परिणत हो गई।[8] डॉ. के.एम. मुंशी ने 'लोपामुद्रा' उपन्यास में अगस्त्य तथा शंबर के युद्ध का उल्लेख किया है।[9] अगस्त्य द्वारा नहुष से इंद्राणी की शील रक्षा भारतीय संस्कृति का आलोकपूर्ण अध्याय है।

एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि आज वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारोन्मुख समाज के दौर में अगस्त्य जैसे मिथकीय पात्र की प्रासंगिकता क्या है? उत्तर में कहा जा सकता है कि आज हम स्वसुख की अवधारण के समक्ष जनसुख को गौण ही नहीं, उपेक्षित करते जा रहे हैं। परिणाम सबके सामने है, हम शांत नहीं, अशांत हैं, हम स्थिर नहीं, उद्भ्रांत हैं। यदि आत्मिक शांति तथा विश्व प्रगति की रंचमात्र प्रेरणा 'अगस्त्य' की जनसेवाओं से हमें मिल सकी तो अगस्त्य की कथा सर्वथा प्रासंगिक और सामयिक है। महर्षि अगस्त्य की मानवता-सेवा कालजयी है। उन्होंने अति विषम परिस्थितियों में समुद्र की दुर्धर्ष यात्रा कर सुदूरवर्ती और अज्ञान से आवृत लोगों में ज्ञान का आलोक फैलाकर अविस्मरणीय कार्य किया है। अगस्त्य हमारे पथ-प्रदर्शक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं विश्वबंधुत्व के प्रतीक हैं।

संदर्भ–

1. पंचतंत्र–विष्णु शर्मा,
2. वृहत्तर भारत–राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर, पृ.सं.–15,
3. बृहत्तर भारत–डॉ. चंद्रगुप्त वेदालंकार पृ.–183 तथा 278, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डॉ. बी.एन. पुरी पृ.–13
4. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार का निबंध–लेखक के नाम पत्र।
5. मनपवन की नौका–कुबेरनाथ राय पृ. –43,
6. हिंदू धर्मकोश–डॉ. राजबली पांडेय,
7. आर्य संस्कृति–बलदेव उपाध्याय पृ.–35,
8. नवनीत (मुंबई) अक्टूबर 1962–अगस्त्य और कावेरी–लेखक एस. रामन,
9. लोपामुद्रा–क.मा.मुंशी पृ.–122,

मु. पटेलनगर, न.पं.–कादीपुर, पोस्ट–कादीपुर, जिला–सुलतानपुर–228145 (उ.प्र.)

प्रेमचंद का पत्रकार रूप

राजेंद्र परदेसी

वरिष्ठ लेखक राजेंद्र परदेसी पिछले तीन दशक से लेखन में सक्रिय। कविता, कहानी सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। आठ पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति : इंजीनियर।

साहित्य, समाज और स्वदेश के सेवार्थ संकल्पित अनेक साहित्यकार हैं, जिन्होंने केवल साहित्य के सृजन से संतुष्ट न रहकर पत्रकारिता को भी अपनाया है। इसमें दो राय भी नहीं कि पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है जिसे अपनाकर जनमानस से सीधे जुड़ा जा सकता है। कोई भी क्षेत्र हो, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक हो, जनजागरण और बौद्धिक क्रांति के लिए पत्रकारिता एक अपरिहार्य साधन के रूप में सदैव स्वीकृत रहा है। स्वयं महात्मा गांधी भी पत्रकारिता से जुड़े रहे। दक्षिण अफ्रीका में दैनिक पत्र निकाला तो भारत में कई भाषाओं में मुद्रित साप्ताहिक 'हरिजन' के द्वारा अपने विचारों को जनमानस तक पहुंचाते रहे। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं. मदनमोहन मालवीय ने 'इंडियन ओपीनियन', 'हिंदोस्तान', 'अभ्युदय' साप्ताहिक और मासिक 'मर्यादा' के संपादन के द्वारा ही बौद्धिक चेतना जगाने में सफल हुए, जिसमें वह चंदे के रूप में एक करोड़ रुपए उगाह सके थे। इसी धन से उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

हिंदी साहित्य में नए युग के प्रवर्तक भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र पत्रिका' और 'इंदु' का प्रकाशन और संपादन कर सुप्त युग चेतना को जगाया। पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप', पं. प्रताप

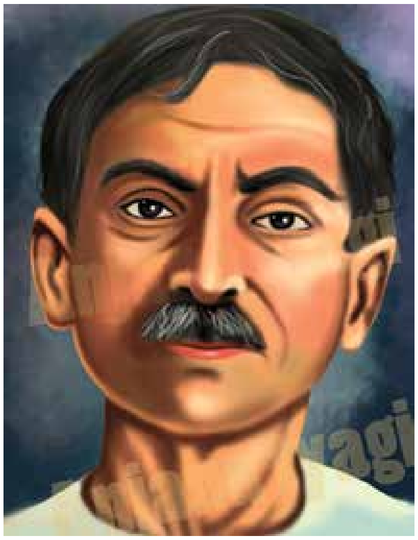

नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती', श्यामसुंदर दास ने 'हिंदी नागरी प्रचारिणी पत्रिका', गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' का प्रकाशन और संपादन कर उनमें प्रकाशित अपने संपादकीयों और टिप्पणियों से अपने विचारों को जन-जन तक सहज रूप से संप्रेषित किया था। दुलारे लाल भार्गव ने 'माधुरी' का संपादन किया तो पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' का दीर्घावधि तक संपादन किया। महाप्राण निराला जैसे युग प्रवर्तक कवि भी 'माधुरी' और 'मतवाला' को अपने विचारों के संप्रेषण का साधन बनाया था।

जहां तक महान कथाशिल्पी प्रेमचंद का संबंध है, तो वह भी अपनी कहानियों और उपन्यासों से इतर पत्रकारिता की महत्ता को स्वीकार कर उससे संबद्ध हुए। उन्होंने भी 'माधुरी', 'हंस' और 'जागरण' का संपादन कर समाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना संबंधी अपने विचारों से देशवासियों को शोषण और अंग्रेजों की दासता से मुक्ति हेतु जाग्रत करते रहे।

प्रेमचंद का समय महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिए अहिंसात्मक युद्ध का युग था। सविनय अवज्ञा, स्वदेशी आंदोलन और नमक सत्याग्रह से देश भर में उथल-पुथल थी। राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रमुक्ति के पांचजन्य की सर्वत्र अनुगूंज थी। ऐसी स्थिति-परिस्थिति में महात्मा गांधी के समर्थक प्रेमचंद केवल साहित्य के सृजन तक सीमित नहीं रह सके। उन्होंने 10 मार्च, सन् 1930 को 'हंस' के प्रकाश का शुभारंभ किया। इसे उन्होंने साहित्यिक नहीं, साहित्यिक राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रदान किया। इसके प्रथम अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा था, ''हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर अपनी नन्हीं-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र पाटने, आजादी के जंग में योगदान देने चला है।... साहित्य और समाज में वह उन गुणों का परिचय करा ही देगा, जो परंपरा ने उसे प्रदान किए हैं।'' अपनी इस प्रथम संपादकीय घोषणा के अनुसार 'हंस' को राष्ट्र की अस्मिता और राष्ट्रीय आंदोलन का मुखपत्र बनाए रखा। उनकी संपादकीय टिप्पणियों में प्रखर राष्ट्रीय चेतना भरी रहा करती थी। इस कारण उन्हें शासन का कोपभाजन भी बनना पड़ा। प्रेमचंद ने अंग्रेजी सत्ता का विरोध तो किया ही भारत की उस सत्ता के विरुद्ध भी अपनी कलम चलाई जो आम जनता का शोषण करते हुए अंग्रेजी सत्ता का साथ दे रहे थे। स्वराज्य कैसा होगा, इसकी व्याख्या भी विचारवान पत्रकार के रूप में करते रहे। उनका कहना था कि स्वराज्य, पद और अधिकार का प्राप्ति करवाने

के लिए नहीं, गरीब किसानों और मजदूरों के हितार्थ अनुकूल स्थितियों की सृष्टि करने के लिए होगा। स्वराज्य में दीनों-दलितों के उद्धार को वरीयता दी जाएगी। उच्च वर्ग के हितों के लिए देश की सामान्य जनता के हितों का बलिदान नहीं होने पाएगा।

प्रेमचंद की दृष्टि मानवीय संवेदना से पुष्ट थी, एक साहसिक पत्रकार का परिचय देते हुए उन्होंने जातिवाद, क्षेत्रवाद, विचारवाद, व्यक्तिवाद आदि का भी विरोध किया। उस समय ऐसे वाद प्रबल थे, इनके समर्थक शक्ति-संपन्न थे, फिर भी प्रेमचंद झुके नहीं। अपनी पत्रकारिता को रचना और विचार की पत्रकारिता, राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता, दीनों-दलितों के समर्थन की पत्रकारिता बनाए रखा।

प्रेमचंद की पत्रकारिता में पूर्वाग्रह को कोई स्थान नहीं था। उन्होंने अपने विरोधी व्यक्तियों को भी 'हंस' में बराबर स्थान दिया, जिनके विचार उनके विचारों से मेल नहीं खाते थे। पत्रकारिता का यह गुण विरल हुआ करता है। इस दृष्टि से भी प्रेमचंद विरल पत्रकार के रूप में याद किए जाएंगे।

हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए भी प्रेमचंद अपने संपादकीयों में अपनी भावनाएं व्यक्त करते रहे हैं। उनका विचार था कि ''पराधीन भारत में न हिंदू की खैर है, न मुसलमान की।'' 'हंस' में जो संपादकीय टिप्पणियां छपा करती थीं, उनका शीर्षक 'हंस वाणी' हुआ करता था। इन 'हंस वाणियों' में प्रेमचंद की निर्भीकता, स्पष्टोक्ति, राष्ट्रीय ओजस्विता की अभिव्यक्ति हुआ करती थी।

'हंस' का प्रकाशन सन् 1930 में हुआ था। सिर्फ पांच वर्ष बीतने पर वह अखिल भारतीय पत्र के रूप में स्थापित हुआ तो इसकी पृष्ठभूमि में वे 'हंस वाणियां' ही थीं, जिन्हें पढ़ने के लिए लोग लालायित रहा करते थे। वस्तुतः 'हंस' तत्कालीन स्वाधीनता आंदोलन का मुखपत्र जैसा बन गया था। स्वयं प्रेमचंद आंदोलन के शक्ति स्रोत जैसे मान्य हो रहे थे। एक पत्रकार के लिए जिन अपेक्षाओं को मूर्तरूप देना आवश्यक होता है, प्रेमचंद वैसे ही पत्रकार थे। उनकी 'हंस वाणियों' में आह्वान्, आलोचना, सुझाव, विरोध, समर्थन आदि का समावेश परिवेश और परिस्थिति की आवश्यकतानुसार होता था। उन्हें बहुजन हिताय में जो कर्म होता, उसके प्रशंसक बन जाते, परंतु इसके विपरीत वाली कार्यपद्धति की आलोचना करने से पीछे नहीं हटते थे। वह गांधी के भक्त थे, परंतु अनन्यभक्त नहीं थे। मार्च, सन् 1931 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। उसकी समाप्ति पर उन्होंने 'हंस' में जो विचार व्यक्त किए थे, उनका एक अंश इस प्रकार है—''अब कांग्रेस का ध्येय कांग्रेस के सामने है। वह गरीबों की संस्था है। गरीबों के हितों की रक्षा उसका महान कर्त्तव्य है, उसके विधान में मजदूरों, किसानों और गरीबों के लिए वह स्थान है जो अन्य लोगों के लिए वर्ग, जाति, वर्ण आदि के भेदों को उसने एकदम हटा दिया है। हम कांग्रेस के इस प्रस्ताव के लिए बधाई देते हैं। स्वराज्य की इस व्याख्या को लाखों की संख्या में बांटना चाहिए, ऐसा कोई घर न होना चाहिए जिसमें इसकी एक प्रति न पहुंचे। अब जनता को इस विषय पर कुछ संदेह न रहेगा कि वह किन स्वत्वों के लिए लड़ रही है और स्वराज्य से उसका क्या लाभ होगा और उसकी प्राप्ति का क्या मार्ग है।'' यह टिप्पणी प्रेमचंद की जागरूक और सुलझी हुई पत्रकारिता का द्योतक है, इसमें समर्थन है, सुझाव भी है।

यदि प्रेमचंद कथा साहित्य के सृजन को अनवरत समर्पित रहे तो पत्रकारिता के प्रति भी उनका समर्पण अपेक्षाकृत कम नहीं माना जाएगा। 'हंस' को निकालते रहने के लिए उन्हें अर्थाभाव के अलावा सरकारी दमन को भी झेलना पड़ा था। एक समय तो सरकारी दमन के विरुद्ध 'हंस' में टिप्पणी लिखने के कारण उनसे जमानत मांग ली गई थी। उन दिनों प्रेस की स्वतंत्रता आज जैसी नहीं थी। यदि शासन के विरुद्ध कुछ लिखा जाता था, तो प्रेस से जमानत के तौर पर नकद धनराशि अदा करनी होती थी। न देने पर पत्र को बंद कर देना पड़ता था। पत्रकारिता के प्रति वह किस सीमा तक लगनशील थे, इसका अनुमान उस सौ से अधिक टिप्पणियों से लगाया जा सकता है, जिन्हें उन्होंने 'हंस' की संपादन-अवधि में लिखकर प्रकाशित की थीं। ये टिप्पणियां यह भी प्रदर्शित करती हैं कि वह पत्रकार के रूप में कितने सजग थे। उन्होंने धर्म, संस्कृति शिक्षा, राष्ट्रभाषा, समाज, महिला, स्वतंत्रता संग्राम, विश्वयुद्ध, हिंदू-मुस्लिम एकता एवं समस्या, छूत-अछूत, किसान-मजदूर, स्थानीय शासन, साहित्य, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समस्या आदि अनेकानेक विषयों पर अपने नितांत मौलिक विचार रखे। वह अपने समकालीन किसी भी महान व्यक्ति के विचारों के अनुयायी नहीं रहे, सच तो यह है कि किसी दूरदर्शी, निष्पक्ष और प्रबुद्ध पत्रकार से ऐसी ही आशा की जाती है।

निष्कर्षतः प्रेमचंद की पत्रकारिता किसी भी दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि उनके ऊपर उनका साहित्य हावी न होता तो वह एक सुविख्यात पत्रकार के रूप में युगों-युगों तक याद किए जाते। यह देश और देशवासियों के लिए गौरव का विषय है कि प्रेमचंद जैसे पत्रकार का भी आविर्भाव हुआ था, उस समय जब पूरा देश गुलाम था और स्वाधीनता के लिए युद्धरत था।

44, शिव विहार, फरीद नगर,
लखनऊ-226015

शमशेर की काव्य-सृष्टि पर एक दृष्टि

डॉ. प्रभा दीक्षित

हमीरपुर के स्वामी नागाजी बालिका डिग्री कॉलेज में प्राचार्या डॉ. प्रभा दीक्षित के गजल और कविता संग्रह के अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन।

हिंदी साहित्य के वृहत् आकाश में पंच—नक्षत्रों नागार्जुन, केदार, शील, ऐसे मील के पत्थर प्रमाणित हुए हैं जिन्हें उनके काव्यगत जीवन मूल्यों की विविधता एवं बहुआयामी खोज के लिए हमेशा स्मरण किया जाएगा, किंतु इसका तात्पर्य यह कदापि न लगाया जाए कि शमशेर सुबह किसी वस्तु को सफेद और शाम को स्याह कह देते थे। वे कविता में जिंदगी और जिंदगी में कविता की तलाश करने वाले ऐसे अन्वेषक रहे हैं जो काल से होड़ करते हुए, युगीन चेतना को आत्मसात् करते, संभावित निष्कर्षो के द्वारा विश्व मानवता की मूर्ति तराशने (सुधारने) का प्रयास करते रहे और यह प्रयास उनकी बहुमुखी क्षमताओं का स्त्रोत कहा जाएगा। श्री मुन्नू लाल 'शील' अपने यायावरी जीवन से थक कर कानपुर दक्षिण में मेरे पड़ोस में विश्राम (निवास) करते थे। इसीलिए समय-समय पर उनकी कीमती सलाह, स्नेह और आत्मीय आशीर्वाद मुझ अकिंचन को प्राप्त होता रहा। त्रिलोचनजी जन संस्कृति मंच के अध्यक्ष रहे थे उस समय मैं जसम की केन्द्रीय कार्यकारिणी की सदस्य रही। अतः उनका भी स्नेह और सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ। केदार और बाबा नागार्जुन को भी थोड़ा बहुत निकट से देखा, किंतु मुझे इस बात का हमेशा अफसोस रहेगा कि मुझे शमशेर के सान्निध्य में आने का अवसर कभी नहीं मिला। आज उनके बृहत् काव्य संसार पर दृष्टि डालते हुए और शील दा, जो हिंदी साहित्यकारों के संबंधों के इनसाइक्लोपीडिया थे, के मुख से शमशेरजी के संबंध में सुने संस्मरणों को स्मरण करते हुए, शमशेर के काव्य पर दो शब्द कहने का साहस जुटा रही हूं।

अपनी बहुमुखी भाषा, शिल्प एवं संज्ञान के विविध रूपों के कारण आम सफल कवियों की भांति शमशेर को भी खेमेबाज अदीबों के द्वारा वैचारिक स्तर पर अपने-अपने खेमों में खींचने का प्रयास किया गया। किसी ने उन्हें विशुद्ध कलावादी रोमांटिक कवि बताया तो किसी ने एंटी थीसिस के आधार पर उनके काव्य मूल्य निर्धारित किए, किसी ने सार्त्रवादी कहा तो किसी ने मार्क्सवादी घोषित किया। मैं सोचती हूं किसी जैन्युन कवि के साहित्यिक अवदान के मूल्यांकन का यह एक ऐसा सरलीकरण है, जो मूल्यांकन की कमतरी के साथ कवि के साहित्यिक कद को भी छोटा कर देता है। मैं यह मानकर चलती हूं अगर मानव जीवन अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की एकरूपता के साथ कितना बहुरंगी एवं विविधता पूर्ण है, तो मानव जीवन की कलात्मक अनुकृति कविता एकांगी कैसे रह सकती है? हां कवि का क्रमिक विकास एवं जीवन के यथार्थ के अनेक पहलुओं की पड़ताल, जो एक सफल कवि के लिए आवश्यक है, उसकी कविता के गुलदस्ते को कई रंग के फूलों से सजा देती है। ये भिन्न जाति के फूल और विविध रंग शमशेर की कविता का मौलिक गुण है, अन्यथा अपने अन्य जनवादी कवि मित्रों की भांति शमशेर भी आम आदमी के बेहतर जीवन के समर्थक एवं मानव मुक्ति के प्रति प्रतिबद्ध रहे हैं। प्रयोगवादी तारसप्तकी कवियों में मुक्तिबोध सहित घोषित-अघोषित रूप से जो कवि व्यक्तिगत कला आकांक्षा एवं क्षणवादी निराशा के कुहासे से बाहर आए, शमशेर उसी कतार के कवि हैं। इलियट या अज्ञेय की बौद्धिक क्षमताओं से अप्रभावित रहकर अपना रास्ता अलग बना रहे थे। जहां तक प्रभाव की बात है, तो पंच महाकवियों की पूरी पीढ़ी निराला के काव्य-शिल्प एवं वैचारिक मूल्यों से प्रभावित थी। संभव है चंद अंग्रेजी, कवियों का प्रभाव भी शमशेर ने गृहण किया हो, सार्त्र और मार्क्स के भी आंशिक प्रभाव की बात को भी एक सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है, किंतु शमशेर ने अपने निजी संज्ञान या चेतना के द्वारा जो अपने काव्य की एक अलग दुनिया बनाई है उसकी बुनावट को उनका मौलिक शिल्प एवं निष्कर्षो को काव्य दर्शन की संज्ञा प्रदान की जानी चाहिए।

हर सफल कवि प्रारंभ में रोमांटिक या रूपवादी होता है और शमशेर भी थे। किसी विशेष कालखंड में वैचारिक ताप (उत्तेजना) के कारण भले कुछ समय के लिए रोमांटसिज्म प्रगतिवाद का विरोधी मान लिया गया हो, किंतु यह सत्य नहीं है और यह समझ इस महाकवि में प्रारंभ से ही रही है। यहां हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वह एक सफल चित्रकार भी थे एवं चित्रकला को काव्यकला का पूरक मानते थे। जीवन को अपनी संपूर्णता में देखने वाले शमशेर अपनी काव्य विषयक धारणाओं को 'अमूर्तकला' नामक निबंध में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"शैली का यथार्थवादी या कलात्मक होना किसी कलाकृति का मूल्य निर्धारित नहीं करता। कोई कलाकृति किसी अनुभूति को कितनी सच्चाई और सफलता से व्यक्त करती है, इस पर उसका मूल्य होता है।"[1]

उक्त वक्तव्य जिस काल में कहा गया वह प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की वैचारिक प्रतिद्वन्दिता का युग था, एवं फैशन के तौर पर चंद प्रगतिशील कवि शब्दों के द्वारा या इंकलाबी राजनीतिक नारों को लिखकर प्रगतिशील या क्रांतिकारी बनने का प्रयत्न कर रहे थे। मैं सोचती हूं संवेदना रहित प्रगतिशील कविता का भी कोई मूल्य नहीं होता। शमशेर अपनी रोमांटिक कविताओं से लेकर प्रगतिशील कविता तक संवेदनशील दृष्टिगत होते हैं और ये संवेदना ही इन्हें बड़ा कवि बनाती है। यौवन की लहराती नदी को प्रकृति में और मानव प्रवृत्ति में देख वह अपने

काव्य में शब्द चित्रों द्वारा जो पेंटिंग तैयार करते हैं वहां भी एक संवेदन की छाया सदैव बनी रहती है–

''शाम का बहता हुआ दरिया कहां ठहरा
सांवली पलके नशीली गोद में जैसे झुके
चांदनी से भरी-भरी बदलिया है
ख्वाब में गीत पेंग लेते हैं
प्रेम की गुइंया झुलाती हैं उन्हें–
उस तरह का गीत, वैसी नींद वैसी शाम सा है
वह सलोना जिस्म।''[2]

प्रकृति और जीवन के तालमेल पर आधारित रूपवादी शब्द चित्र इस कवि के व्यापक सौंदर्यबोध को चिह्नित करता है। किंतु यह भटकाव नहीं है, किसी दिशा भ्रम का संकेत भी नहीं है, बल्कि यह सौंदर्यपरक दृष्टि उनकी जनवादी धारा को पूर्णता प्रदान करती है–

''नींद भरी आलस की भोर का
कुंज गदराया है
यौवन के सपनों से
अभी अनजान मानों
चुंबन की मीठी पुचकारियां
खिला रही कलियों को
फूलों को हंसा रही''[3]

कई बार समीक्षकों ने इन कविताओं को पढ़ने के बाद उन्हें विशुद्ध रूपवादी घोषित करने का प्रयास किया है जो सत्य नहीं है। वह अपनी निजी चेतना और संज्ञान के कारण अपने युग बोध से परिचित ही नहीं थे बल्कि मानव पीड़ा की त्रासदी उनके काव्य की मुख्य धारा रही है और यही कारण है कि शमशेर को जनवादियों की कतार में शामिल किया गया है। वस्तुतः उन्होंने प्रगतिशील कविता का एक नूतन सौंदर्य शास्त्र गढ़ने का प्रयास किया है। प्रतिबद्ध कविताओं को नारेबाजी व प्रचार कविता कह कर उसका अवमूल्यन करने वाले समीक्षकों के लिए शमशेर का काव्य एक प्रतिवाद प्रस्तुत करता है। उन्हें मानव जीवन और राजनीतिक युगबोध की पूर्ण समझ थी। वे राजनीतिक मूल्यों के अवमूल्यन एवं आगामी समय में होने वाले परिवर्तन (इंकलाब, या क्रांति) पर पूरे भरोसे से पूर्ण संवेदनशील भाषा में लिखते हैं–

''सरकारें पलटती हैं जहां,
हम दर्द से करवट बदलते हैं
हत्यारे अपने नेता हमें जब भूल जाते हैं,
भूल जाता है जमाना भी उन्हें
हम भूल जाते हैं उन्हें खुद
और तब
इंकलाब आता है,
उसके दौर को गुम करने।।''[4]

शमशेर बाबा नागार्जुन की भांति तात्कालिक राजनीतिक घटनाओं पर कविता नहीं लिखते मगर युग की राजनीति या बाजार के प्रभाव को भली-भांति समझते हैं जहां आदमी से लेकर अदब, दीन, ईमान, प्यार सभी कुछ बिकने लगा है और वो बेबाक कह उठते हैं–

''इल्मो हिकमत दीनो ईमां,
मुल्की दौलत हुस्नो इश्क
आपको बाजार से जो चाहिए
ला देता हूं मैं।।''[5]

जब तक शमशेर के काव्य को समग्र रूप से न पढ़ा जाए तब तक आप नतीजा नहीं निकाल सकते। यह रूपवादी, कलावादी, अतिभावुक कवि अपने मूल चिंतन में यथार्थपरक मानवतावादी, जनवादी कवि है, जो शील या नागार्जुन की भांति स्थिति का व्यापक चित्रांकन नहीं करता है। इस बारे में शमशेर किफायतसार हैं। धर्म का खंडन करने में अधिक व्याख्या न करते हुए दो पंक्तियों में बड़ी बात कह जाते हैं–

''क्या जरूरी है कि
हिन्दुस्तान पर कब्जा किया जाए।
जो धर्मों के अखाड़े हैं
उन्हें लड़वा दिया जाए।''[6]

वे अपने देश और अपने वर्ग (आम आदमी) की त्रासद स्थिति से क्षुब्ध भी होते हैं और संपूर्ण विश्व को प्यार भी करते हैं। बस शर्त यह है कि शोषण-दोहनमुक्त समाज होना चाहिए। वे भारतीय समाज के वर्गों की जटिलताओं को जानते हैं। उनके इस व्यापक काव्यात्मक आयाम को चिह्नित करती हुईं उनकी कविताएं उनके काव्य लक्ष्य तक पहुंचने में मदद करती है–

''जहां कुत्तों का जीवन भी दीर्घतर लगता है
स्पृहणीय केवल/ अपना ही दयनीय
क्यों जन्मा था मनुष्य
बीसवीं सदी के मध्य में
यूं मरने के लिए।''[7]

अपने मुल्क की इस त्रासदी को देखने के बाद भी वे वैश्विक स्तर पर चिंतन करते हुए लिखते हैं–

''ये पूरब पश्चिम
मेरी आत्म के ताने बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी
किरनों को अपनी दिशाओं के
लिए लपेट लिया
और मैं यूरोप और अमेरिका के नर्म आंच
की धूप छांव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूं
सब संस्कृतियां मेरे सरगम में विभोर हैं।
क्योंकि मैं हृदय की
सच्ची सुख-शांति का राग हूं
बहुत आदिम बहुत अभिनव।''[8]

निजी स्तर पर आदमी में आदमीयत की तलाश करने वाला यह महाकवि (शमशेर) सामूहिक जीवन के सुखद सपनों को पूर्ण करने के लिए राह खोजता रहा, यह खोज यह तलाश उनके जीवन की वह कविता रही जो कभी पूर्ण भले न हुई हो, मगर साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से इसलिए लिखी गई कि उक्त तलाश पूर्णता की तलाश थी, मनुष्य जाति के बेहतर जीवन की तलाश थी, दुनिया संवारने की तलाश थी जो उनके विचारों की रोशनी में अभी भी जारी है।

संदर्भ–

1. पूर्वगृह, जनवरी-अप्रैल, 1976, पृ. 30
2. शमशेर, कुछ और कविताएं, पृ. 56
3. शमशेर, कुछ और कविताएं, पृ. 6
4. शमशेर, कुछ और कविताएं, पृ. 10
5. शमशेर, कुछ और कविताएं, पृ. 93
6. स्मृति के आधार पर
7. शमशेर, चुका भी नहीं हूं मैं, पृ. 84
8. शमशेर, कुछ और कविताएं, पृ. 18
9. विचित्र पत्र पत्रिकाएं

128/222, वाई एन ब्लॉक, किदवई नगर,
कानपुर-208011

अवधी लोकगीतों में नारी मन

डॉ. मीनू अवस्थी

बनारस के वसंत महिला कॉलेज में सहायक प्रोफेसर डॉ. मीनू अवस्थी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित। कथाक्रम पत्रिका में संपादकीय सहयोग।

अवध हमारी संस्कृति का मुकुट है तो अवधी चंदन हार है। इसी में कबीर की भावभूमि है और तुलसी की मनोभावना। अवध की इसी मनभावन लोक संस्कृति में अवधी लोकगीतों का अपना अलग संसार है।[1] हिंदी साहित्य के अंतर्गत अवधी का विशिष्ट स्थान है और अवधी में उसके लोक साहित्य का। अवधी लोक साहित्य में लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित रूप में है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी तक आगे बढ़ता है।[2] प्राचीनकाल से लेकर आज तक भारतीय समाज में स्त्रियों की चर्चा आते ही लोग 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' जैसी सूक्तियां दोहराने लगते हैं। ये सूक्ति ग्राम्य जीवन में पली-बढ़ी स्त्रियों के समाज में बिल्कुल लागू नहीं होती हैं। ग्राम्य जीवन की इन स्त्रियों को देखकर गुप्तजी की पंक्तियां स्मरण हो आती हैं—

''यह दुख जिसका नहीं कुछ भी छोर है।
देव, अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।।''

स्त्री जीवन को लोक साहित्य ने जिस विश्वसनीयता के साथ व्यक्त किया है, उतना अन्य किसी ने नहीं। अवधी लोकगीतों में स्त्रियों के जीवन के वास्तविक चित्र देखने को मिलते हैं। समय-समय पर जान-बूझकर या अनजाने में ही बड़ी ही तन्मयता के साथ ये व्यथा-कथा गाकर सुनाने की प्रथा स्त्रियों के बीच न जाने कब से चली आ रही है। सामाजिक संबंधों के आधार पर स्त्री के अनेक रूप होते हैं। बेटी, बहू, मां, सास, ननद, दादी, नानी आदि कितने ही रूपों में वह अपने को ढालती रहती है। लेकिन अधिकतर संबंध में उसे अपमानित होना पड़ता है, उपेक्षा सहनी होती है। कन्या-जन्म को लेकर स्त्री हमेशा से ही उपेक्षित रही है। पुत्र को जन्म देने पर लोग अपार प्रसन्नता व्यक्त करते हैं तो वही कन्या-जन्म पर शोक प्रकट करते हैं—

''पूत जन्मी पलंग चढ़ि बइटी
बिटिया जन्मी उतर गईं मन से।''

इसी तरह एक सोहर गीत में भी यही दुख देखने को मिलता है—

''तिरछी बिछाय दिहिन्ह खटिया,
बिछाय दिहिन्ह खटिया
हाय राम हमरे तो हुई गई बिटिया
बिटिया सुनके ससुर जी आए
उनकी तो धड़क उठी छतियां।''

आशय यह है कि बिटिया जन्म को सुनकर रिश्तों की दशा क्या हो जाती है। कन्या-जन्म देने वाली स्त्री और पुत्र-जन्म देने वाली स्त्री की सेवा-सत्कार में भी बड़ा अंतर देखने को मिलता है। पुत्र-पुत्री के बीच इस भेद को एक कन्या अपने विवाह के अवसर पर अपने पिता से पूछती भी है—

''एक ही बसदां के दुई रे करइली,
एक ही बसुरिया एक-एक बांस रे
एक ही मेहरिया के दुई लड़कियां,
एक बहिनी एक भाई रे
भइया लिखी बाबा चउपरिया,
बहिनी लिखे दूर देस रे।''

कन्या अपने माता-पिता से पूछती है कि एक ही बांस अर्थात् माता-पिता की दो संतानें हैं—एक पुत्र और एक पुत्री किंतु बाबा ने भइया को अपना महल-दुमहला देकर अपने पास रखा है। उसी भाई की बहन को दूर देश क्यों ब्याह दिया।[3] मां अपनी पुत्री से कहती है कि ससुराल जाने पर उसे सास-ननद के ताने सुनने पड़ेंगे और उसको बर्दाश्त करना पड़ेगा—

''न मैं सिख्यौं गुन अइगुनवां
न सिख्यौं राम रमोय,
सासु ननदि मिलि मइया गरिअइहैं
मोरे बूते सहा न जाय।
सिखि लेव बेटी गुन अइगुनवां
सिखि लेव राम रमोय,
सासु ननदि मिलि मइया गरिअइहैं
लै लिहो अंचरा पसारि।''

एक मां अपनी पुत्री को बता रही है कि तुम्हारे साथ क्या बर्ताव हो सकता है और ऐसे वातावरण में तुम्हें धैर्य के साथ निभाना है। ग्राम्य जीवन में देखा गया है कि 'एक नई बहू' के जीवन में चौका धोना, जूठे बर्तन साफ करना, धान कूटना, आटा पीसना, भोजन बनाना और पहले सबको खिलाना फिर बचा-खुचा खाना। सास-ननद के देर रात पैर दबाना और उसके बाद भी मार खाना और ताना सुनना। जब भाई अपनी बहन से मिलने ससुराल आता है तो वह अपने भाई से कहकर अपना जी हलका करना चाहती है—

"नौ मन कूटौं भइया नौ मन पीसौं
नौ मन सिझयौ रसोइयां रे नां
पछिली टिकरिया भइया हमरा भोजनवां
बहू महैं कुकुरा बिलरिया रे नां।"

विदाई के नाम पर भी स्त्री को खूब सुनाया जा रहा है। लेकिन अपनी विदाई को लेकर बहन अपने भाई की प्रतीक्षा करती रहती है—

"आई गए डोलिया कहार
आय गए बीस हमार
गंगा अस मोरी भइया
जमुन अस मोर बाप
चंदा सुरज अस भइया
जिन सुधि लइ है हमार।।"

अवधी लोकगीतों में स्त्री अपने भाई के साथ ज्यादा मुखर दिखाई देती है, वह अपने मन की बात उससे कहती है। लोकगीतों में बंध्या के प्रति उपेक्षा भाव देखने को मिलता है। स्त्री को अपने पति, सास, ससुर एवं अन्य संबंधियों से सम्मान नहीं प्राप्त होता। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर उसे दूर ही रखा जाता है। इस प्रकार से तिरस्कृत होने पर वह आत्महत्या करना चाहती है। वह वन को जाती है जिसे वन्य पशुओं द्वारा उसका भक्षण हो जाए—

"सासू मोरी कहैं बांझनियां,
ननद ब्रजवासिनी हो।
रामा जिनकी मैं बारी रे बियारी
उइ घर ते निकारेनि हो।
घरवा से निकरि बांझनिां
जंगल बिच ठाढ़ी हो।
राम वन ते निकरि बघिनियां
तो सुख-दुख पूंछत हो।
तिरिया कउनी विपतिया कै भारी
जंगल बिच तन ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहैं बांझनियां
ननद ब्रजवासिनी हो।।"

लेकिन बंध्या को वन्य पशु भी भक्षण करने से इसलिए मना कर देते हैं कि कहीं उसको खाने से वो भी बांझ न हो जाए। बंध्या अपने प्रति ये उपेक्षित भाव देखकर दुखी हो जाती है, वह धरती माता से प्रार्थना करती है लेकिन उनका भी आश्रय उसे इसलिए नहीं मिलता कि वह ऊसर हो जाएगी—

"बाघिन! हमका जो तुम खाइ
लेतिउ विपतिया से छूटित हो
जहां से तुम आइउ वहां लउटि जाओ
तुमहिं नांही खइबई हो।
बांझिन! तुमका जो हम खाई लेब
हमहुं बांझिन होइबे हो।
उहां ते चली बांझनियां
नीमिया तरे ठाढ़ी हो।
रामा निमिया ते निकसी नगनियां
तो दुख-सुख पूछइ हो।
तिरिया! कउन विपतिया कै मारी
निमिया तरे ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहैं बांझनियां
ननद ब्रजवासिनी हो।
नागिन जिनकी मैं बारी रे बियाही
उइ घर ते निकारेनि हो।
बांझिन तुहूंका जौ हम राखि लेइबै
हमहूं होइबे ऊसर हो।"

पहले के लोकगीतों में स्त्री की वेदना स्पष्ट रूप से सुनाई देती है लेकिन ग्राम्य समाज आज बहुत कुछ बदल चुका है। यह बदलाव भी लोकगीतों में दिखाई देता है। विवाह को लेकर पुत्री अपनी पसंद-नापसंद को खुलकर कहती है—

"अम्मा कर दे नौकरिया संग ब्याह रे
हल जोता बलम नहीं भाए रे
जब हल जोता खेतों से आए
वो तो मिट्टी से नहाए रे
जब नौकरिया नौकरी से आए
वो तो हंस हंस बतियाए रे
हल जोता बलम नहीं भाए रे।"

इसी तरह पहले जो बहू सास-ननद से पीड़ित थी वहीं आज बहू, सास को सुना रही है—

"छाई छाई रे बहार कलजुग की
जमाना देखो बदल गवा
हां जमाना देखो बदल गवा
सास धोवै कपड़ा तो बहू फैलावै जावे
जमाना देखो बदल गवा...।"

भूमंडलीकरण के इस दौर में ग्राम्य जीवन में और वहां की संस्कृति में बहुत बदलाव आया है। गांव की पत्नी शहर के जीवन से प्रभावित है। वह पति के शहर में रहने पर स्वयं भी शहर में सुविधाओं के कारण रहना चाहती है—

"राजा हमहूं चलब लखनउवा सहर का
राजा तुम तो करत नौकरिया हुआं पै
हमहूं रहब तोरे संग बलम तोरे संग चलब
हुआं तो रानी तुमका सासू ना मिलिहै
कइसे का करिहौ रसुइयां।
सासू का करो राजा एक दुइ तीन, एक दुइ तीन
सुना है सहरा मा स्टोव जलत है,
गैसव जलत है
वहीं पे रूटिया बनइबे।"

इस प्रकार परदेसी की पत्नी बिना दरिद्रता के भी दरिद्रता का अनुभव करने के लिए विवश हो जाती है। विज्ञान की उपलब्धियों ने लालसा के जिस सीमाहीन आकाश को जन्म दिया है, उसने प्रकृति की गोद में पलने वाले ग्रामवासियों की भी सुख-शांति छीन ली है। अवध में ऐसे अनेक गीत प्रचलित हैं, जिनमें व्यक्ति की बढ़ती हुई किंतु न पूरी होने वाली लालसाओं का चित्रण देखने को मिलता है। इस प्रकार सुर, लय, ताल में निबद्ध ये अवधी लोकगीत रस के अजस्र स्रोत हैं।[4] अवधी लोकगीतों में स्त्री मन के विविध रूप देखने को मिलते हैं। आज स्त्री अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है। ऐसे में लोक साहित्य में स्त्री जीवन का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लोक साहित्य में युग की बात नहीं, अपितु युग-युग की बात कही गई है। वह व्यापक और सार्वकालिक है।

संदर्भ—

1. प्रचार से दूर लोकगीत—डॉ. योगेश प्रवीन।
2. अवध-अवधी : विविध आयाम, पृ. 147
3. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौंदर्य—डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 20
4. साहित्य अमृत, मई 2013, पृ. 57

68, अवध विहार कॉलोनी, सी-मैप,
पिकनिक स्पॉट रोड, लखनऊ-226015

अज्ञेय : जीवन परिवेश एवं प्रारंभिक काव्य यात्रा

किरन तिवारी

युवा लेखिका किरन तिवारी वर्तमान में गोवा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोध कर रही हैं।

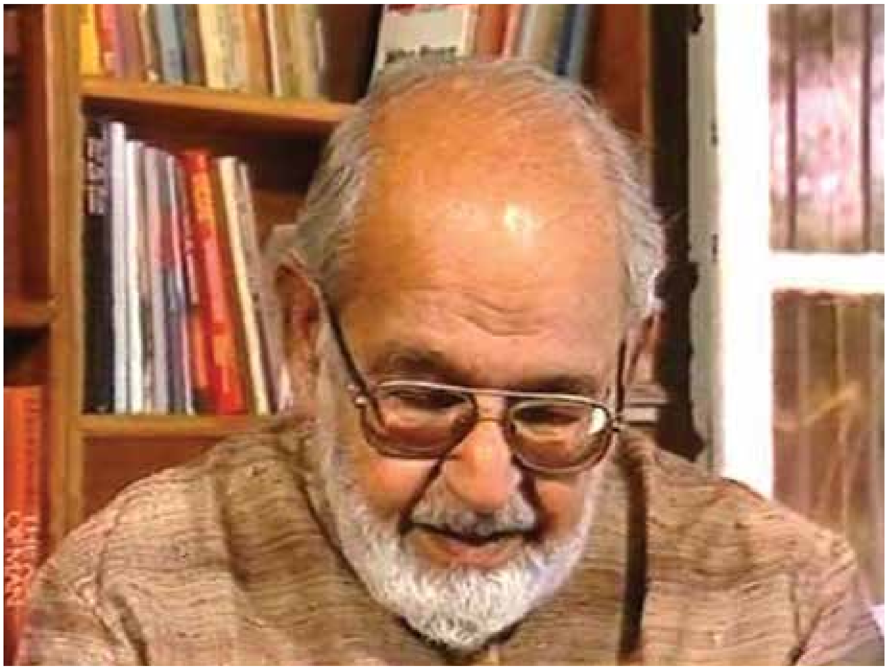

हिंदी साहित्य को नया कलेवर प्रदान करने वाले अज्ञेय युग प्रवर्तक कवि के रूप में जाने जाते हैं। अज्ञेय न केवल कवि के रूप में विख्यात हैं वरन वह एक उत्कृष्ट लेखक, चिंतक, समीक्षक, दार्शनिक एवं कुशल विचारक के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने हिंदी कविता को छायावाद की कल्पना से निकाल कर यथार्थ की धरा प्रदान की। कविता में प्रयोग की स्थापना कर हिंदी साहित्य को 'प्रयोगवाद' जैसी आधुनिक काव्यधारा से जोड़कर हिंदी कविता को जो नई डगर दिखाई उसके लिए हिंदी साहित्य को उन पर सदैव गर्व रहेगा।

7 मार्च, सन् 1911 में कुशीनगर के एक शिविर में जन्मे अज्ञेय हिंदी साहित्य के लिए एक वरदान सिद्ध हुए। उनके पिता हीरानंद वात्स्यायन पुरातत्व विभाग में एक उच्चाधिकारी थे, जिसके कारण उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था। पिता के साथ यायावरी जीवन ने अज्ञेय की बौद्धिक क्षमता को निखार दिया। इनके विषय में रामकमल राय का कथन है—"अपने पुरातत्वज्ञ पिता से जो गांभीर्य एवं शोध की प्रवृत्ति इन्हें विरासत में मिली उसे लेकर संपूर्ण विश्व में यायावरी करते हुए अज्ञेय ने निरंतर अपने व्यक्तित्व को समृद्ध किया है।"[1] अज्ञेय ने अपनी शिक्षा देश के विभिन्न प्रांतों से प्राप्त की। विज्ञान एवं अंग्रेजी में इनकी विशेष रुचि थी, जिसका प्रभाव उनकी कविताओं पर पड़ा। सन् 1929 में बी.एस.सी. उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे क्रांतिकारी दल में भर्ती हो गए। जन्म से क्रांतिकारी जीवन तक की यात्रा में कई उतार-चढ़ाव आए। सन् 1929 से सन् 1936 के बीच इन पर कई मुकदमे चलाए गए। इस दौरान उन्हें लाहौर, अमृतसर तथा दिल्ली की जेलों में भी रहना पड़ा। अज्ञेय के मन-मस्तिष्क पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है—"यह पूरी अवधि कुल ले देकर घोर आत्ममंथन, शारीरिक यातना और स्वप्न भंग की पीड़ा की अवधि रही।"[2]

जीवनयापन के लिए उन्होंने कई समाचार पत्रों का संपादन किया। सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, नवभारत टाइम्स, नया प्रतीक एवं दिनमान आदि समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं से जुड़े रहे। इसके अतिरिक्त अज्ञेय सेना में भर्ती हुए, रेडियो में भी काम किया। यद्यपि अज्ञेय चित्रकला, फोटोग्राफी एवं मूर्तिकला में भी निपुण थे परंतु इन सबके बीच उनकी जिसमें सबसे अधिक एकाग्रता रही वह था—लेखन क्षेत्र। अपने संपूर्ण जीवन में अज्ञेय ने जो कुछ भोगा उसे यथार्थ में पिरोकर प्रस्तुत कर दिया। कविता को सत्य की कसौटी पर कसने का दुष्कर कार्य करने के लिए उन्होंने सन् 1943 में 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया, जिसके माध्यम से विचारों में भिन्नता रखने वाले कवियों को 'एक राह का अन्वेषी' बना दिया, जो अपने आप में एक ऐतिहासिक कार्य था। उनके विषय में अज्ञेय का विचार था कि संग्रहित सभी कवि कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य को सत्य पर लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। वे किसी स्कूल

के नहीं हैं, किसी 'मंजिल' पर पहुंचे नहीं हैं, अभी राही हैं, राहों के अन्वेषी हैं।[3] 'राहों के अन्वेषी' कहकर अज्ञेय कविता में सत्य की संभावना को विस्तार देते हैं। 'आत्मपरक' में अज्ञेय कहते हैं कि कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है।[4] आत्मिक सत्य का प्रकाशन ही अज्ञेय की कविताओं का ध्येय था। इसी सत्य के अन्वेषण ने उन्हें प्रयोगवादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। लगभग चार वर्ष की अवस्था में फिरकी को देखकर कविता करने वाले अज्ञेय प्रारंभ से प्रयोगवादी नहीं थे। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में उनके विचारों में मतभेद दिखाई देता है।

इस क्रम में सन् 1933 में प्रकाशित होने वाली उनकी प्रथम रचना 'भग्नदूत' की कविताओं को देखा जा सकता है। इस काव्य संग्रह की कविताओं में विचारों की विविधता दिखाई देती है। इस काव्य संग्रह की प्रथम कविता—'दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब' में कवि रहस्यवादी दिखता है। वह कहता है—''दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब/ तब ललाट की कुंचित अलकों,/तेरे ढरकीले आंचल को,/ तेरे पावन चरण-कमल को/ छू कर धन्य भाग अपने को लोग मानते हैं सब के सब।''[5] इस रचना में छायावाद का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'कहो कैसे मन को समझा लूं' कविता में प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। वह कहते हैं—''कहो कैसे मन को समझा लूं/ झंझा के द्रुत आघातों-सा/ द्युति के तरलित उत्पातों-सा/ था वह प्रणय तुम्हारा, प्रियतम।''[6] इस काव्य की रचना जेल में की गई थी। जैसा कि विद्यानिवास मिश्र के उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि यह समय घोर यातना और पीड़ा का था, यह पीड़ा उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है। 'पराजय गान' में वह कहते हैं—''विजय? विजेता! हा, मैं तो हूं स्वयं पराजित हो आया/ जग में आदर पाने के अधिकार सभी मैं खो आया।''[7] इस कविता में कवि के मन में कुछ न कर पाने की खीझ भी दिखाई देती है। लेकिन कवि निराश न होकर पीड़ा को ही अपना अस्त्र बनाता है और इसलिए वह कहता है—''पर मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूं-/ क्योंकि मैं जीवन कवि हूं।''[8] इस प्रकार भग्नदूत की कविताओं में हम पाते हैं कि कवि की कोई प्रवृत्ति नहीं है। विचारों में कोई एकता नहीं है परंतु कवि के मन में एक आस्था अवश्य है जिसका विकास उनके अग्रिम काव्य संग्रहों में हुआ है।

'चिंता' अज्ञेय की द्वितीय रचना है, जिसका प्रकाशन सन् 1942 में हुआ। इस काव्य संग्रह में चिरंतन प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। यह दो खंडों 'विश्वप्रिया' एवं 'एकायन' में लिखी गई है। अज्ञेय के शब्दों में इस पुस्तक का जो विषय है—मोटे तौर पर जिसे प्रेम कह लें और जिसमें 'मंगेतर' के प्रति रोमानी कौतूहल से लेकर दांपत्य तक के सभी प्रकार के ग्रह-विग्रह का अनुभव आ जाता है।[9] प्रेमी और प्रेयसी के मध्य—प्रियतम मेरे मैं प्रियतम की का भाव दिखता है। 'चिंता' में अज्ञेय ने स्त्री के दीप्त रूप का निरूपण किया है। डॉ. राजेंद्र मिश्र का कथन है कि अज्ञेय ने चिंता में अपने जीवन-दर्शन को उस कहानी से व्यक्त किया है जिसमें स्त्री और पुरुष सारे संसार की रचना करते हैं।[10] इस संग्रह पर भी छायावाद का प्रभाव दिखाई देता है।

अज्ञेय का तीसरा काव्य संग्रह 'इत्यलम' है, जिसका प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। इसमें 'बंदी-स्वप्न', 'हिय-हारिल', 'वंचना के दुर्ग' और 'मिट्टी की ईहा' नामक चार शीर्षक कविताएं संग्रहीत हैं। 'बंदी-स्वप्न' में कवि के बंदी जीवन की कविता मिलती है। इसमें लगभग इक्कीस कविताएं मिलती हैं, जिनमें 'विशाल जीवन', 'घृणा का गान', 'कीर की पुकार' आदि कविताएं संकलित हैं। 'घृणा का गान' कविता में कवि ने अत्याचारियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है और उन्हें ललकारते हुए कहा है—''तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन,/ जीवन के चिर-रिपु विकास के प्रतिद्वंद्वी प्राचीन/ तुम शमशान के देव! सुनो यह रणभेरी की तान/ आज तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान।''[11] इस कविता में कवि का प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है। 'हियहारिल' कविता में रहस्यवाद का भाव मिलता है परंतु कवि की ईश्वर में आसक्ति नहीं है। वह कहता है—''मैं भी एक प्रवाह हूं/ लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है।''[12] 'नाम तेरा', 'प्राण तुम्हारी पद रज फूली' आदि कविता में प्रेमाभिव्यक्ति हुई। 'नाम तेरा' कविता में कवि प्रेम में पीड़ा की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहता है—''प्रेम को चिर-ऐक्य कोई मूढ होगा तो कहेगा-/ विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा।''[13] 'आज थका हियहारिल मेरा' कविता में हारिल कवि के आत्मा का प्रतीक है तो 'अंतिम आलोक', 'सूर्यास्त' जैसी प्रकृति से संबंधित कविताएं भी इसमें मिलती हैं। 'वंचना के दुर्ग' खंड में व्यंग्यात्मक कविताएं हैं। 'आवाहन' कविता में जब वह आततायी को ललकार कर कहता है—''नूतन प्रचंडतर स्वर से/ आततायी, आज तुझको पुकार रहा मैं।''[14] अज्ञेय शोषितों की पीड़ा से कराहते हुए दिखते हैं। 'मिट्टी की ईहा' इस संग्रह की अंतिम रचना है। इस संग्रह में अज्ञेय यथार्थ की भूमि पर खड़े प्रतीत होते हैं। अज्ञेय के दृष्टिकोण में परिवर्तन की दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण है।

'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह का नाम आता है, जिसका प्रकाशन सन् 1949 में हुआ। हिंदी-जगत में इस संग्रह से ही अज्ञेय एक नए काव्य प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस संग्रह में अज्ञेय की कुछ विशेष कविताएं मिलती हैं। जैसे—'हरी घास पर क्षण भर', 'कलगी बाजरे की', 'नदी के द्वीप', 'सपने मैंने भी देखे हैं' इत्यादि। इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंध को आधुनिक अर्थ प्रदान किया है। वे व्यक्ति की सामाजिकता को स्वीकारते हुए भी वैयक्तिक स्वतंत्रता को विशेष महत्त्व देते हैं। वह कहते हैं—''किंतु हम हैं द्वीप।/ हम धारा नहीं हैं/ स्थिर समर्पण है हमारा/ हम सदा से द्वीप हैं स्रोतवाहिनी के/ किंतु हम बहते नहीं हैं।/ क्यों कि बहना रेत होना है।/ हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।''[15] 'कलगी बाजरे की' कविता

में अज्ञेय एक प्रयोगवादी कवि के रूप में हमारे समक्ष प्रकट होते हैं। वह उन सभी उपमानों को मैला कह देते हैं जो पुराने हो गए हैं। वह कहते हैं—''ये उपमान मैले हो गए हैं/ देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।/ कभी बासन अधिक मांजने से मुलम्मा छूट जाता है।''[16] यहां कवि अपनी प्रेयसी को नई उपाधि देता है। वह उसे टटकी कली चंपे की, ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका, भोर की नीहार नहाई कुईं जैसे उपमान देता है, जो अपने आप में एक बड़ा प्रयोग है। अतः प्रयोगवाद की दृष्टि से इस काव्य संग्रह का विशेष महत्त्व है। इस काव्य संग्रह के विषय में डॉ. कृपाशंकर पांडेय का मंतव्य है—''इस संग्रह में कवि की भाषा, प्रत्येक शब्द, बिंब, लय, विचार आदि कई धारणाओं की पुष्टि हुई है, जिनका आज की कविता के संदर्भ में विशेष महत्त्व है।''[17]

'हरी घास पर क्षण भर' के बाद प्रकाशित होने वाला काव्य संग्रह है—'बावरा अहेरी' जिसका प्रकाशन सन् 1954 में हुआ। इसमें अज्ञेय की सन् 1950 से सन् 1953 तक की कविताएं संकलित हैं। यह अज्ञेय का सबसे छोटा काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह की रचनाएं अज्ञेय ने उमर खय्याम की रुबाइयों के अंग्रेजी अनुवाद से प्रभावित होकर की। इस काव्य में अज्ञेय की सुंदर कविताएं संग्रहीत हैं। इसमें कवि ने सूर्य को अहेरी कहा है, जो कवि के मन के सभी दोषों का आखेट कर उसके मन को पवित्र कर दे। कवि सूर्य से कहता है—''बावरे अहेरी रे/ कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है/ एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी क्लौंस को/ दुबकी ही छोड़ कर क्या तू चला जाएगा?''[18] इस काव्य संग्रह में कवि की सामाजिक चेतना भी दिखाई देती है। 'यह दीप अकेला' कविता में कवि समाज को महत्त्व देते हुए कहता है—''यह दीप अकेला स्नेह-भरा/ है गर्व भरा मदमाता, पर इसको भी पंक्ति को दे दो।''[19] इन पंक्तियों में कवि का व्यष्टि और समष्टि के समन्वय का आग्रह है। इस कविता के संबंध में डॉ. राजेंद्र प्रसाद का मत है कि ''कवि में एक नवीन आस्था का उदय हो रहा है।''[20] इन कविताओं में अज्ञेय मंझे हुए कवि के रूप में दिखाई देते हैं।

इस क्रम में उनका अगला काव्य संग्रह 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' है। इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ। इसमें कुल 58 कविताएं हैं। इन कविताओं में कवि का स्वर यथार्थवादी हो जाता है। इस काव्य का आरंभ 'मंगलाचरण' से होता है, जिसमें कवि करुणामयी विराट से भावों और शब्दो के अपार भंडार की प्रार्थना करता है। इस रचना में कवि की सामाजिक अनुभूति अत्यंत प्रभावशाली है। कवि ने शोषकों के प्रति वितृष्णा प्रकट की है। वह कहते हैं—''सांप! तुम सभ्य तो हुए नहीं-/ नगर में बसना तुम्हें नहीं आया/ एक बात पूछूं- (उत्तर दोगे?)/ तब कैसे सीखा डसना-विष कहां पाया?''[21] अज्ञेय कहते हैं कि मैं उन सब की आस्था हूं जो श्रमशील हैं। वे अपने आप को 'सेतु' कहते हैं, जो मानव की आस्था और व्यथा दोनों का मेल करवाता है। 'मैं वहां हूं' कविता में वे कहते हैं—''यह जो मिट्टी गोड़ता है, कोदई खाता है और गेहूं खिलाता है/ उसकी मैं साधना हूं/ यह जो मिट्टी फोड़ता है, मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है/ उसकी मैं आस्था हूं।/ ... मैं वह सेतु हूं- जो है और जो होगा दोनों को मिलाता हूं।''[22]

इन सभी काव्य संग्रहों के आधार पर अज्ञेय की काव्य यात्रा का विकास देखा जा सकता है। अज्ञेय ने अपनी बौद्धिक क्षमता से कविता को जिस प्रकार छायावाद से निकाल कर प्रयोग पर प्रतिष्ठित कर दिया उसे असाधारण ही कहा जाएगा।

संदर्भ—

1. रामकमल राय—अज्ञेय : सृजन और संघर्ष' पृ. 24
2. विद्यानिवास मिश्र—अज्ञेय-प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन परिचय, पृ. 10
3. अज्ञेय, तारसप्तक, पृ. 11
4. अज्ञेय, आत्मपरक, पृ. 15
5. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 131
6. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 135
7. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 134
8. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 141
9. अज्ञेय, चिंता, पृ. 5
10. डॉ. राजेंद्र मिश्र—अज्ञेय : विचार एवं कविता, पृ. 41
11. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 149
12. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 172
13. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 163
14. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 179
15. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 252
16. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 251
17. डॉ. कृपाशंकर पांडेय—सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय, पृ. 38
18. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 266
19. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 273
20. डॉ. राजेंद्र प्रसाद—अज्ञेय : कवि और काव्य, पृ. 23

21-22. अज्ञेय, सदानीरा (1), पृ. 282-283

डी-2/5, पांचवीं मंजिल, डी-ब्लॉक, आनंद रेसिडेंसी,

चिकालिम वास्को, गोवा-403711

हिंदी लघुकथा में चित्रा मुद्गल का अमूल्य योगदान

कविता सिंह

कविता सिंह : इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिंदी), एम.ए. (राजनीतिशास्त्र), एम.एड. व उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से 'हिंदी लघुकथा : उपलब्धि व संभावनाएं' विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत कर चुकी हैं। वर्तमान में राजकीय इंटर कॉलेज, नौएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश में हिंदी अध्यापिका के पद पर कार्यरत। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, लेख, निबंध प्रकाशित।

प्रखर चेतना और सूक्ष्म दृष्टि संपन्न चित्रा मुद्गल के पास अनुभवों का विपुल भंडार है, जिन्हें साहित्य की विविध-विधाओं में रूपायित उनकी समर्थ लेखनी बड़ी सजगता और सरसता से कर देती है। उच्च कोटि की साहित्यिक प्रतिभा संपन्न चित्रा मुद्गल का लघुकथा संग्रह 'बयान' सन् 2005 ई. में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने लिखा है—''इन्हें लिखते हुए लगभग तीस वर्ष हो रहे होंगे।''[1] जिससे यह स्पष्ट है कि सन् 1975 ई. के आसपास उनके लघुकथा लेखन की शुरुआत हो चुकी थी, जिस समय लघुकथा अपने पुराने केंचुल का परित्याग कर नवीन रूप धारण कर रही थी। चित्राजी की लघुकथाओं में एक तरफ जनसरोकारीय दायित्व की गूंज-अनुगूंज के साथ जीवन का स्पंदन भी है। दलित शोषितों के बीच पैठ कर काम किया है, इसलिए उनके दुःख-दर्द उनके प्रति सहानुभूति को लेखिका ने अपनी विभिन्न लघुकथाओं में चित्रित किया है।

'गरीब की मां'[2] लघुकथा गरीब की मजबूरी कि अपनी मां को तीन-तीन बार मारने का झूठ बोलना पड़ता है—''मैं बोली—दो औरत मरने का पिच्छू सासरे ने तीसरा शादी

बनाया।'' खोली का किराया तीन महीने से न भर पाने की विवशता और बरसात के मौसम में खोली खाली करवाने की चिंता। पाठक की सहानुभूति गरीब की तरफ कर देती है और गरीबी, गरीबी की मां को जीते जी भी तीन बार मरने के लिए विवश करती है। 'डोमिन काकी'[3] में संबोधन भले ही 'डोमिन' को 'काकी' का मिल जाए, लेकिन असलियत यह है कि आंगन से लगे नर्दवा को साफ करना, बासी पनेथियां दूर से कौंछे में डालना और डोमिन काकी को कुछ भी देने के लिए कहूं तो दूर से देना, छूना मत उसे''—अस्पृश्यता की आंच अभी भी दलितों को बुरी तरह झुलसा रही है।

'गणित'[4] गरीब की गरीबी, बीमारी, उधारी और पेट की भूख शांत करने का जोड़ घटाना है। कुष्ठ रोग पीड़ित तिरवेनी का 'शारदा कुष्ठ निवारण आश्रम' इलाज का सारा खर्च उठाएगा, लेकिन ठीक हो जाने पर यदि ''तेरी ये गली जुड़ी उंगलियां सिरफिरे साहिबों की खोपड़ी में छूत का कीड़ा मिटाने से रही।'' गरीबी, भीख, कर्ज का दुष्चक्र उसे आश्रम में जाकर ठीक नहीं होने देगा क्योंकि—''भीख की खातिर जो बनिए से चौदह सौ उधारी कर तेरे लिए मैंने पट्टियों वाली चौकी बनवाई है—भला उसका क्या होगा, सोचा है।'' यह कुष्ठ रोग गरीब के जटिल यथार्थ का दर्दनाक गणित है।

'नाम'[5] लघुकथा दलित स्त्रियों के दैहिक शोषण और ठाकुरों की दबंगई की इंतिहा है—''तुम्हारी सुअर-सी औलादों को स्कूल में संग बैठने-पढ़ने की सरकारी इजाजत क्या मिल गई कि मतऊ, दतऊ, धनकुआ, इंसुरी नाम छोड़ बामन, ठाकुरों के नाम रखन लगे?'' लेकिन अंतर्दृष्टि सूझ-बूझ संपन्न लेखिका ठाकुर के मुंह से कहलाती है—''सभी आज से इस रांड को ठकुराइन कहकर पुकारना... भई, जिसका बेटा ठाकुर उसकी मां डोमिन कैसे हो सकती है। हो सकती है?... ''मार डारौ—खिला दो, डर कर सांच के पर नहीं कतर सकती, मालिक। ठाकुर के बेटे का नाम ठाकुरों जैसा न धरें तो क्या डोम-चमारों वाला धर दें?'' ठाकुर का और दलित का दोनों का वक्तव्य एक ही है, कि बेटा और बाप दोनों ठाकुर हैं—संभवतः इसी धरातल पर सवर्ण और दलित का मिलन हो जाए, कहीं लेखिका इस ओर तो संकेत नहीं कर रही है।

'गली'[6] लघुकथा भी गरीबी, पढ़ने की उम्र में पेट भरने की मजबूरी यह कहने की हिम्मत दे देती है—''मैडम, आप अढ़ाई रुपए का पान खाकर थूक सकती हैं—दो रुपए का गजरा नहीं खरीद सकती?'' इसके साथ ही ''साला, यह देश बच्चों को खिला नहीं सकता तो पैदा क्यूं करता है?'' समाज से मिली यही

कड़वाहट भरी सीख उसके जीवन को अर्थ दे देती है और गजरे बिकने के सही स्थान पर पहुंचकर उसके 'दिन बदल गए।' मूल निकाल सत्तर-अस्सी ऊपर कमा लेता हूं—दो अढ़ाई घंटे की मेहनत में। कहने को तो यह बड़े लोगों का इलाका है, बाबूजी मगर दिल रिक्शे तांगे वाले से अधिक गरीब है। पचासों चक्कर के बाद जाके कहीं दो चार गजरे बिकते थे। गली-गली का फर्क है न बाबूजी।'' गली-गली का फर्क ही इनसान व उसकी समस्या को देखने का नजरिया बदल कर इनसान की अमीरी और गरीबी का कारक बन जाती है। गरीबों की गरीबी का कारण अमीरों की अमीरी है—'गली' लघुकथा अपने कथ्य में यही कहना चहाती है।

'रक्षक-भक्षक'[7] लघुकथा इसी कथ्य को कहती है। महालक्ष्मी मैया का दर्शन करने के साथ ही पचासेक भूखों को भोजन भी कराने की मां की इच्छा तीखे, कटु यथार्थ की आंच में झुलस जाती है। भिखारियों का हुजूम खाने का पूड़ा प्राप्त करने के लिए टूटा पड़ रहा था, तो 'फटेहाल चीकट छोकरे' पर दानी-दाता का गुस्सा फूट पड़ा—''वह छोकरा आग-बबूला हो उठा—''लिपटकर उसने मम्मी के हाथ से खाने का पूड़ा झपट लिया और चीखते हुए बोला, ''तुम हीं लोग गरीब लाचार का हाथ-पांव तुड़वाता हय... उसका अंधा, लूला, लंगड़ा बनवाता हय... दादा लोगों को मालूम हय, साबुत अंग वाले को कोई भीख नहीं दता... उनपे दया नहीं करता... तुम्हारा दया पे थू...।'' घृणा से थूक कर व भीड़ को चीरते आंख से ओझल हो गया।'' क्योंकि वह जानता है कि अमीरों की दया कभी उसका पेट नहीं भर पाएगी बल्कि उसको और दयनीय व निरीह बनाएगी।

'पाठ'[8] लघुकथा जनसेवकों को, गरीबों का पेट भरना उनके जीवन का पहला पाठ है, स्वच्छता, पढ़ाई लिखाई आदि इसके बाद आता है, इसका अच्छा पाठ पढ़ा देती है। सरकार गिरने का डर, स्वास्थ्य मंत्री को जनसेवकों को, गरीबों की बस्ती में जाकर स्वास्थ्य शिक्षा देने का तथा अंगोछा और साबुन की बट्टी बांटने का सद्कार्य करने का आदेश देते हैं। महीने भर बाद सच्चाई सामने आती है—''साबुन बट्टी—अऊर अंगोछा माई पंसारी की दुकान में ले जाके बेच आई।'' ''बेच आई? भला क्यों?'' जनसेवक की त्योरियां चढ़ गई। माई बोली—''सरकारों का खूब मजाक करते हैं—नहा-धोके पेट थोड़ा भरने वाला है।''

''मतलब?''

''माइ कहत रही, बट्टी और अंगोछे के दाम से दू रोज का पिसान आएगा तू नहाएगा की रोटी खाएगा?'' नहाना या रोटी खाना, ज्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है और लोक कल्याणकारी सरकार, किसको महत्त्व देती है—नहा धोकर साफ सुथरे होकर भूख से लड़ने के लिए तैयार कर रही है। गरीबों के प्रति सही/गलत की नीति उनके लिए 'दोहरे मानदंड' को निर्धारित करती है। एक तरफ पानी की किल्लत झेल रही कामवाली को अपने बाथरूम में कपड़े धोने पर पाबंदी है क्योंकि—''बाल बच्चों वाला घर, छूत-पांत नहीं लग सकती?''[9] दूसरी तरफ उससे अपने घर का सारा काम भी कराएगी। काम वालों के प्रति झूठी सहानुभूति दिखाकर अपनत्व जताना लेकिन काम लेने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते हैं—मालिक।

'नसीहत'[10] गरीब बच्चे के प्रति झूठी सहानुभूति दिखाने वालों के ऊपर कटाक्ष करती है। काम कोई देता नहीं—''भीख दो न मेमसाहब भीख! दस पैसा... पांच पैसा... सीख क्यों देता है? जब तुम खुदीच हमारा पर विश्वास नई कर सकता... नई मांगता? रखो अपना पैसा...।[14] सच बोलकर काम करने के इच्छुक बच्चे को काम न देकर भीख देकर उच्च वर्ग भिखमंगई को बढ़ावा दे रहा है। इसी तरह—''विकासशील देश को हमेशा गरीब देखना चाहते हैं विदेशी।

'भूखे-नंगे'[11] लघुकथा इसी उपनिवेशवादी मानसिकता की अभिव्यक्ति है। गरीबी की हृदयविदारक तस्वीरें देखकर ही, संस्था के क्रियाकलाप का मुआइना करने के बाद तब कहीं जाकर अनुदान का चेक हाथ लगता है।'' 'कर्म' नाम की संस्था बनाकर घर के निचले हिस्से में 'कर्म' की बड़ी सी तख्ती लटकवाई—विदेशों से करोड़ों रुपए आसानी से हाथ नहीं आते।'' इन करोड़ों रुपए को गरीबों के ऊपर खर्च करना है अतः समाज में गरीबी को बरकरार रखना है, तभी तो 'समाज सेविका' बनने का सपना पूरा होगा। इसलिए परोपकार करने के लिए 'भूखे-नंगे' का होना आवश्यक है—समाज में। समाज सेवा के नाम पर करोड़ों का अनुदान डकारने वालों के ऊपर अच्छा व्यंग्य है।

अधिकारियों द्वारा एक दूसरे को उपकृत करने की विडंबना को 'सेवा'[12] लघुकथा में कहा गया है। निकट संबंधियों की आफत मुसीबत में आर्थिक मदद करने से इनकार कर दिया जाता है लेकिन अधिकारी द्वारा एक-दूसरे को उपकृत करने की परंपरा का निर्वहन करते हुए मंत्री जी की शादी की सालगिरह पर उनकी पत्नी की पसंद के दो विदेशी पैमेरियनो कुत्ते को भेंट करने के लिए 'मामूली-पद' के ऊपर दबाव डाला जा रहा है क्योंकि उसकी आंखों के मोतियाबिंद का ऑपरेशन अधिकारी के एहसान का नतीजा है, इसलिए उस अहसान को चुकता करना है—और उसके लिए 'पत्नी के हाथों की चूड़ियां भला कब काम आएंगी, जिनको उन्होंने आंखों के ऑपरेशन के बावजूद छूने की हिम्मत नहीं की थी।'' मामूली पद को मोतियाबिंद के ऑपरेशन की कीमत मंत्री जी की पत्नी के कुत्ते पालने का शौक पूरा कर अदा करनी पड़ रही है—क्या विडंबना है।

'राक्षस'[13] लघुकथा भी दोहरे मानदंड को व्यक्त करती है। घर आए बॉस की खातिरदारी छोटे बच्चे से 'ओल्ड मांक रम' मंगाकर की जा रही है जबकि बड़े बेटे के शराब पीकर आने पर वही पिता गुस्से में लाल पीले होकर कहते हैं—''शराब पीकर सारी पुश्तें लील रहा है।... क्या सीखें तेरे लच्छनों से ये छोटे भाई-बहन?... निकल घर से... इसी दम,

राक्षस कहीं का साहब के लिए 'रम' मंगाने पर छोटे बेटे द्वारा—''क्या साहब राक्षस हैं।'' कहे जाने पर तड़ाक से चांटा पड़ने के साथ ही कहा जाता है—''अरे, वे हमारे बॉस है, बॉस! हमारे अन्नदाता... बॉसरूपी अन्नदाता का हर काम जायज है। संग्रह के नाम पर लिखी गई लघुकथा 'बयान'[14] सांप्रदायिक दंगों के दौरान हुई अमानवीय हिंसा, लूटपाट के साथ ही वर्दीधारियों की बहू-बेटियों की इज्जत से खेलने की हैवानियत को सामने लाती है— ''तुम्हारी बेटी आखिर कहां होगी?''

''आपके घर में दरोगा साहब!''

''तेरा दिमाग तो नहीं चल गया औरत?'''

औरत गरजी, ''क्यों, आपके घर में बेटी नहीं हे?''

''मेरे घर में मेरी बेटी है...।''

''न वो मेरी बेटी है... मेरी बेटी की चलती फिरती लाश। घर जाइए दरोगा साहब और उस बच्ची को गौर से देखिए मेरी बेटी बरामद हो जाएगी...'' यह है रक्षक की भूमिका निभाने वालों का असली चेहरा।

आज के व्यापारिक परिदृश्य में नर्सिंग होम बना लेना काफी नहीं था, उसको चलाना और उसका चल जाना उससे भी अधिक जरूरी था। ''अब उद्‌घाटन और नामकरण भी नर्सिंग होम को चलाने के हथकंडे हो गए हैं—उद्‌घाटन के बहाने हमें प्रचार की जरूरत है।''[15]

और ''नाम ऐसा हो जो अपने आप में विश्वास और आस्था का प्रतीक हो जाए। सभी जाति और धर्मावलम्बियों के लिए।'' अतः 'तिरुपति बालाजी' नाम सर्वस्वीकृत हुआ क्योंकि ''भला कौन सी जाति, धर्म, व्यवसाय के लोग बालाजी के दर्शनों को न जाते हों और अपनी कामना पूर्ति के लिए मूड़ न मुड़ाते हों?''तिरुपति बालाजी में सभी धर्म, जाति, व्यवसाय वाले आकर अपना मूड़ मुड़ाकर चिकित्सकों की जेब भारी करेंगे।

उच्च पद, पैसे की महत्ता अधिक रिश्तों की मान्यता कम हो गई है तभी तो भानजे द्वार प्रेम से लाए गए संतरों से भरे झाबे को संभाल कर रखने की अपेक्षा—नौकर को हिदायत दी जाती है कि—''पहले जरा कालीन तो साफ कर ले......... झाबे में से फूल निकलकर गिर गया है.......'' और घर आए भानजे की सामान उठाने में मदद करने से पहले कालीन की सफाई शुरू हो जाती है—'प्राथमिकता'[16] लघुकथा आज की इसी प्राथमिकता को बताती है।

आज के जमाने में 'पैसा' इतना महत्त्वपूर्ण है कि मरणासन्न पड़ी मां रामायण, सुंदरकांड, गंगाजल के लिए कह रही है, वह कोई नहीं सुन रहा है, अपितु—ठीक-ठीक सोच के बताओ अम्मा कहां गाड़ रखा है, चांदी से भरा कलसा अऊर जेवरों वाला लोटा? गंगाजल की रट लगाते—''उनके प्राण छूट गए। कोई नहीं आया पास। बेटा, बहू, पोता दुधहड़ी के नीचे की जमीन में फावड़ा चला रहे थे.........''जीते जी नहीं लेकिन उनके मरने के बाद—''निर्जीव देह के सिरहाने रामायण और गंगाजल से भर लोट रख आर्तनाद करने लगी बहू''

रोते-रोते बहू ने बेटे को पुनः चेतावनी दी!

''चाहे कोई महादेवन पर हाथ रख वाले.......महतारी-बाप की कसम धरावे— खबरदार जो मुंह खोला..........'' 'बाप बड़ा न भइया' सबसे बड़ा 'रूपैया' आज इंसान के लिए हो गया— कराहती बिसूरती मां से गहना गोठिया निकलवाने के चक्कर में उनकी 'मिट्‌टी' की तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहा है। 'मिट्‌टी'[17] लघुकथा में संवेदनशीलता की हद है। हर तरफ पैसे का गुणगान है—''दान-दहेज भरपूर मिला होगा, बहिनी?.........दिखलाओगी नहीं?'' इसके विपरीत जब बिना दान-दहेज के लड़की की योग्यता के आधार पर लड़के का विवाह कर लिया जाए तो समाज यह बात पचा नहीं पाता इसी सोच को 'ऐब'[18] लघुकथा में कहा गया है—''अकेले लड़िका.......जिस पर परपेफसर (प्रोफेसर) बगैर दान दहेज के ब्याह लाई मोरी बबुआइन?''

''छोड़ो—ऐसी हरिश्चंदर की माई नहीं बबुआइन! अब तक सुधिरवा ब्याह के खातिर राजी कहां होत रहे? छत्तीस का तो होई रहा.........जरूर लड़िका का कुछ खोट होएगी........तभी तो खाली लड़िकी— लेइके.........।'' पढ़ी लिखी लड़की की कोई महत्ता नहीं है। प्रोफेसर लड़का बिना दान दहेज के तभी शादी कर सकता है जब उसमें कोई ऐब हो— 'ऐब' लघुकथा समाज की इसी सड़ी-गली मानसिकता को उजागर करती है।

'शहर'[19] लघुकथा शहर के कपट, धोखा, चालबाजी, दूसरों को लूटने की कला को शहरी भिखारी के माध्यम से उजागर करती है—''हमारे यहां काले धंधे वालों का दिल भगवान में खूब रमता है। भीख में काला पैसा बरसता है।'' पेट की ज्वाला में जलते गांव के भिखारी ललचा गए इन बातों से लेकिन ''पल्ले पैसा न कौड़ी, किराया कहां से लाएंगे?''

जोड़ी गांठी जमा पूंजी कुछ तो होगी! सब अपनी मेहनत की कमाई—बोरे के नीचे से निकाल कर हिचकते—लजाते लंगड़े शहर को थमा देती है। इन पैसों में अपनी तरफ से पैसे लगाकर सबके लिए टिकट लाकर शाम को मंदिर की सीढ़ियों के नीचे मिलकर दिल्ली ले जाने का वादा पक्का हो गया। सबकी जमा-पूंजी लेकर ''मंदिर के मंडप के नीचे खड़े-खड़े सांझ अंधेरे में डूब गई। अंधेरा खर्राटे भरने लगा। शहर उन्हें लेने न पलटा।'' शहर-गांव के भीख मांगने वालों को भी नहीं छोड़ता। भीख मांगने वालों की मानसिकता पर 'बोहनी'[20] लघुकथा भी लिखी गई है। महानगरीय व्यस्त जीवन में भी पुल की सीढ़ियों पर बैठे भिखारी की रिरियाहट उसे कुछ देने के लिए विवश कर देती। पर एक दिन फुटकर पैसे न होने , दूसरे दिन लापरवाही, तीसरे दिन ट्रेन छूटने के अंदेशे के कारण उसे तीन दिन से कुछ नहीं मिला। चौथे दिन भिखारी—''लगातार चीखे जा रहा है,'' मां, मेरी मां......, मैं पलटी

और बिकरती हुई चिल्लाई ''क्यों चिल्ला रहे हो? तुम्हारी देनदार हूं क्या?'' इसके आगे उसने जो कहा—''मां तुम देता तो सब देता....तुम नहीं देता तो कोई पन नहीं भीख देता......तुम्हारे हाथ से हररोज बोहनी होता न, तो शाम तलक पेट भरने भर को मिल जाता.......तीन दिन से भुक्का है मेरी मां।''

भीख में भी बोहनी! गुस्सा अचानक भरभरा उठा। दी गई भीख के अच्छी बोहनी का सम्मान मिले तो फिर भीख देने में क्या हर्ज है। हाथ भीख देने को मचल गया। भीख देने और लेने वाला दोनों के संतुष्टि का मनोविज्ञान है 'बोहनी' लघुकथा। 'व्यावहारिकता'[21] लघुकथा महानगरीय जीवन में निम्न वर्ग की मानसिकता को उजागर करती है कि अपने प्रति दयालु व्यक्ति को नोच-खसोट लेने की प्रवृत्ति। अपने को दीन हीन दिखाकर मालिक से अधिक से अधिक निकलवा लिया जाए, सहानुभूति मिल जाए और इस प्राप्ति के तरीकों में एक तरह की चालाकी है। अपने मालिक को बुद्धू बनाकर उससे ज्यादा से ज्यादा लो लेकिन उसका काम कम से कम करो। इन सब लेन-देन, स्वार्थ, झूठ, बेईमानी, अपने-पराए के बीच भी मानवता के रिश्तों को कहती और उसे निभाती 'रिश्ता'[22] लघुकथा इनसान से यह कहला देती है—''डाक्टर साहब, अस्पताल से आज अगर मैं जिंदा लौट रहा हूं तो आपकी दवाइयों और इंजेक्शनों के बल पर नहीं मारथा मम्मी के प्यार के बूते पर।'' मारथा मां किसी एक की नहीं सबकी मां है, दूसरे मरीज की भी—''मेरे बच्चे...... मैं तुम्हारे पास हूं....... धैर्य रखो...... उसकी मारथा मम्मी अत्यंत ममत्व पगे स्वर में उस मरीज का सीना सहला रही थी।''

यहीं पर आकर चित्राजी का लघुकथा लेखन सार्थक हो जाता है क्योंकि इनमें जीवन का स्पंदन और इनसान का भव्य और उदात्त एहसास जाग जाता है—इनसानियत। चित्राजी ने लघुकथा को सबसे पहले आकाशवाणी के माध्यम से पूरे देश में घर-घर तक पहुंचाया। विविध भारती के 'चित्रशाला कार्यक्रम में' देश के अनेक हिस्सों में जब उनकी 'ऐब', 'सबक', 'सहयात्री', 'भूख' आदि लघुकथाएं प्रसारित हुई तो कई श्रोताओं ने जाना कि लघुकथाएं क्या है। रावतभाटा (राजस्थान) की 'पलाश' रंगकर्मी संस्था ने 'नसीहत' लघुकथा के प्रहारात्मक कथ्य के कारण ही संभवतः लघुकथाओं की नाट्य प्रस्तुति के लिए इसे चुना और इसकी 'रपट' विवेचना भी की गई—''यह दो वर्गों की विषम—आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का अंतर दर्शाती हुई संपन्न वर्ग के अहम पर चोट करती है।''[23] एन.सी.ई.आर.टी. की ग्यारहवीं कक्षा की हिंदी की पाठ्यपुस्तक विविधा में 'रिश्ता' लघुकथा को स्थान दिया गया है। अवध नारायण मुदगल ने चित्राजी की अधिसंख्यक लघुकथाओं के लिए सही लिखा है—''इनकी लघुकथाएं सहज और सपाट—होते हुए भी एक नए भाव बोध से जुड़ी है। यह भावबोध बेबसी की संवेदना का भी है तथा मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की संस्कृतियों, परंपराओं मजबूरियों और जिंदगी की मौजूदा हकीकतों का टकराव भी है।'' इन टकराव से निकली आवाजें इनसान की संवेदनशीलता को जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और लघुकथा क्षेत्र में चित्राजी के महत्त्वपूर्ण योगदान को उजागर करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. बयान—चित्रा मुद्गल, प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ दिल्ली—03 दूसरा संस्करण—2005 पृष्ठ संख्या—7
2. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—17
3. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—22
4. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—32
5. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—37
6. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—39
7. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—52
8. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—63
9. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—67
10. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—74
11. बयान : चित्रा मुद्गल, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली—3 दूसरा संस्करण—2005, पृष्ठ संख्या—179
12. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—147
13. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—29
14. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—19
15. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—69
16. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—72
17. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—34
18. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—27
19. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—44
20. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—55
21. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—57
22. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—42
23. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या—95

ए–58, सेक्टर–52, प्रथम तल, गौतमबुद्ध नगर, नोएडा–201301, उत्तर प्रदेश

डॉ. प्रतिभा राय की उड़िया कहानी का हिंदी भाषांतर

छाया चित्र

हिंदी भाषांतर : सुरभि बेहेरा

युवा लेखिका सुरभि बेहेरा के मौलिक और अनूदित छह कथा-संकलन प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

तस्वीर कभी बोलती नहीं। चाहे जितनी भी जीवंत प्रतीत हो, जीवित हो या मृत हर दृष्टि से तस्वीर सदैव निर्जीव ही है। जीवित या मृत व्यक्ति के छाया चित्र में कोई अंतर नहीं होता। दोनों ही स्थिति में छाया चित्र हमेशा मूक, अविचल और स्थिर है। तस्वीर केवल सुख को ही नहीं बल्कि दुख के क्षणों को भी स्मरण करा देती है। यदि छाया चित्र बोलती है, सांत्वना देती है, तो वह केवल तस्वीर देखने वाले व्यक्ति की अपनी खुद की सोच है।

एक निर्जीव छाया चित्र क्या कभी नमिता की मदद कर सकती है? वह भी सुजय के जाने के चालीस वर्ष बाद! सुजय के संक्षिप्त सान्निध्य की स्मृति नमिता के अंदर निश्चिल रूप से अम्लान होगी, क्योंकि वही उसका अंतरंग सान्निध्य था। लेकिन, आज नमिता को क्या उसका चेहरा स्पष्ट रूप से याद होगा? क्योंकि इतने दिनों तक सुजय को देखने के बाद भी आज उसका चेहरा अमृता को स्पष्ट रूप से याद नहीं आ रहा है। वह अमृता से दो साल सीनियर कक्षा में पढ़ाई कर रहा था। दशमी श्रेणी में पढ़ते वक्त उसके पिताजी ने शहर के स्कूल से नाम कटाकर गांव के स्कूल में उसका दाखिला दिलवा दिया था। शहरी बच्चों के गलत संगत में पड़कर सुजय ने सिगरेट पीना शुरू कर दिया था इसलिए उसे यह सजा दी गई थी। उस वक्त अमृता गांव के जिस स्कूल में पढ़ रही थी, वहां के छात्र बड़े ही कठोर अनुशासन के साथ अपनी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ चिरंतन मूल्यबोध की दृढ़ता पर चरित्र गठन करना ही उनका मूल लक्ष्य था। उस समय उनके स्कूल के प्रधान शिक्षक गांधीवादी आदर्शों को छात्रों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण उन्नति पर गुरुत्व प्रदान कर शिक्षा दान करा रहे थे। अमृता दृढ़ता के साथ कहती थी कि उसके गांव का स्कूल पूरे भारतवर्ष का एक आदर्श स्कूल था एवं उसके स्कूल के प्रत्येक शिक्षक एक आदर्श शिक्षक के रूप में जाने जाते थे। शिक्षक और छात्र के बीच स्नेह, अनुशासन और आपसी समझ का संपर्क बन गया था। उस युग में भी उनके स्कूल के शिक्षक पढ़ाई के प्रति लापरवाह छात्रों को बेंत की मार नहीं दिया करते थे। अमृता ने अपने शिक्षकों को बेंत पकड़े हुए कभी देखा ही नहीं था। बेंत न पकड़ना ही उसके स्कूल के शिक्षादान की पद्धति थी।

उस वक्त स्कूल के परिवेश में कठोर श्रृंखला के कारण कई नौकरीपेशा मां-बाप के बच्चों को शहर के स्कूल में पढ़ने का सुयोग भी मिला था। कई पैसे वाले घरों के बच्चे होस्टल में रहकर शहरी स्कूलों में पढ़ा करते थे। उस समय भी बुरी संगतों में पड़कर कई बच्चे सिगरेट पीना, सिनेमा देखना, सिनेमा के हीरो को आदर्श मानकर लड़कियों को छेड़ना तथा सड़क छाप मवालियों की हरकतें करने में ही अपनी श्रेष्ठता समझते थे। दोष उनका नहीं बल्कि सुखी और सहज जीवन जीने के कारण उनकी उम्र ही उनकी बर्बादी का कारण थी। मां-बाप को अपने बच्चों के अनैतिक क्रियाओं से परेशान होकर तथा अपने बिगड़े हुए बच्चों को सुधारने के लिए शहर से लाकर गांव के स्कूलों में दाखिला दे दिया करते थे। यह बिल्कुल सच है कि इस स्कूल के परिवेश और शिक्षकों के स्नेहपूर्ण व्यवहार में रहकर शहर के बिगड़े हुए बच्चों में भी सुधार आ जाता था। सुजय के पिताजी ने भी इसी उम्मीद के साथ शहर के स्कूल से हटाकर अमृता के स्कूल में उसका दाखिला करवा दिया था।

सुजय के स्कूल में दाखिला लेते ही वह सभी की दृष्टि के आकर्षण का केंद्र बन गया था। क्योंकि वह एकमात्र ऐसा छात्र था जो दूसरे बच्चों की भांति तीन मील दूर गांव से खेतों के रास्ते या केनाल के बांध को पार कर ऊंचे-नीचे कच्चे रास्तों को पैदल तय कर नहीं आता था, बल्कि एक नई रोले साईकिल में बैठकर आता था। इसके अलावा दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाला केवल वही एकमात्र छात्र था जो अपनी कक्षा में फुल पैंट और फुल शर्ट के साथ जूते-मोजे पहन कर स्कूल आता था। इससे पहले उस स्कूल के छात्रों ने किसी भी छात्र को स्कूल में फुल पैंट पहने हुए नहीं देखा था। सुजय का लंबा कद, स्वस्थ गठा हुआ शरीर तथा सुंदर चेहरे ने सभी का मन मोह लिया था। धनी परिवार का इकलौता दुलारा बेटा तथा खाने के शौकीन होने के कारण वह अपनी उम्र से ज्यादा बड़ा दिखने लगा था। अपनी श्रेणी में वही सबसे अच्छी पढ़ाई करता था। बारहवीं कक्षा के बाद सुजय वापस शहर लौट गया था। वहां जाने के बाद उसने कहां पढ़ा, क्या पढ़ाई की, पढ़ाई समाप्त होने के बाद उसने कहां नौकरी की आदि किसी भी बात की जानकारी अमृता के पास नहीं थी। हां, इसके अलावा अमृता के साथ सुजय की मुलाकात एक-दो बार विश्वविद्यालय के ऑफिस में हुई थी। परंतु कुशल मंगल के अतिरिक्त किसी भी व्यक्तिगत प्रसंग पर उनकी चर्चा नहीं हुई थी। दरअसल, सुजय के साथ अमृता की कोई खास दोस्ती नहीं थी। अमृता ने अपने

दूसरे सहपाठियों से सुना था कि सुजय किसी कंपनी में नौकरी कर रहा था। अपने मां-बाप के पसंद की लड़की से उसकी शादी भी हो गई थी। लेकिन उसके दांपत्य जीवन में बहुत जल्दी ही तकरार शुरू होने लगी थी।

सुजय एक अच्छे कवि होने के साथ-साथ बहुत अच्छा चित्रकार भी था। लेकिन खुद की प्रशंसा करना उसे कतई पसंद नहीं था। म्यूजिक में भी उसकी दिलचस्पी थी तथा फुटबाल खेलने में भी माहिर था। इतने प्रतिभाशाली होने के बावजूद वह किसी एक कला में साधनानिष्ठ होकर नहीं रह पाता था। दरअसल, उसकी सोच ही वैसी नहीं थी। शायद किसी भी कार्य में पारदर्शी नहीं होना ही उसकी बीमारी का कारण बन गया था या फिर कम उम्र में एकतरफा प्रेम की विफलता ही उसकी उदासी का कारण बन गई थी। उसके मन में संसार के प्रति वितृष्णा के कारण वह किसी भी क्षेत्र में अधिक दिनों तक नहीं रह पाता था। एक रास्ते से दूसरे रास्ते को क्रमागत तोड़ने की चंचलता के कारण उसका अंतर्मन अस्थिर रहते हुए भी वह बिल्कुल स्थिर, उदास और अचंचल हो गया था। अपने साथ यही विरोधाभास ही उसे एक साथ दो तरफा जीवन यापन करने के लिए मजबूर कर दिया था। अमृता तो यह भी नहीं जानती थी कि सुजय की पत्नी अपने एक साल के बेटे को लेकर क्यों उसके पिताजी के घर चली गई थी। सुजय के व्यक्तिगत जीवन के संबंध में इतनी जानकारी रखने की उसने कभी जरूरत ही नहीं समझी। लेकिन उसने कहीं से सुना था कि अमृता के गांव के जमींदार मदन मोहन चौधरी की छोटी लड़की मीना के नाम प्रेम पत्र लिखकर सुजय की बहुत बदनामी हुई थी। यही कारण था कि दोनों परिवार के संबंधों में दरारें आ गई थीं। जमींदार परिवार ने लोक-लाज के डर से जल्दबाजी में अपनी बेटी का विवाह भी कर दिया था। उसके बाद से ही सुजय का मन टूट गया और वह नैराश्य जीवन व्यतीत करने लगा था। पेंटिंग, खेल, कविता लिखना आदि हर कला से उसका मन ऊब गया था। वह लड़की सुजय की जिंदगी से उसकी हर अच्छाई को लूट कर खुद सुखी सुखी संसार में रम गई थी। मीना के सुखी न होने का कोई कारण भी तो नहीं था।

अपने मां-बाप और अपनी पत्नी के प्रति दायित्वहीनता को देखकर सुजय के प्रति अमृता का मन विमुख रहने लगा था। यही कारण था कि कई वर्षों से सुजय के साथ अमृता की मुलाकात नहीं हुई थी। इसीलिए इतने दिनों बाद अचानक नमिता की चिट्ठी पढ़कर उसके जेहन में केवल नमिता ही नहीं बल्कि सुजय की स्मृति भी ताजी हो गई थी।

अमृता को एक प्राइवेट कॉलेज में नमिता के साथ सहकर्मी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे दोनों तीन साल तक एक ही क्वार्टर में साथ रहा करते थे। उस समय उन दोनों में से किसी की भी शादी नहीं हुई थी।

नमिता जेना अत्यंत सरल, स्नेही और शांत स्वभाव की लड़की थी। दरअसल वह ही दोनों के लिए खाना बनाती थी। अमृता को तो चाय बनानी भी नहीं आती थी। रसोई में उसकी दिलचस्पी कभी भी नहीं थी। यदि नमिता के साथ एक ही क्वार्टर में रहने का सौभाग्य नहीं मिला होता तो शायद वह होटल का खाना खाती रहती। नमिता उसे बारंबार समझाती कि जीवन में रसोई बनाना भी बहुत जरूरी है। इसलिए खाना बनाने के लिए दिन तय कर दिया गया था। जिस दिन अमृता खाना बनाती, उस दिन नमिता तो किसी तरह अचार, पापड़ की मदद से खाना खा लेती पर, अमृता खुद अपने हाथों का बना खाना खा नहीं पाती। जो भी हो, इसी प्रक्रिया के कारण अमृता ने कुछ-कुछ खाना बनाना सीख लिया था। नमिता कभी-कभी मजाक में उससे कहा भी करती—अमि, मुझे याद रखने के लिए तूने मुझे कुछ नहीं सिखाया है, पर ध्यान देना, तुम जब कभी रसोईघर में खाना बनाओगी, विशेष रूप से जब अपने पति के लिए चाय बनाओगी तो मुझे निश्चित रूप से याद करोगी। सचमुच, शादी के बाद जब भी खाना बनाती नमिता की यह बातें हमेशा ही याद आ जाती। चाय बनाते वक्त नमिता के स्नेह रूपी शब्द चाय में स्पष्ट रूप से दिख जाते। चाय में अच्छी खुशबू और रंग लाने का कौशल नमिता ने उसे अच्छी तरह सिखा दिया था। तबादले के कारण तथा अमृता की शादी के बाद दोनों सहेलियों के बीच आपसी संपर्क बिल्कुल बंद-सा हो गया था। लेकिन अमृता केवल इतना जानती थी कि किसी कारणवश नमिता की शादी नहीं हो पाई थी। नमिता के लिए रूपगुण संपन्न, उच्च शिक्षित तथा अच्छे वेतन पाने वाला वर मिलना इतना आसान नहीं था। उस वक्त नमिता शहर के जाने-माने क्रिश्चियन परिवार में रह रही थी। एक बार नमिता ने अमृता से कहा भी था, ''मेरी शादी हिंदू परिवार में प्रस्ताव देकर हो पाना कभी भी संभव नहीं हो सकता। वरना, किसी हिंदू युवक के साथ शादी करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। चाहे क्रिश्चियन धर्म हो या हिंदू धर्म एक-दूसरे के प्रति प्रेम होना ही सबसे जरूरी है। इसलिए मेरे लिए दोनों ही धर्म एक समान हैं। हां, अगर कभी किसी हिंदू लड़के से प्यार हो गया तो शादी कर सकती हूं, वरना किसी और से तो बिल्कुल भी नहीं। जिंदगी जीने के लिए शादी करना जरूरी नहीं है। सभी शादियां क्या सुखमय होती हैं? किसी भी दांपत्य जीवन में एक-दूसरे के प्रति अगर सच्चाई, विश्वास और प्रेम न रहे तो केवल जनसंख्या वृद्धि करना ही मूल उद्देश्य रह जाता है। प्रेमशून्य दांपत्य जीवन से मुझे डर लगता है। मैंने अपने दोस्तों के जीवन में इसे अच्छी तरह देखा है।''

उसकी बातें सुनकर उस दिन अमृता ने ठट्ठा करते हुए कहा भी था, ''तू प्रस्ताव देकर अपने ही धर्म के किसी योग्य लड़के से भी शादी कर सकती है, लेकिन प्रेम विवाह करना तुझसे नहीं हो सकता। इस बात को मैं लिखकर दे सकती हूं। मैंने अच्छी तरह परख कर देखा कि किस तरह प्रेम शब्द के उच्चारण से ही तेरे चेहरे का रंग फीका पड़ जाता है। ऐसे में तू भला प्रेम कैसे कर सकती है? हां, यह जरूर हो सकता है कि कोई तेरे प्यार में फंस जाए। लेकिन, तू तो इतनी भोली है कि... जरा संभलकर रहा कर समझी।''

''किसी लड़की को अपने प्रेमजाल में फंसाने वाले प्रेमी के साथ विवाह के बंधन में बंधने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस मामले में मैं इतनी भावुक लड़की नहीं हूं। मेरे लिए जीवन कविता नहीं बल्कि जटिल गणित है। मैं क्या नहीं जानती कि इस वस्तुवादी दुनिया में भावप्रवणता का मूल्य क्या है? अब मैं कोई छोटी बच्ची तो नहीं हूं जो...'' नमिता प्रकृति की ढाल में बहने वाली भावुक लड़की नहीं थी। आचार-विचार से वह पूरी तरह हिसाबी थी। नमिता की शादी की उम्र भी पार हो चुकी थी। अमृता प्राइवेट कॉलेज छोड़कर विश्वविद्यालय में अध्यापिका की नौकरी करने दूसरे शहर चली गई थी। उस वक्त तक नमिता तीस साल की हो गई थी। करीब दो-तीन वर्षों तक दोनों के बीच आपसी संपर्क बना हुआ था। इन दो-तीन वर्षों में भी नमिता का विवाह नहीं हुआ था। इस बीच अमृता घर-परिवार, बच्चे एवं नौकरी के दायित्व के बोझ तले दबकर अपने निजी रिश्तेदारों से भी मेल-मिलाप नहीं कर पा रही थी। यही कारण है कि बहुत दिनों से नमिता के साथ उसकी मुलाकात नहीं हो पाई थी।

लगभग बीस साल बाद एक दिन अचानक शाम के समय नमिता अपनी मामी के साथ अमृता के घर आई। इतने दिनों बाद भी नमिता को पहचानने में उसे कोई मुश्किल नहीं हुई। अमृता के चेहरे में भी कोई खास बदलाव नहीं आया था। दोनों एक-दूसरे के गले लगकर भावुक हो गईं। नमिता के माथे में बड़ा-सा सिंदूर का टीका तथा दोनों कलाई में सोने के कंगन और नीली कांच की चूड़ियां भरी हुई थीं। नमिता ने गले और कान में सोने के आभूषण भी पहने हुए थे। इतने दिनों में नमिता के पहनावे में यही बदलाव आया था। उस वक्त वह गहने और आभूषणों से कोसों दूर रहती थी। केवल दोनों हाथों में एक-एक सोने की चूड़ी ही पहना करती थी। परंतु, अब नमिता एक बड़े घर की पटरानी की तरह दिख रही थी। अमृता यही सोचकर खुश हो गई कि शायद नमिता को उसका मनपसंद साथी मिल गया है।

अमृता ने उत्साहित होकर पूछा, ''तुमने शादी कब की? कुछ बताया भी नहीं। तुम तो जानती ही हो कि मेरी यूनिवर्सिटी का पता बदलने वाला नहीं है।''

''मैंने सोचा नहीं था कि कभी मेरी शादी हो पाएगी। लेकिन अचानक ही शादी हो गई।'' नमिता ने सहमे हुए स्वर में कहा।

''किसके साथ, क्या पहली ही नजर में तुम्हारे प्रेम में पागल हो गया।'' अमृता पूरी तरह मजाक के मूड में थी।

''नहीं, उसके प्यार के झांसे में मैं आ गई। इतनी जल्दबाजी में सब कुछ हो गया कि तुम्हें बताने का सुयोग भी नहीं मिल पाया।''

''तुम तो किसी के झांसे में आने वाली लड़की नहीं थी? उसे सामने देखकर क्या अपनी गणित की परिभाषा भी भूल गई?''

''नहीं, अमृता, जीवन को कविता की ताल में बहाकर भी गणित में मैं शुरू से ही कमजोर थी। मैं एक मंदबुद्धि लड़की हूं। इतनी सतर्कता के बावजूद भी कभी-कभी इनसान के कदम डगमगा ही जाते हैं।'' नमिता अचानक भावुक हो गई।

उन्हें बैठक के सोफे पर बिठाकर अमृता ने उनसे पूछा—''इतने दिनों बाद इतनी अच्छी खबर अकेली ही लेकर आ गई? अपने पति को साथ लेकर क्यों नहीं आई? मुझे बहुत इच्छा हो रही है, आखिर वह भाग्यवान है कौन? उन्हें कहां छिपाकर आई हो?'' अमृता ने एक साथ कई सवालों की बौछार लगा दी।

अमृता को आश्चर्यचकित कर नमिता ने उससे पूछा, ''अमृता आज तुझसे यही बात तो पूछने आई हूं। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि तू कभी झूठ नहीं बोलेगी। मेरे पति कहां हैं यह बात केवल तू ही बता सकती है। इसलिए इतने दिनों बाद अपनी मामी के साथ तेरे पास आई हूं।'' इतना कहते ही नमिता की आंखें छलछला आईं।

''क्या अजीब बात कर रही है? तेरे पति कहां है यह भला कैसे बता पाऊंगी? मैं तो उन्हें जानती भी नहीं?'' अमृता आश्चर्यचकित होने लगी थी। उस वक्त अमृता के स्मृतिपटल पर बिजली कौंध गई, जब नमिता ने कहा, ''सुजय हमेशा तेरी ही बातें किया करते थे। तुम दोनों एक ही स्कूल में पढ़ा करते थे। सुजय, तेरे पिताजी के प्रिय छात्र थे। तेरे गांव के पास ही उनका गांव भी था। रिश्तेदारी में शायद वे तेरे भाई लगते थे। तेरे बारे में इतनी बातें किया करते कि मुझे उन पर तनिक भी संदेह नहीं हुआ। शादी के बाद हम दोनों ने तेरे पास आने का निश्चय किया था।''

''तेरी शादी को कितने वर्ष हो गए?'' अमृता ने जानना चाहा।

''आज से उन्नीस वर्ष पहले—मेरा बेटा प्लस टू साइंस के द्वितीय वर्ष का छात्र है। अपने पिता की तरह अत्यंत विलक्षण और होनहार छात्र है। बिल्कुल अपने पापा पर गया है उन्हीं की तरह सुंदर एवं स्वस्थ भी है। अब तो वह अपने पापा से भी लंबा हो गया है। सुप्रिय की परीक्षा चल रही है इसलिए उसे साथ नहीं ला पाई।'' अमृता के पास अपने पति की खोज में आई हुई नमिता अपने बेटे की प्रशंसा करते हुए खुशी से फूली नहीं समा रही थी।

हे भगवान! नमिता को क्या जवाब देगी? उसके पति का पता तो भगवान ही जानते होंगे। बचपन से ही अपने मां-बाप को खोकर मामा-मामी के आश्रय में जीवन काटने वाली नमिता के दुख का अंत नहीं था जो आज जिंदगी ने उसे इस मुकाम पर भी ला दिया है? ''सुजय के साथ तेरी आखिरी मुलाकात कब हुई थी?'' अमृता ने अपने मन में आए संदेह को मिटाने के उद्देश्य से पूछा। मन ही मन उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि नमिता के पति के रूप में कोई और ही सुजय हो।

सुप्रिय के जन्म के समय वे हमारे साथ नहीं रहते थे। नमिता ने सिर झुकाकर जवाब दिया। सुप्रिय जब दस महीने का हो गया तब उन्होंने पहली बार उसे देखा था। उन्होंने उसे अपनी गोद में खिलाया है। उसे गोद में लेकर बाजार से शर्ट-पैंट, खिलौने भी खरीद कर दिए हैं। उसी समय केवल आठ दिन ही वे सुप्रिय के पास थे। उसके बाद ऑफिस के काम से कलकत्ता चले गए और आज तक लौटकर वापस नहीं आए...।''

''आश्चर्य! उसके बाद तुझे उसकी कोई खबर नहीं मिली?'' अमृता ने संदेह भरे स्वर में पूछा। ''भला मुझे उनके बारे में कौन बताता? वे तो खुद ही आते और फिर चले भी जाते थे। कुछ दिन रहने के बाद छह महीने बाद दोबारा आते। इसके अतिरिक्त बीच के महीनों में उनकी कोई खोज-खबर नहीं मिलती। मैं तो उनके गांव का ठौर-ठिकाना भी नहीं जानती थी। उन्होंने पहले ही मुझसे कह दिया था कि उनके गांव वाले हिंदू और क्रिश्चियन विवाह को कभी भी मान्यता नहीं देंगे। हमारे बच्चे के जन्म के बाद सब कुछ समाधान हो जाएगा। उसी समय हमारे विवाह के संबंध में घरवालों को बता दूंगा। पहली बार अपने बेटे को गोद में लेते ही उनकी खुशी मानो दोगुनी हो गई थी। इससे पहले मैंने उन्हें इतना खुश होते हुए कभी नहीं देखा था। हर वक्त चिंतित, अन्यमनस्क और बाहरी दुनिया के प्रति बिल्कुल निरुत्साहित रहा करते थे। जाने से पहले उन्होंने मुझसे कहा भी था कि जल्दी ही अपने घर में सारी सच्चाई बताकर तुम्हें आकर ले जाऊंगा। उसके बाद से मैं केवल उनके आने का इंतजार ही कर रही हूं। पूरे अठारह वर्ष हो गए पर आज तक उनके आने की कोई खबर नहीं आई। नमिता ने इतने सहज तरीके से सब कुछ कह दिया मानो अठारह वर्ष उसके लिए मात्र आठ दिन के बराबर हों। बेचारी नमिता, केवल कुछ दिन के दांपत्य जीवन को अपनी पूंजी बनाकर कितनी तकलीफ और विरह की व्यथा के साथ अपने बेटे को पढ़ा-लिखा पाई है।''

''सुजय के बारे में तूने किसी से कुछ नहीं पूछा? अठारह वर्ष तक कैसे चुपचाप उसका इंतजार करती रही? सचमुच तू बिल्कुल अद्‌भुत ढांचे में बनी है।'' अमृता के स्वर में खिन्नता की झलक साफ दिखलाई पड़ रही थी।

''अच्छा, नाराज मत हो। मैं केवल तुझसे ही उनके बारे में पूछ सकती थी। क्योंकि सिर्फ तू ही मेरे ससुराल की ओर से संपर्क सेतु बन सकती थी। उनकी जुबान में हमेशा तेरा नाम, तेरे पिताजी का नाम सुनकर ही मैं उनके साथ विवाह करने के लिए राजी हो पाई थी। उन्होंने मुझसे तुझे बताने के लिए भी मना कर दिया था। केवल तेरे लिए ही मैं उनकी बातों पर अविश्वास नहीं कर पाई।'' नमिता बिल्कुल सहज तरीके से कहती चली जा रही थी कि किस तरह नाटकीय शैली में सुजय के साथ उसका विवाह संपन्न हुआ था।

उस दिन नमिता के कॉलेज में वसंत उत्सव का आयोजन हो रहा था। उत्सव खत्म होने

के बाद वह घर लौटने का इंतजार कर रही थी। उसके ममेरे भाई उसे लेने के लिए भी आने वाले थे। उसके आने में विलंब होने की वजह से नमिता परेशान हुए जा रही थी। उसी समय अचानक भीड़ को चीरते हुए सुजय ने आकर उससे कहा, ''आप दीपक के आने का इंतजार कर रही हैं। वह हमारी ही कंपनी में काम करता है। वह निश्चित रूप से मुझे भी पहचानता होगा। हां, मेरी पोस्टिंग कलकत्ता में है। लेकिन, ऑफिस के काम से मैं हमेशा ही यहां आता-जाता रहता हूं। ऐसे में दीपक मुझे कैसे नहीं पहचानेगा? चलिए, आज मैं आपको घर छोड़ देता हूं।''

नमिता थोड़ी शर्मीली लड़की थी, किसी से बात करने में उसे बहुत झिझक होती थी। सभी को संदेह भरी नजरों से देखती थी, ऐसे में बिल्कुल अपरिचित, अनजान सुजय पर भला क्यों विश्वास करती? सुजय ने उसका मन जीतने के लिए कहा, ''दरअसल, आपके कॉलेज की प्रिंसिपल प्रियंबदा कानूनगो मेरी मौसी लगती हैं। आज उन्हीं से मुलाकात करने के लिए मैं कॉलेज आया था।

नमिता को उसकी बातों पर थोड़ा-बहुत विश्वास होने लगा। सूरज भी ढलने लगा था और पश्चिम के आकाश में गोधूलि का रंग भी धीरे-धीरे कम होने लगा था। नमिता के मामाजी का घर वहां से बहुत दूर था। ऐसे में इस अनजान युवक के साथ वह उतनी दूर नहीं जा सकती थी। उसी समय एक खाली रिक्शा आया और नमिता उस पर बैठ गई। उसे बैठते देख सुजय ने कहा, ''आप मेरी मौसी के कॉलेज की अध्यापिका हैं। आपको रिक्शे में अकेले कैसे जाने दूं? शाम का समय है रास्ता भी सुनसान हो गया है।'' सुजय नमिता के अनुमोदन की अपेक्षा किए बिना उसके पीछे-पीछे स्कूटर में चल पड़ा। नमिता के घर के पास आकर जब उसने उससे विदा लिया तो नमिता ने नम्रतावश उसे चाय पीने के लिए आगह किया। बस, यहीं से उनका संपर्क सूत्र बढ़ने लगा। नमिता के हाथ की बनी चाय पीने के लिए सुजय बार-बार उसके घर आने लगा और जिसके फलस्वरूप नमिता का उसके प्रति विश्वास भी बढ़ने लगा। अचानक एक दिन सुजय ने नमिता के सामने विवाह के प्रस्ताव की बात छेड़ दी। लेकिन नमिता के मामाजी को इस बात से इनकार था। उन्होंने कहा भी था, ''सुजय के माता-पिता के इजाजत के बिना विवाह करना कैसे संभव हो पाएगा?''

उस दिन सुजय ने बड़े ही रौबदार अंदाज में कहा था कि वे लोग दहेज की लालच में एक लड़की के साथ मेरी शादी करने का निश्चय भी कर लिया हैं, पर मुझे वहां शादी नहीं करनी है। मैं अपने प्रधान शिक्षक के आदर्श का पालन करता हूं। इसलिए दहेज जैसे सामाजिक कुप्रथा के बिल्कुल खिलाफ हूं। इस बात को जानते हुए भी मेरे पिताजी मुझ पर जो विवाह का दवाब डाल रहे हैं वह उनका पुत्र स्नेह नहीं बल्कि दहेज का लालच है। उसी दिन से मैंने अपना घर छोड़ दिया है। परंतु शादी के बाद नमिता को लेकर मैं घर जरूर जाऊंगा। अपने प्रधान शिक्षक के प्रभाव में आकर मैं जाति धर्म के वैषम्यता को नहीं मानता हूं। मेरे गुरु कहा करते थे—''एक थाली में खाने से या दोस्ती निभाने से जाति और धर्म का वैषम्य दूर नहीं होगा, भिन्न जाति और भिन्न धर्म के बीच विवाह सूत्र में बंधने से ही पृथ्वी में एक साम्यभाव आएगा।''

उसकी बातें सुनकर नमिता आश्चर्यचकित हो गई थी। अमृता ने कभी कहा भी था कि उसके स्कूल के प्रधान शिक्षक जाति, जातक तथा दहेज विरोधी विवाह संस्कार के लिए कई विद्रोही पदक्षेप लागू कर रहे हैं। नमिता ने सुना भी था कि अमृता की शादी भी उसी प्रधान शिक्षक के दहेज विरोधी संस्कार को मद्देनजर रखते हुए हुई थी। नमिता अपनी शादी के लिए इसलिए भी राजी हो गई थी क्योंकि उसकी मामी भी उसकी शादी के लिए उसे परेशान करने लगी थी। सुजय के द्वारा लाए गए प्रस्ताव को वह कदापि ठुकराना नहीं चाहती थी। क्योंकि उन्हें लगता था कि अगर सुजय को मना कर दिया गया तो नमिता की शादी और कभी भी नहीं हो पाएगी। उसकी शादी बिल्कुल सरल और शांत तरीके से हुई। सुजय को शोर-शराबा बिल्कुल पसंद नहीं था। उसके लिए शादी एकांत एवं व्यक्तिगत समझदारी थी। इसलिए उनका विवाह शहर के बड़े चर्च में न होकर बहुत दूर आदिवासी गांव के एक छोटे से चर्च में संपन्न किया गया। नमिता को अपने विश्वास का प्रमाण देने के लिए सुजय ने उसी गांव के मंदिर में माला बदलकर उसकी सूनी मांग में सिंदूर भी लगा दिया था।

उसके बाद वे लोग किराए का घर लेकर अलग रहने लगे। नमिता सिंदूर का टीका लगाकर कॉलेज भी जाने लगी थी। वासंती हवा की तरह कुछ ही दिनों में सुजय ने नमिता के आंचल में अपना सारा प्रेम उड़ेल दिया था। सुजय ने कॉलेज के प्रिंसिपल को इस विवाह के बारे में कुछ भी बताने से मना किया था। समय आने पर सब कुछ खुद-ब-खुद पता लग जाएगा। दरअसल, सुजय कलकत्ता में रहता था और पूरे बंगाल और ओड़िशा का टूर करता रहता था। इसलिए नमिता के लिए वह अतिथि के समान ही था। नमिता उतने में ही संतुष्ट थी और ईश्वर के समक्ष कृतज्ञ भी थी। लेकिन जब सुजय कुछ दिन नमिता के पास रहकर एक दिन अचानक चला गया तो नमिता का मानो सब कुछ खत्म हो गया था। सुजय ने घर खर्चे के लिए पैसे नहीं दिए तो न सही, परंतु दुकानदारों से इतना उधार ले रखा था कि उसे भी नमिता को ही चुकाना पड़ा। सुजय की बुरी आदतों के खर्चे की तो सीमा ही नहीं थी। एक बार सुजय एक साल के बाद वापस आया था। तीन साल के अनियमित दांपत्य जीवन और इस बीच सुप्रिय का जन्म। केवल एक ही बार बेटे को गोद में उठाकर सुजय का लापता हो जाना बिल्कुल अजनबीपन-सा लग रहा था। नमिता अपनी दर्द-वेदना आखिर किसके पास जाकर कहती? कई बार मन में ख्याल भी आया कि खोज-खबर लेकर सुजय के गांव पहुंच जाऊं। अपने गोल-मटोल पोते को देखकर क्या वे लोग उसे स्वीकार नहीं कर लेंगे? इतना भी न हुआ तो कम से कम सुजय

से तो मिल लूंगी। लेकिन, दूसरे ही पल शंका और संकोच के बीच नमिता जड़वत् हो जाती। क्रिश्चियन मां के गर्भ से जन्मे पोते को क्या हिंदू परिवार ग्रहण कर पाएगा?

कई बार उसके मन में प्रश्न भी उठते कि सुप्रिय हिंदू है या क्रिश्चियन? वह अपनी मां का बेटा है न अपने बाप का बेटा है? आखिर सुप्रिय का परिचय क्या है? उसका परिचय उसके माता-पिता हैं या वह खुद है? उसके लिए कौन-सा परिचय महत्त्वपूर्ण है? सुप्रिय के पिता का परिचय तो कहीं दिखता ही नहीं? जबकि नमिता के बारे में तो कई लोगों को जानकारी थी कि उसकी शादी एक हिंदू युवक के साथ हुई है। किंतु ज्यादातर लोग दो दिन के लिए अतिथि की तरह आए हुए सुजय को देख भी नहीं पाए थे। कई लोग व्यंग्य कसते हुए कहते कि शायद नमिता ही दूसरी 'मदर मेरी' है। ईश्वर के अलौकिक वरदान के फलस्वरूप उसकी कोख से सुप्रिय का जन्म हुआ है। ऐसे व्यंग्य बाण व कुटिल शब्दों को सुनकर भी नमिता कभी विचलित नहीं हुई थी। परंतु जिस दिन उसके बारह वर्ष के बेटे ने उससे सवाल किया, ''मम्मी, मेरे पापा कौन हैं? वे घर क्यों नहीं आते हैं? क्या आपने मुझे जन्म देने से पहले उनसे शादी की थी?''

उस दिन अपने ही बेटे की जुबान से ऐसी बातें सुनकर उसे इच्छा हो रही थी कि उसी वक्त उसके गाल में तमाचे मारकर उसकी जुबान बंद कर दूं। लेकिन अपनी भावनाओं का दफन कर उसने उससे पूछा, ''तू मेरी कोख में दस महीने तक रहा, उस वक्त तेरे पापा मेरे साथ नहीं थे। आज तू बारह साल का हो गया है, आज भी तेरे पापा हमारे साथ नहीं हैं। इतने दिनों में तुझे कभी कोई तकलीफ हुई है क्या? तेरा पालन-पोषण तो उन बच्चों की तुलना से भी बेहतर हुई है जिसके पिता हमेशा उसके साथ रहे हैं। तुझे आज तक जरा सी भी तकलीफों का सामना नहीं करना पड़ा है। सबसे अच्छे स्कूल में तेरी पढ़ाई हुई है, तू ही बता तुझे कभी किसी भी चीज की कमी हुई है क्या? खाने-पीने, खिलौने, किताबों से लेकर किसी भी चीज की जब भी तूने मांग की है, तेरी हर मांग बिल्कुल रईस बच्चे की तरह पूरी की गई है। आखिर तेरी परवरिश में कौन-सी कमी हो गई है?''

''मम्मी, आप मेरे पापा की कमी को क्या पूरा कर पाई हैं?''

''जीशु को क्या कभी अपने पिता की कमी महसूस हुई थी। क्या उन्होंने कभी अपनी मां से पिता को लाने का जिद किया था?'' इतना

कहते-कहते नमिता की आंखों से बरबस आंसू निकल पड़े।

''तो क्या मम्मी सचमुच आपकी शादी पापा के साथ नहीं हुई थी?'' इतने सरल जिज्ञासु बालक के सवाल का नमिता भला क्या जवाब दे पाती?

नमिता ने अपने मन को मजबूत करते हुए बेटे को अपनी गोद में बिठाकर उसे महसूस कराया, ''तू मेरा लाड़ला बेटा है, तूने ही तो मुझे परिपूर्ण किया है। तेरे आने के बाद ही मैं इस क्रूर समाज से सामना करने के लिए अपने मनोबल को दृढ़ कर पाई हूं। आज तू मुझसे जो यह सवाल कर रहा है, आज तक इस समाज के किसी एक ने भी मुझसे ऐसे सवाल को पूछने का साहस नहीं किया है। मैंने तेरे पापा के साथ हिंदू और क्रिश्चियन दोनों धर्मों के रीति-रिवाज को मानकर विवाह किया है। तेरे मन में यह जहर का बीज इस समाज ने ही बोया है न, जिसे दूसरे के दुखों में ही खुशी मिलती है। पर इतना जरूर याद रखना कि विवाहित मां और अविवाहित मां के मातृत्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। मातृप्रेम सदैव पवित्र, स्वर्गीय और निःस्वार्थ होते हैं। शादी के संपर्क में आने के बाद या बिना शादी के जन्म होने पर भी मानव शिशु ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ दान है। उसके जन्म में कभी कोई कलंक हो ही नहीं सकता, इसलिए बेटा, तू अपने आप को कभी भी दूसरों की तुलना में छोटा मत समझना। तू तो अपने स्कूल में पढ़ाई के साथ-साथ हर क्षेत्र में सबसे आगे है। इतना मत सोच बेटा, केवल अपने पापा को नहीं देख पाने के कारण तू किसी से भी पीछे नहीं है।'' नमिता ने उसे प्यार से समझाने की कोशिश की।

''लेकिन मम्मी, अपने पापा को एक बार देखने का अधिकार तो मुझे है न? मुझे पापा कहकर बुलाने की खुशी को पाने का अधिकार तो है न। पापा क्यों नहीं आते हैं मम्मी? मुझे पापा को देखने की बहुत इच्छा होती है। वे कहां है मम्मी?'' सुप्रिय के प्रत्येक प्रश्न को सुकोमल मन की चपलता कहकर भुलाया नहीं जा सकता था। उसके सवाल स्वाभाविक ही तो थे। शायद, सृष्टि के प्रारंभ से ही यायावर पिता के पुत्र ऐसे ही सवाल अपनी अकेली मां से पूछते होंगे। उस वक्त उसकी मां अपने बच्चों को उसके सवालों का क्या जवाब देती होगी यह नमिता नहीं जानती थी। क्योंकि उस आदिम पिता का ठौर-ठिकाना उस आदिम जननी के पास भी नहीं था। तब भी मनुष्य ने उस यायावर पिता और अकेली जननी से हार नहीं माना। उस आदिम माता के मनोबल कितने दृढ़ थे यह बात नमिता नहीं कह पाएगी। किस तरह वे प्रतिकूल प्रकृति का मुकाबला कर मनुष्य जाति को आज यहां तक पहुंचा पाई है।

मां अपनी संतान की सभी जरूरतों को पूरा कर पाती है। परंतु बाप की कमी को पूरा नहीं कर पाती। सभी जरूरत पूरी हो जाने पर भी किसी के न होने की कमी को भर नहीं सकती। आकाश महाशून्य होने पर भी सूरज, चांद, ग्रह, नक्षत्र से परिपूर्ण रहता है। जीवन भी उसी तरह है। जीवन में कई कमी होने के बाद भी हल्की सी खुशी के साथ भी जीवन जिया जा सकता है। नमिता की जिंदगी तो बचपन से ही इस स्रोत के प्रतिकूल में बहती चली आई है। बचपन में माता-पिता को खोकर मामा-मामी के आश्रय में उसका पालन-पोषण हुआ। छोटी-सी नमिता माता-पिता को खोने के गम से ज्यादा हर क्षण अपनी असुरक्षा से भयभीत रहने लगी थी। इसलिए वह स्वभाव से ही डरी-सहमी सी बन गई थी। सुप्रिय को पाने के बाद नमिता को सुजय की कमी के बावजूद जीवन में परिपूर्णता का अहसास होता था। सुप्रिय को अपनी गोद में लेते ही अनायास ही उसके जीवन का खालीपन भर जाता। जबकि सुप्रिय अपनी मम्मी को कसकर पकड़ने के बावजूद भी अपने पापा की कमी के एहसास को पूरा नहीं कर पाता। हमारा समाज चाहे कितने भी आगे बढ़ जाए पर एक पिता के परिचय की खोज जरूर करता है। महाभारत के वीर कर्ण भी इसी कारण अपने न्याय अधिकार से च्युत हो गए थे। कदम-कदम पर उन्हें लांछित होना पड़ा था। जबकि पांडव कुंती पुत्र का परिचय प्राप्त करने के कारण गौरव का अनुभव कर रहे थे। यदि जरूरत पड़े तो समाज के कठिन से कठिन नियम भी बदल जाते हैं। मूल्यबोध और सतीत्व की संज्ञा भी बदल जाती है।

बारह साल का वालूद कूमर धर्मपद ने भी अपनी मां से पिता का परिचय मांगा था। आज सुप्रिय भी मम्मी से अपने पापा का परिचय मांग रहा है। अचानक सुप्रिय के मन में कैसे उस रहस्यमय पिता ने प्रेम रूपी कोणार्क को गढ़ना शुरू कर दिया है यह नमिता भी नहीं जान पाई। वह समझ नहीं पा रही थी कि सुप्रिय को कहां भेजेगी। केवल अमृता ही सुप्रिय को उसके पिता का परिचय दे पाएगी। क्योंकि उसकी जानकारी में सिर्फ वही एकमात्र सुजय को जानती थी। उसकी मां की पवित्रता का प्रमाण केवल वह ही उसे दे पाएगी।

आज इतने वर्षों बाद नमिता अपने लिए नहीं बल्कि केवल सुप्रिय के लिए ही अमृता के पास आई है। सुप्रिय केवल एक निष्पाप अमृतमयी जननी के परिचय के साथ इस समाज में सिर ऊंचा कर नहीं रह पा रहा है। शायद एक दायित्वहीन पिता के परिचय से ही यह समाज उसे गौरवान्वित प्रदान करेगी। यही इस अमूक समाज का अंधा कानून है। क्या इस अंधे समाज को इस बात की जानकारी नहीं है कि इस संसार में ऐसे कई महान व्यक्तियों के पास पिता का परिचय नहीं था। यह बात सुप्रिय को बताकर भी कुछ हासिल नहीं होगा। सुप्रिय जब थोड़ा समझदार हो जाएगा तब शायद वह जरूर समझ जाएगा कि उसके दायित्वहीन पिता की कोई भूमिका न रहने पर भी वह अपने व्यक्तित्व का चरम विकास कर पाएगा। बिल्कुल लव-कुश की तरह और प्रभु यीशु की तरह। नमिता के प्रत्येक शब्दों में सुजय के दायित्वहीनता की छवि स्पष्ट रूप से झलक रही थी।

बिना किसी भूमिका के नमिता बेबाक कहती ही चली जा रही थी—''सुप्रिय अपने पिता के परिचय को लेकर मुझे परेशान और जिद कर रहा है, केवल इसलिए मैं तेरे पास नहीं आई

हूं अमि, बल्कि यह जानने के लिए आई हूं कि सुजय हैं कहां? ऐसी कौन-सी बात हो गई जो अपने बेटे की शक्ल एक बार देख लेने के बाद दोबारा लौटकर वापस ही नहीं आए। मैं उन्हें बताना चाहती हूं कि मेरे और सुप्रिय के भरण-पोषण के लिए उन पर बोझ नहीं बनूंगी। मैं खुद रोजगार करती हूं और आत्मनिर्भरशील हूं। पिछले अठारह वर्षों से मैं ही तो सुप्रिय को संभाल रही हूं। वह केवल होनहार छात्र ही नहीं अच्छा बच्चा भी है। हर एक नजर का प्रशंसक भी है। अमृता! मुझे सिर्फ इतना बता दे कि सुजय आखिर किसके डर से यहां आने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिए। मैं उन्हें कटघरे के सामने खड़ा भी नहीं करूंगी। सिर्फ एक बार यहां आकर मेरे बेटे को अपने पिता होने का परिचय दे दें। इससे ज्यादा मुझे और किसी बात की अभिलाषा नहीं है।''

नमिता के मुंह से ये सारी बातें सुनकर अमृता का कंठ सूखता जा रहा था, माथे से पसीने की धारा बहने लगी थी। हे भगवान! नमिता का पति कोई और सुजय हो तो अच्छा होता। इतनी उम्मीद के साथ अठारह साल बाद वह उसके घर आई है। वह उसके ऐसे सवालों का क्या जवाब दे पाएगी?

नमिता का हाथ पकड़कर अमृता ने धीरे से कहा—''सुजय की तस्वीर तो तेरे पास होगी ही या फिर उसके साथ तेरी शादी की तस्वीर तो होगी ही। जरा गौर से देख तो, तेरे पति क्या सचमुच हमारा ही सुजय है?''

''अगर शादी की तस्वीर होती तो क्या सुप्रिय के मन में अपनी मां के विवाह को लेकर कोई सवाल उठते? उस वक्त तो सुजय ने फोटो लेने से भी मना कर दिया था। कुछ फोटो मेरे मामाजी ने अपने पुराने कैमरे से उठाया भी था। सुजय ने उसे साफ करवाने के लिए लिया और उसे भी न जाने कहां गुम कर दिया। उसके बाद अपनी सफाई देते हुए कहने लगे—कोई भी तस्वीर अच्छी नहीं आई थी। मुझे मनाते हुए कहा करते, स्टूडियो जाकर कभी अच्छी सी फोटो ले लूंगा। उसके बाद तो उस आदमी ने कभी अपनी परछाईं भी नहीं दिखाई, तो आखिर तस्वीर किसके साथ खिंचवाती?''

''इसका मतलब तेरे पास सुजय की एक भी तस्वीर नहीं है! सचमुच, मैंने तो तुझे मासूम समझा था पर तू तो बिल्कुल निर्बोध-बेवकूफ निकली।'' अमृता पूरी बातें सुनकर परेशान हो गई थी। नमिता भी सिर झुकाए निराश होकर कहने लगी—''फोटो रखकर भी क्या कर लेती? फूल चंदन लगाकर क्या उनकी पूजा करती? मुझे इन सब बातों में कोई विश्वास नहीं है। सुजय मेरे मन के अंदर स्पष्ट दिखाई देते हैं। मेरे दिल में उनकी तस्वीर बसी हुई है। हां, पर उसे सुप्रिय को दिखा पाने में मैं असमर्थ हूं।'' नमिता ने सुजय के रूप का जो वर्णन किया है उससे अमृता को जरा भी संदेह नहीं हुआ कि वह और कोई नहीं बल्कि शहर के स्कूल से आया हुआ वही शरारती छात्र सुजय ही है। वह कोई भी काम समय पर कभी नहीं कर पाता था। वह सबसे अलग अपनी दुनिया में मस्त रहता था।

इस बीच नमिता की मामी जी ने उससे कहा, ''जाओ बाथरूम जाकर हाथ-मुंह धो लो। और कितनी देर तक वही बातें करती रहोगी।'' नमिता के बाथरूम जाने के बाद उसकी मामी ने धीमी आवाज में आहिस्ते से कहा, ''मैं कैसे समझाऊं कि अब उसे अपने मन से सुजय के आने की आशा बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए। सिर्फ उतना ही नहीं उसे तो बहुत पहले ही अपने माथे से सिंदूर भी पोंछ देना चाहिए था। अगर उसी वक्त ऐसा कर लेती तो सुप्रिय को उसके सवाल का जवाब भी मिल जाता कि उसके पिता इस दुनिया में नहीं हैं। सुप्रिय के स्कूल में भी तो बिना बाप के कई बच्चे पढ़ते हैं। लेकिन नमिता तो हमारी बात कभी मानने को ही तैयार नहीं है। उसके मामा जी तो उसकी तकलीफ सह नहीं पाए और समय से पहले ही चल बसे।''

''तो क्या आप लोगों को मालूम था कि सुजय...'' इतना कहते-कहते अमृता का गला भर आया।

''हां, प्रियवंदा मैडम ने यह दुखद समाचार बताया था। टेलिग्राम पढ़कर वे बहुत परेशान थीं। उनके भांजे सुजय महापात्र का कलकत्ता के ऑफिस क्वार्टर में अचानक देहांत हो गया था। डॉक्टर ने हार्ट अटैक की रिपोर्ट दी थी। लेकिन इतनी कम उम्र में हार्ट अटैक सुनकर मैडम भी विश्वास नहीं कर पाई थी।''

इतना सुनकर अमृता आश्वस्त हो गई कि उसे अब यह शोक समाचार सुनाना नहीं पड़ेगा। वह जानती थी कि सुजय का देहांत बहुत पहले हो चुका है। पर, उसे यह नहीं पता था कि सुजय उसकी सबसे अच्छी सहेली नमिता की जिंदगी के साथ एक रहस्यमय खिलवाड़ करके छिप गया था।

''नमिता अपने बेटे को यह बात उसी समय बता देती तो सब कुछ बहुत पहले सुलझ गया होता। जो भी हो नमिता को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सुजय अब नहीं है। उसके और सुप्रिय के मन में सुजय के लौटने की आशा जितनी जल्दी लुप्त हो जाएगी उतनी जल्दी उन दोनों की जिंदगी भी सरल हो जाएगी।'' तो क्या नमिता ने यह खबर नहीं पढ़ी थी? अमृता ने उसकी मामी से प्रश्न किया।

''हां, नमिता ने भी पढ़ा था। सुजय के नाम के साथ उसकी कंपनी और वहां का पता भी लिखा हुआ था। उसकी बहुत तारीफ की गई थी। वह चित्रशिल्पी, कवि, फुटबॉल खिलाड़ी, चरित्रवान, मिष्टभाषी, कर्तव्यपरायण, परोपकारी आदि कई परिभाषाएं दी गई थीं।''

''रहने दीजिए मामी जी, इन समाचार वालों के लिए तो किसी की मृत्यु के बाद उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ बनाकर चर्चा में लाना एक परंपरा-सा बन गया है। उनका स्वभाव कैसा था यह जानकर क्या करना है? बल्कि वह समाचार-पत्र अगर आज हमारे पास होता तो सुप्रिय को दिखाकर उसके पिता के प्रति उसके मन में सम्मान भाव के साथ बेटे होने का गर्व भी अनुभव होता। वह अपने आप को अन्य की तुलना में छोटा नहीं समझता।'' अमृता ने अपनी स्थिर धारणा बताई। लेकन नमिता इस

बात को मानने के लिए तैयार ही नहीं थी। हिंदू पत्नी होने के कारण वह अपने सुहाग को बचाए रखने के लिए सिंदूर, चूड़ी, बिछुआ पहन कर इंतजार करती रही कि शायद एक दिन सुजय वापस आएगा और सुप्रिय अपने पापा को देखकर खुश हो जाएगा। मुझे विश्वास है कि तुम ही इस निष्ठुर सत्य का सही जवाब दे पाओगी। तुम्हारी बात नमिता जरूर मानेगी। उसके बाद सुप्रिय को समझाना मेरा दायित्व है। मामी ने विनीत स्वर में कहा।

''ओहो, इतने दिनों बाद तो नमिता के साथ मुलाकात हुई है और आखिरकार मुझे ही यह अशुभ समाचार उसे सुनाना होगा। अमृता ने अपने आप को दृढ़ किया। नमिता और सुप्रिय की जिसमें भलाई हो वह बात चाहे जितनी भी कठोर हो अमृता उसे कर पाएगी। बहुत देर बाद नमिता बाथरूम से बाहर आई। अमृता ने देखा, उसके बाल खुले हुए थे, माथे पर न ही सिंदूर का टीका था और न ही हाथों में कांच की चूड़ियां थीं। लाल आंखों से छलकते हुए आंसू को देखकर इतने दिनों बाद पति वियोग की पीड़ा साफ झलक रही थी। खबर बासी हो सकती है, लेकिन दुख की पीड़ा बासी नहीं हो सकती। केवल सुप्रिय के लिए उसने इतने वर्षों तक संजोकर रखे हुए पति वियोग के आंसू को पत्थर बना दिया था। आज सुप्रिय से दूर रहने के कारण अपने मन की सारी पीड़ा को बाहर निकाल कर उसे एक नई जिंदगी का सामना करना होगा। अमृता समझ गई थी कि रो-रोकर उसकी आंखें यह बताने की कोशिश कर रही थी कि आज के बाद किसी के भी सामने वह कभी अपना दुःख प्रकट नहीं करेगी।

दोनों सहेली आमने-सामने बैठकर भी कुछ कह नहीं पा रही थी। नमिता ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा, ''विश्वास करना इतना आसान नहीं था। खासकर सुप्रिय के लिए ही आज तक सधवा के रूप में अपने को सजाकर रखा। आज मेरा यही सधवा रूप ही सुप्रिय के मन में कितने सवाल बनकर उठ गए हैं। सचमुच मैं अब तक विश्वास नहीं कर पाई हूं कि सुजय हमारे बीच नहीं है। तू सच बता न, आखिर उस दिन क्या हुआ था।''

''मौत की खबर मुझे भी बिल्कुल झूठ लग रही थी। मैं भी उस बात को विश्वास नहीं कर पा रही थी। पर वह सच था और सच चाहे जितना भी कठोर हो उसे मानना ही पड़ता है। जिंदगी कभी किसी का इंतजार नहीं करती। तेरे सिंदूर, चूड़ी पहनने या न पहनने से सुप्रिय के जीवन की कमी पूरी नहीं हो सकती। बाहरी वेशभूषा से अपनों के जाने का दुख कम नहीं होता। यह बेरंग लिबास तुझ पर अच्छे नहीं लगते हैं और न ही सुप्रिय अपनी मां को इस निराश निर्जीव रूप में देखना पसंद करेगा। फिर किसके आदेश से तूने अपना यह रूप बदला है?''

''हिंदू समाज के नियम मानकर सिंदूर पहन रही थी और आज भी उसी नियम को मानने में विश्वास करती हूं।''

''समाज के साथ समाज के नियम भी बदलते हैं। किसी पलायनवादी पुरुष के लिए हमारे समाज में कोई नियम नहीं है। इसलिए ये सारे नियम अब टूटने लगे हैं। इसलिए यह बाह्य रूप अब हमारे लिए तुच्छ हैं। तू भी अपने आप को निराश और दुखी मत बना। तू कभी भी सुजय के ऊपर निर्भरशील नहीं थी तो अब क्यों चिंता कर रही है?'' अमृता ने उसे समझाते हुए कहा।

''सुजय मेरी जिंदगी में दुख देने के लिए आए थे। मेरी जिंदगी के साथ खिलवाड़ करके चले गए। मैं भी न जाने क्यों उनकी बातों में आ गई। सुजय के साथ मेरा संपर्क एक सपने की तरह थ। देखा जाए तो मैं बिनब्याही मां बनकर रह गई। ऐसे विचित्र दांपत्य को यह समाज क्यों और कैसे मान देगा? लोगों का कुछ भी कहना स्वाभाविक ही है। मैं उन्हें क्यों दोष दूं?'' नमिता जज्बाती हुए जा रही थी।

अमृता ने ड्रेसिंग टेबिल से लाल बिंदी लाकर नमिता के माथे पर लगाते हुए कहा, ''तू शादी से पहले भी बिंदी लगाती थी और आज भी पहनेगी।'' उसका हाथ पकड़ कर कहने लगी, ''कौन लोग नमिता? तू अच्छी तरह उन लोगों की ओर देख, तुझे सबसे आगे तू ही खड़ी मिलेगी। तू ही तो उनकी प्रतिनिधि है। सुजय कभी तेरे जीवन में था आज वह तेरे बीच नहीं है। लोगों को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तू तो हरदिन को एक नया रंग देने वाली लड़की थी।'' नमिता ने अमृता के कहे हर वाक्य को ध्यान से सुना और अपने बीते हुए दिनों को एक दुःस्वप्न समझकर कहने लगी, ''मैं भी कितनी पागल हूं। जिस सुजय ने अपने ही जीवन के साथ नहीं बल्कि मेरे जीवन के साथ-साथ अपने बेटे सुप्रिय के जीवन के साथ भी खिलवाड़ किया। उसी के लिए पिछले अठारह वर्षों से मैंने हंसना बंद कर दिया। किसी के सामने सिर उठाकर बात नहीं कर सकती। मेरी जिंदगी अंधेरी रात की तरह बिल्कुल वीरान हो गई थी। मैं सच कहती हूं सुजय को मैं कभी माफ नहीं कर पाऊंगी। मेरे लिए नहीं, बल्कि अपने बेटे सुप्रिय के लिए। उसकी स्मृति में एक बार भी उसे अपना दर्शन नहीं दिया। अपने पापा से मिलने के लिए वह कितना व्याकुल रहता था।''

नमिता की पीठ पर हाथ रखते हुए अमृता ने संवेदना भरे स्वर में कहा, ''नमिता, तू क्या सुजय के ऋण को कभी चुका पाएगी? सुजय ने तुझे ईश्वर की सबसे श्रेष्ठ कृति के रूप में सुप्रिय को दिया है? क्या सुजय के बिना तू सुप्रिय को पा सकती? तू तो जवानी के जोश में अपने कदम डगमगाने वाली लड़की नहीं थी। समाज की नैतिकता को पकड़े रहने के कारण तेरी शादी की उम्र भी पार हो गई थी कि नहीं? सुजय ने चर्च हो या मंदिर यदि उस यादगार दिन को तुम्हें उपहार के रूप में नहीं दिया होता तो क्या तुम उसे अपने पति के रूप में स्वीकार कर पाती? सुप्रिय की तरह सुपुत्र को पाकर इतने गर्व का अनुभव कर पाती। सुजय अपने अमूल्य जीवन के प्रति दायित्वहीन था तो उस पर अभिमान क्यों? बल्कि तुझे तो उसका ऋणी होना चाहिए नमिता। मुझे आज तेरे नहीं बल्कि सुजय के लिए तकलीफ हो रही है मैं समझ नहीं पा रही तुझे कैसे बताऊं कि सुप्रिय की तरह बच्चे

को उसने मन भरकर देखा तक नहीं, उसका पितृत्व अपने होनहार बेटे को देखकर गर्वित नहीं हो पाया। सुप्रिय के उज्ज्वल भविष्य के लिए उसे रास्ता दिखाने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हो पाया। तू जरा सोचकर देख नमिता, सुजय कितना अभागा था।''

सुजय के दुर्भाग्य के बारे में सोचकर अमृता की आंखें छलछला आई थीं। सुजय पहले से ही विवाहित था, पहली पत्नी से पुत्र रहते हुए भी न जाने उसने क्यों उसका दायित्व भी नहीं लिया। अपनी किस्मत के साथ उसने ऐसा विचित्र खिलवाड़ क्यों किया, जाने से पहले नमिता को भी कुछ कहकर नहीं गया। ऐसी जिंदगी से उसे क्या मिला? कम से कम नमिता के मन में उसके बेटे के पिता सुजय के साथ बिताए गए यादगार पल उसके स्मृतिपटल पर अमिट छाप बनकर रह गए। उसकी मृत्यु के बाद उसके आघात उसे और दुखी न करें। सुजय को क्षमा करने में ही नमिता की भलाई है। सुप्रिय भी अपने पिता की अच्छी बातों को याद कर गर्व महसूस करेगा। पितृकेंद्रित समाज में उसे भी अपना परिचय मिल जाएगा।

अमृता के द्वारा कहे गए हर एक वाक्य उसके कान में सूई की तरह चुभ रहे थे। इस बार नमिता फूट-फूटकर रो पड़ी। अपने मन को सांत्वना देते हुए कहने लगी, ''सुजय, मेरी जिंदगी में देवदूत बनकर आए थे। मुझे मातृत्व का सुख देने के लिए ही वे इस धरती पर आए थे। उतना ही देखकर वे प्रभु के निर्देश पर चले गए। इसमें उनका क्या दोष है? उनका यह ऋण चुकाने के लिए न जाने मुझे कितने जन्म लेने होंगे। मुझे उन्होंने निर्मल प्रेम दिया, मातृत्व दिया, बदले में उन्हें क्या मिला? मैं सुप्रिय को बताऊंगी कि तेरे पापा ने ईश्वर की मर्जी से इस संसार को त्याग दिया है। इतने दिनों से संभाल कर रखे हुए उस पेपर को उसे पढ़ाऊंगी जिसमें उसके पिता के सद्‌गुणों का वर्णन हुआ है। उसे बताऊंगी कि तेरे पास से मुझे यह पेपर मिला है। तेरा नाम सुनते ही वह सब कुछ विश्वास कर लेगा। मेरी जुबान से तेरा नाम सुन-सुन कर बचपन से ही तुझे चाहने लगा है। उसके पापा के एकमात्र रिश्तेदार होने के नाते वह तुझसे बहुत प्यार करता है। कभी फुरसत मिला तो उसे लेकर यहां जरूर आऊंगी।''

बहुत दिनों बाद नमिता के चेहरे में हल्की मुस्कान देखकर अमृता को लगने लगा कि शायद अब उसकी जिंदगी से दुख रूपी बादल छंटने लगे हैं। अब उसकी जिंदगी में दुख देने के लिए सुजय भी तो नहीं रहा। कीचड़ से कमल रूपी सुपुत्र सुप्रिय उसके पास है। अंततः नमिता की जिंदगी में भी सुख के दिन आ ही गए। जिस दिन पहली बार विश्वविद्यालय डिबेट प्रतियोगिता में अमृता की मुलाकात सुप्रिय से हुई, उस दिन उसने भी सुजय की सारी गलतियों को माफ कर दिया।

अचानक कई चार वर्षों के बाद लंदन से नमिता की चिट्ठी आई। चिट्ठी में लिखे गए प्रत्येक शब्द से अमृता का मन आनंद से विभोर हो उठा। नमिता ने लिखा था, ''सुप्रिय ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर गवेषणा कर डॉक्टरेट की डिग्री पाई है, उसका विषय था, ''पितृकेंद्रित भारतीय पारिवारिक जीवन से परिचित संकट''। सुप्रिय के संदर्भ खूब प्रशंसित हुई है तथा उसी विश्वविद्यालय के शिक्षक के रूप में उसका नाम चयन भी हो गय है। मेरी मनपंसद लड़की से शादी करके वह भी खुशी से है। सुप्रिय के दोनों बच्चे स्कूल में पढ़ रहे हैं। बेटे का नाम सुजित और बेटी का नाम सुजया। दोनों का नामकरण भी सुप्रिय ने ही किया है। ईश्वर की दया से सुप्रिय अब अपने पापा के बारे में मुझसे सवाल नहीं करता है। मुझे भी बड़े आदर के साथ अपने साथ रखा है। मैं जितनी बार भी अपने पोते-पोती को अपनी गोद में लेती हूं सुजय को कृतज्ञता करना नहीं भूलती। उस चिट्ठी के साथ नमिता के परिपूर्ण परिवार की एक तस्वीर भी थी।

करीब एक साल बाद अमृता के पास नमिता की एक और चिट्ठी आई। विनम्र अनुरोध से प्रत्येक्ष अक्षर नम हुए जा रहे थे। नमिता ने विनती करते हुए लिखा था–

अमि,

तुझे मेरी कसम है। नाराज मत होना। तुझे परेशान तो नहीं कर रही न, तेरे सिवा मेरा और कौन है बता? एक अंतिम अनुरोध है तुझसे। क्या सुजय की तस्वीर मिल सकती है? आजकल सुप्रिय फिर से उसी पुरानी बातों को दोहरा रहा है। मुझसे कहता है, ''अमि मौसी ने कहा था कि मैं बिलकुल पापा की तरह दिखता हूं, क्या यह सच है मम्मी?''

उसे अपने पापा की तस्वीर की जरूरत है। कहता है, ''ड्राइंग रूप की दीवार पर अपने पापा के साथ अपनी तस्वीर को टांगेगा। जिसे देखकर उसे पहचानने वाले कहेंगे कि वह बिल्कुल अपने पापा की तरह दिखता है।'' वह अब भी आश्चर्य प्रकट करता है कि मैंने उसके पापा की तस्वीर को कैसे नहीं रखा। मेरी लापरवाही देखकर मुझ पर हैरान भी होता है। उसका परेशान होना स्वाभाविक भी तो है। तुझे मेरी कसम, मुझे तुझ पर पूरा विश्वास है। अगर तू चाहेगी, तो उन्हें खोने के इतने वर्षों बाद भी उनकी तस्वीर तुझे जरूर मिल जाएगी। मेरा सुप्रिय उस तस्वीर को पाकर खुश हो जाएगा और मेरी जिंदगी का यह अधूरापन भी दूर हो जाएगा। भारत आने के बाद मैं खुद जाकर तुझसे वह तस्वीर ले आऊंगी। डाक द्वारा भेजने पर अगर वह कहीं गुम हो जाए...?

इति
तेरी दुःखियारी सखी
नमि

भाषांतर : सुरभि बेहेरा
क्वार्टर नं. 8/3, ब्लॉक-डी-6, न्यू गवरमेंट कॉलोनी, एम.आर.सी. उप डाकघर, भुवनेश्वर-751017 (ओड़िशा)

इस यात्रा में

हिमांशु जोशी

प्रतिष्ठित कहानीकार एवं पत्रकार और कई पुरस्कारों से सम्मानित हिमांशु जोशी के अठारह कहानी-संग्रह, तीन कविता-संग्रह, दो वैचारिक संस्मरण-संकलन, साक्षात्कार, यात्रा-वृतांत, जीवनी तथा खोज, रेडियो नाटक और बाल साहित्य की नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 35 शोधार्थियों ने उनके साहित्य पर शोध करके डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

टूटे पत्ते की तरह, बिलकुल पीला था तुम्हारा चेहरा! बेहद क्लांत! थका-थका! लगता था कि अब अधिक दूर तक चल पाना कठिन है।

पता नहीं, किसने कह दिया था—एक बार इसे भी करके देख क्यों नहीं लेते? जहां इतने उपचार किए हैं, एक यह भी सही। कई बार असंभव भी संभव हो जाते हैं...।

इसी असंभव को संभव करने के लिए हमारे हाथ-पांव अपने आप छटपटा रहे थे।

तुम यंत्रवत आगे चल रही थीं।

घर से जब निकल रहे थे, तो एक बार पूरा घर, तुमने मुड़कर देखा था। खिड़कियां, दरवाजे, उन पर टंगे भारी-भारी खादी के परदों पर तुम्हारी निष्प्राण-सी दृष्टि अटक गई थी।

''आप भी ऐसी बातों पर विश्वास करते हैं?'' तुमने अविश्वास से मेरी ओर देखते हुए पूछा था।

''विश्वास तो नहीं करता, परंतु तुम्हारे लिए मैं कुछ भी कर सकता हूं...।'' मेरा स्वर लड़खड़ा आया था, ''श्रद्धा से किया गया कोई भी काम व्यर्थ नहीं जाता। थोड़ी-सी आस्था रखो। हम जानते हैं, कुछ नहीं होगा, पर कुछ हो भी तो सकता है! उम्मीद पर ही तो हम जी रहे हैं—मान क्यों नहीं लेतीं कि कुछ-न-कुछ जरूर होगा...।''

तुम्हारी सूनी-सूनी, रीती आंखों में वीतराग का अजब-सा भाव था।

मेरे कहने पर तुम चुपचाप चल पड़ी थीं। फिर तुमने कभी कोई तर्क नहीं किया। जैसा-जैसा मैं कहता गया, वैसा-वैसा तुम निश्छल भाव से करती रहीं।

पर इस बार ऐसा क्यों हो रहा है?

घर से चलने लगे तो चाबियां खो गईं।

अभी दस ही कदम आगे बढ़े तो गाड़ी ने आगे न बढ़ने की कसम खा ली। पहिए जाम हो गए थे।

किसी तरह हवाई-अड्डे तक पहुंचे तो पता चला, पोखरा जाने वाले वायुयान का अभी तक कहीं कोई अता-पता नहीं।

तुम्हें देखकर लगता था, जैसे इन सबकी कोई प्रतिक्रिया तुम पर नहीं है। तुम वैसी ही शांत। वैसी ही संयत। तटस्थ।

सुबह से कुछ उमस थी। परंतु अब बाहर थोड़ी-सी बूंदा-बांदी के आसार झलक रहे है। काठमांडू की इस विशेषता ने मुझे बहुत प्रभावित किया है, थोड़ी-सी गर्मी का अहसास हुआ नहीं कि दो-चार बदलियां, पता नहीं, कहां से घिरकर आ जाती हैं। फिर झम-झम पानी।

यह देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि स्थानीय उड़ानों का संचालन यहां इस तरह से होता है। हवाई अड्डे जैसा लगता नहीं। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई-जैसा कुछ भी नहीं। दो छोटी-सी इमारतों के बीच एक गलियारे पर, एक आयताकार लंबे तख्ते पर लोग अपना-अपना सामान रख रहे हैं। एक आदमी उन्हें खोलकर, सामान जांचने की रस्म यों ही अदा कर रहा है। सामान भीतर की ओर धकेल कर वह एक पर्ची पर मुहर लगाकर हाथ में थमा देता है। गलियारे के दूसरी तरफ बढ़ने का इशारा करता है। एक टाट का चौखटा-सा है। आदमी की ऊंचाई जितना परदा हटाकर भीतर घुसते हैं। एक आदमी कपड़ों के बाहर-बाहर शरीर की तलाशी लेकर, भीतर कमरे की ओर बढ़ने के लिए कहता है।

बगल में भी ऐसा ही टाट का चौखटा है, जहां महिला-यात्रियों की जांच-परख हो रही है...

भीतर कमरे के प्रवेश-द्वार पर बैठा अधिकारी बोर्डिंग-कार्ड देखता है। उसके आगे वाला, हैंड बैग की तलाशी में व्यस्त हो जाता है। कुछ भी आपत्तिजनक न पाकर वह अंतिम कक्ष की ओर इशारा करता है।

लगभग मेरे ही साथ, ये औपचारिकताएं पूरी कर तुम भी आ पहुंची थीं। गहरी थकान तुम्हारे चेहरे पर साफ झलक रही थी। तुम्हें सहारा देकर, कतार में लगी प्लास्टिक की कुर्सियों पर बिठाकर, पास ही मैं स्वयं भी बैठ जाता हूं।

कल पशुपतिनाथ मंदिर में प्रवेश करते समय भी तुम्हारी स्थिति ऐसी ही थी। तुम्हारे चेहरे पर पसीने की बूंदें साफ झलक रही थीं।

''क्या मांगा तुमने?'' लौटते समय मैंने यों ही पूछा तो तुम्हारे मुंह से निकल पड़ा था, 'अपनी मुक्ति'!''

तुम्हारे क्लांत चेहरे पर धूप-छांह की तरह कितने ही भाव आ-आकर ओझल हो रहे थे। मन का कोई भाव तुमसे छिपता नहीं। आकृति पर साफ झलक आता है। इसे तुम्हारे हृदय की निर्मलता भी कह सकते हैं और दुर्बलता भी।

''पोखरा जाने वाला विमान अभी तक भी विराटनगर से आया नहीं!'' कोई यात्री परेशान-सा है।

यानी उड़ान में पर्याप्त विलंब है।

जेट और बैलगाड़ियां साथ-साथ चलते देख आश्चर्य नहीं होता। कहां निजी कंपनियों द्वारा संचालित ये आधुनिकतम छोटे-छोटे जहाज! कहां कच्ची सड़क—जैसे 'रन-वे'! ऐसी टूटी-फूटी इमारतें...!

तभी छत पर गड़गड़ाहट-सी होती है।

कोई विमान उतर रहा है या उड़ान भर रहा है।

''थोड़ा-सा कष्ट और है। मुझे लगता है...।''

तुम्हारे मुरझाए अधरों पर यों ही फीकी-सी हंसी उभरी, ''यही न कि वहां जाते ही मैं ठीक हो जाऊंगी...!''

''हां-हां।'' मैंने कहा।

''मुझे आपकी आस्था पर पूरा विश्वास है। कुछ भी असंभव मैं नहीं मानती। पर...!''

तभी सब एकाएक उठ खड़े हुए अपने हैंड बैग मैंने भी संभाल लिए और सबकी तरह, मैं भी शीशे के बंद द्वार की ओर बढ़ा। जिसके खुलते ही सब बाहर खड़े विमान की दिशा में जाएंगे।

कुछ ही क्षणों में इतने पहाड़, इतनी घाटियां पार कर लीं—सच नहीं लग रहा था।

पोखरा पहुंचे तो बर्फीले पहाड़, सामने दीवार की तरह हमारे स्वागत में खड़े थे। हरे वृक्षों से आच्छादित घने पहाड़ों के उस पार था 'मांछी पुंच्छ' यानी 'मछली की पूंछ'। पूरी एक धवल शृंखला।

विमान से उतर कर क्षण-भर तुम स्तब्ध-सी खड़ी देखती रहीं। मंत्र-मुग्ध-सी।

होटल में पहुंचे तो तुममें बहुत सारा परिवर्तन झलकने लगा था। लगा था कि तुम जैसे वह नहीं, जो अभी कुछ क्षण पहले थीं। यहां की ठंडी हवा, हिमाच्छादित पर्वत शृंग, सामने मोती जैसी विशाल स्वचछ फेवा झील! अद्भुत, शांत वातावरण! निर्मल वायु! एक अनोखा-सा स्वप्न-लोक!

दूसरे दिन आस-पास मंदिरों में गए—दर्शनों के लिए। हर मंदिर के फर्श पर सूखे रक्त के काले-काले छींटे बिखरे हुए। शायद ही कोई मंदिर हो, जहां 'पशुबलि' न दी जाती हो।

तीसरा दिन निर्धारित था—पूजा के लिए।

हम नाव पर अभी बैठ भी न पाए थे कि किनारे की, हरी घास पर, बेंत की कुर्सी पर आराम से बैठे होटल के मालिक ने कहा, ''झील के उस पार, वह लाल छत वाला मकान मेरा है। वहां मेरी कई बकरियां हैं, आप जो चाहें पूजा के लिए ले आएं। पुजारी से मैंने बात कर ली है। कल आप के जाने के बाद वह आया था... आप निश्चिंत रहें। आपको परदेसी समझकर ठगेगा नहीं...।''

काठमांडू में मेरे एक परिचित भानु श्रेष्ठ ने परिचय-पत्र दिया था। उसके ये निकट के संबंधी थे, इसलिए इतनी रुचि ले रहे थे। भानु ने जैसा बतलाया था, ठीक वैसे ही निकले। बड़े भले। भोले! उदार! सुना था, सक्रिय राजनीति में भी वर्षों तक रहे, पर अब सबसे मुक्त होकर, यहां एकांत-लाभ ले रहे हैं। सामने का आधे से अधिक पहाड़ इनका है...।

''बलि देने से अवश्य मनोकामना पूरी होती है। भगवान आपकी इच्छा पूरी करे...।'' चलते-चलते आसमान की ओर हाथ जोड़ते हुए, वृद्ध ने जैसे आशीर्वाद देते हुए कहा।

हवा में लहलहाती सफेद दाढ़ी। वैसे ही श्वेत केश!

वे ऋषि जैसे लग रहे थे! श्रद्धाभाव से मैं उनकी ओर देखता रहा।

लहरों पर धीरे-धीरे तिरती नाव किनारे से दूर पहुंच गई थी। तुम्हारे चेहरे पर परम संतोष का भाव था। पश्चिम की दिशा में धवल हिमखंड की तरह दूर चमकता मंदिर दिख रहा था। मेरे दोनों हाथ अनायास उस ओर जुड़ गए। आंखें मूंदकर, अपने घुटनों में मैंने सिर टिका लिया था।

कौन जाने, परमात्मा हमारी सुन लें! पूर्वजों का कोई पुण्य आज काम आ जाए। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया तो क्या हुआ? कौन-सा चमत्कार कब हो जाए? कौन जानता है!

अंतिम आशा के साथ हम बढ़ रहे थे। नाव धीरे-धीरे उस दिशा में आगे बढ़ रही थी, जहां लाल छत वाला वह मकान था।

पूजा की सामग्री पोटली में बंधी थी। ताजे फूल थे। अक्षत थे रोली, धूप, दीप, चंदन—सब कल ही समेट कर, सहेज कर, श्रद्धा से धर लिए थे।

आज तुमने जल तक ग्रहण नहीं किया था। पूजा के पश्चात ही प्रसाद लेंगे—मैंने भी व्रत लिया था...।

अब नाव दूसरे तट के निकट पहुंच रही थी। झील पर 'मांछी पुंच्छ' का प्रतिबिंब अब नहीं दिख रहा था। मेरा मन यहां नहीं, कहीं और था। इस आधे घंटे में ही पता नहीं कितना कुछ नहीं सोच लिया था मैंने!

हमारी आशाओं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं की यह अंतिम यात्रा थी। मृत्यु से आंख—मिचौली करते हुए हम यहां तक आए थे। अब इसके बाद—एक बहुत बड़ा प्रश्न—चिह्न था, तो अदृश्य के हाथ कुछ समाधान भी। इसी उम्मीद पर तो हम एक-एक कदम आगे बढ़ रहे थे।

साये की तरह जिंदगी, साये की तरह साथ-साथ मौत भी चल रही थी। चलते समय तुम कितनी उखड़ी-उखड़ी सी थीं।

''सुनो, मेरे गहने दीदी को दे देना। यह कड़ा हमारी कांछी को, कपड़े गरीबों में बांट देना...। हां, ये बालियां सोमू को...'' तुम्हारे मन का वीतराग आंखों से रह-रहकर झांक रहा था...।

तभी झटके से नाव रुकी।

हम तट पर आ गए थे।

किनारे पर घास के दो-तीन छप्पर थे। वह लाल छत वाला मकान शायद घने वृक्षों के उस पार था कहीं। दीख नहीं रहा था।

मांझी किनारे पर सबसे पहले कूदा। नाव पर बंधी रस्सी हौले से खींची तो नाव का कुछ हिस्सा गीली मिट्टी से आ लगा।

एक-एक कर हम नीचे उतरे।

तुम्हारा हाथ पकड़कर मैं सहारा दे रहा था, तो मैंने देखा तुम्हारी सूनी-सूनी आंखों में, कई प्रश्न एक साथ झांकते दिखलाई दे रहे थे।

इतने प्रयत्नों के बाबजूद तुम्हारी चप्पलें, साड़ी का निचला हिस्सा लहरों के हिचकोलों से भीग आया था।

सामने हल्की-सी चढ़ाई थी। छप्पर के बाहर धूप में बांस के एक किशोर वृक्ष के तने से दो बकरियां बंधी थीं। उन्हीं के पास तीन नन्हे-नन्हे मेमने आपस में सिर भिड़ाते हुए खेल रहे थे।

ताजा हरी पत्तियां जमीन पर बिखरी थीं, जिन्हें बकरियां बड़े चाव से पटर-पटर चबा रही थीं। कुछ ही कदमों की दूरी पर एक झबरैली, काला भोटिया कुत्ता खूंटे से बंधा था। हमें देखते ही भौंकता हुआ झपटने के लिए कूदा।

कुत्ते का रखवाला लाठी नचाकर उसे चुप कराने का प्रयास कर रहा था, परंतु उसका आक्रोश कम होने की अपेक्षा बढ़ता चला जा रहा था। अपने अगले पंजों से मिट्टी खुरचकर, वह बार-बार हवा में उछाल रहा था।

पर तुम्हारा ध्यान कहीं और था। बकरी के मासूम बच्चों की ओर तुम मुग्ध भाव से देख रही थीं। बार-बार अकारण उनका मिमियाना, नन्हीं-नन्हीं पूंछ इधर-उधर हिलाना और छोटे-छोटे सफेद दांतों से जल्दी-जल्दी पत्तियां चबाना, तुम्हें बहुत भला लग रहा था।

''कौन-सा बच्चा रख लें...?'' हमारी सुविधा के लिए होटल वाले ने अपने जिस आदमी को हमारे साथ भेजा, उसने मेरी ओर ताकते हुए पूछा।

''कोई भी...!'' लापरवाही से मैंने कहा।

बकरी का एक गोल-मटोल सफेद मेमना उसने अपनी ओर खींचा। इस पर सुबह से हमारे साथ-साथ छाया की तरह चल रहे पुजारी-पुत्र ने चीखते हुए कहा, ''नहीं, नहीं!

देखते नहीं! यह घोर अशुभ है। देवी को ऐसा बकरा नहीं चढ़ता।''

''क्यों?'' सहज आश्चर्य से मैंने पूछा।

आस्तीन से अपनी नाक पोंछता हुआ, शिशु-पुजारी बोला, ''इसके तीन खुर काले, एक लाल है। ऐसी बकरी चढ़ाने से पाप होता है। उलटा पाप।''

तब दूसरी बकरी की तलाश हुई। ऊपर से नीचे तक पड़ताल के पश्चात एक बच्चे को झटके से उठाया और घसीटते हुए नाव की तरफ ले आए।

बच्चा छटपटाया। मिमियाया।

उसे नाव पर जैसे ही बिठलाया, वह बिदकने लगा।

तब तुमने उसकी रस्सी स्वयं थाम ली थी। नाव पर चढ़ते समय कुछ हरी घास जमीन से नोचकर, अपनी मुट्ठी में दबाए तुम ले आई थीं। बकरी के सामने तुमने घास रखी ही थी कि वह पूंछ हिलाती हुई मिमियाने लगी थी।

घास खत्म होते ही वह फिर उछल-कूद मचाने लगीं। पुजारी के बेटे ने उसे गोदी में कसकर भींच लिया था, कहीं झील में न कूद पड़े।

जुकाम के कारण बच्चे की नाक निरंतर बह रही थी, ठंडी हवा कम लगेगी यह सोचकर उसे बीच में बिठला दिया था।

नाव पश्चिम की दिशा में बढ़ रही थी, जहां बीच झील में वह छोटा-सा गोलाकार द्वीप था, हथेली के आकार जितना। उसमें एक नन्हा-सा सफेद मंदिर था देवी का। मंदिर के चारों ओर गोलाई में बित्ते भर का रास्ता—दीवार के साथ-साथ।

चारों ओर जल-ही-जल।

मंदिर के बीच में एक छोटा-सा वृक्ष था, जो दीवार को तोड़ रहा था अब।

नाव किनारे पर लगी। पुजारी की निगाहें नाव पर टिकी थीं। पता नहीं कब से खड़ा वह प्रतीक्षा कर रहा था।

नाव की रस्सी खींचकर उसने दीवार के साथ लगे लोहे के जंगले से बांध दी।

पूजा की सामग्री जतन से उतार कर उसने चबूतरे पर रख दी। बकरी के बच्चे को दीवार के सहारे, गलियारे में खड़ा किया और झील के पानी के कुछ छींटे मंत्रोच्चार के साथ-साथ उस पर छिड़कता हुआ, नहलाने की रस्म पूरी करने लगा।

बकरी के माथे पर उसने अक्षत, रोली लगाई। कुछ अक्षत उसके चारों पांवों पर चढ़ाए। गले पर कच्चे लाल धागे का डोरा बांधा। सिर पर कुछ फूल चढ़ाए। हरी मुलायम घास उसके पास पहले से रखी थी, जिसे उठाकर उसने चबूतरे के ऊपर रख दिया था।

अब हाथ में नंगी खुखरी लिए, वह देवी की पाषाण प्रतिमा की प्रदक्षिणा करने लगा। बकरी भी साथ-साथ पीछे चल रही थी। रस्सी पुजारी के हाथ में थी।

प्रदक्षिणा पूरी करने के पश्चात् बकरी के माथे पर फिर उसने रोली लगाई। इस बीच मंत्रों का उच्चारण भी वह निरंतर करता रहा।

सहसा घास ऊपर से उठाकर उसने नीचे फर्श पर बकरी के मुंह के सामने रख दी।

धारदार नंगी खुखरी ऊपर तक उठाकर वह उसकी झुकी गर्दन पर वार करने ही वाला था कि तभी एक छीक की आवाज गूंजी। पुजारी का ऊपर उठा हाथ ऊपर ही रह गया।

हताश होकर उसने धीरे-से खुखरी नीचे रख दी।

''आज बलि नहीं चढ़ेगी अब। अपशकुन हो गया है। कल प्रातः फिर आना होगा। देवी मां आज प्रसन्न नहीं। ऐसे में बलि देना अनिष्टकारक होगा।''

हमने बार-बार समझाया उसे कि तुम्हारे बच्चे को सर्दी लगी है। वह रास्ते-भर छींकता आ रहा है। पर वह माना नहीं।

''अशुभ तो अशुभ है। ऐसे में पूजा करोगे तो निश्चित ही विनाश होगा...।'' पुजारी जिद पर अड़ा रहा।

पुजारी ने पूजा की सामग्री झटपट समेट ली। उसे कपड़े में बांधकर, बेंत की कंडिया में रख दिया। बकरी को फिर नाव पर चढ़ा दिया। उसके साथ-साथ तुम भी चढ़ीं। इस बार उसे तुमने अपनी गोद में बिठला लिया था। इस बार वह उछल-कूद भी नहीं कर रही थी। दुबकरी हुई-सी तुम्हारे शॉल में सिमट आई थी। डरी-डरी-सी।

किनारे पर आकर पुजारी ने बकरी को अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव रखा तो मैंने स्वीकृति दे दी। होटल में कहां रखेंगे? पर तुमने रस्सी छोड़ी नहीं। उसे अपने ही साथ ले आई थीं, डेरे तक।

पता नहीं कब तक तुम उसके साथ लॉन में खेलती रही थी। तुम पोर्च के खंभे के पीछे छिपतीं तो वह भी तुम्हें खोजती पीछे-पीछे आ जाती। तुम्हारी यह बच्चों जैसी लुका-छिपी देर तक चलती रही।

चाय के साथ जो बिस्कुट आए, तुमने तोड़-तोड़ कर सब बकरी को खिला दिए थे।

तुम्हारी आकृति में अब थकान नहीं थी। नीचे, निरभ्र आकाश में थाल-सा पीला-पीला चांद उभर आया था। शायद आज पूर्णमासी थी। हिमालय चांदी के पहाड़-जैसा लग रहा था, इतना निकट कि हाथ बढ़ाकर छू लेना कठिन नहीं।

पास ही क्यारियों से तुम ढेर सारी मुलायम घास बटोर लाई थीं। जब लॉन पर बैठे-बैठे देर हो गई तो तुम बकरी के साथ बालकनी में आ गई थीं।

अपना पलंग तुमने बालकनी में ही लगवा लिया था। बिस्तर पर लेटे-लेटे जो यात्री रात को हिमालय देखना चाहें, उसके सोने की

व्यवस्था होटल वालों ने बालकनी में ही कर दी थी।

खाना खा लेने के बाद पता नहीं कब तक उसके साथ खेलती रही थीं। मैं दिन भर का थका, पलंग पर गिरते ही न जाने कब सो गया।

सुबह जगा तो तुम दोनों कब के जाग चुके थे। बकरी के मुलायम बाल रेशम की तरह चमक रहे थे।

''बड़ी मैली हो रही थी, शैंपू से नहला दिया। चुपचाप नहाती रही शैतान! कुछ भी नहीं बोली।'' तुमने अपने गीले बालों को निथारते हुए कहा।

तुम अब कहीं से भी बीमार-सी नहीं लग रही थीं।

''जल्दी तैयार होइए। हम दोनों ने तो कब का नाश्ता भी कर लिया।'' चहककर तुमने कहा, ''पहली फ्लाइट से निकल चलते हैं।''

''क्यों, पूजा नहीं करनी?'' मैंने सहज आश्चर्य से कहा तो तुम हंस पड़ी थीं, ''तुम तो निरे-निरे हो! अरे, घर चलो न! अभी जल्दी से निकल कर पहली फ्लाइट पकड़ सकते हैं...।''

मुझे लगा, तुम कहीं असहज तो नहीं हो गईं। एकदम से तुम्हें यह क्या हो गया? हादसों में ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं।

''तबीयत तो ठीक है न!'' मैंने बड़ी चिंता के साथ दबे स्वर में पूछा।

तुम और जोर से हंस पड़ी थीं, ''घबरा गए न! कहीं मैं पागल तो नहीं हो गई...।''

मैं चुप तुम्हारी ओर देखता रहा।

''पूजा का वक्त हो रहा है। पुजारी हमारी प्रतीक्षा में होगा...। शाम को हर हालत में लौटना भी है...! मैं कह रहा था पर तुम्हारा ध्यान कहीं और था।

खोई-खोई-सी तुम कह रही थीं, ''यह पूजा अब हम नहीं करेंगे। मेरा वक्त आ गया है तो क्या तुम उसे टाल दोगे?''

''टालना तो किसी के वश में नहीं। परंतु, प्रयत्न तो करना ही चाहिए...। इसीलिए तो इतनी दूर आए हैं...।''

तुमने एक गहरी सांस भरते हुए कहा, ''सचमुच हम बहुत दूर आ गए हैं। तुमने देखा, इस प्यारी बच्ची को! कितने प्यार से कल से खेल रही है। कल रात सर्दी लगी तो कूदकर मेरे बिस्तर पर आ गई। अभी सुबह मैं नहा रही थी, तो यह बाथरूम के बाहर बंद दरवाजे से टिकी बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। जहां-जहां मैं जा रही हूं, वहां-वहां खोजकर आ जाती है। क्या हमारे अपने बच्चे होते तो हमें इससे अधिक प्यार करते?''

तुम कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रही थीं, ''किसी के प्राणों की बलि चढ़ाकर, क्या किसी को जीवन मिल सकता है?''

मेरी समझ में नहीं आ रहा था, तुम बहकी-बहकी-सी क्या बोले जा रही हो।

''इसे घर ले जाएंगे! हमारे बगीचे में कितनी हरी-हरी मुलायम घास होती है। इसको जी भरकर खिलाएंगे...!''

तुम हंस रही थीं। तुम्हारी आंखें हंस रही थी। तुम्हारा रोम-रोम हंस रहा था। कितना गहरा आत्मसंतोष का भाव था तुम्हारे चेहरे पर! कौन कह सकता था, तुम बीमार हो! अब कुछ ही घड़ी की मेहमान!

7/सी-2, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स,
मयूर विहार फेज-1, दिल्ली-110091

अगली बार जल्दी आएंगे

डॉ. मोहम्मद अरशद खान

रूहेलखंड विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. मोहम्मद अरशद खान की सात पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित। उपन्यास, कहानी, कविता, संस्मरण, समीक्षा, आलेख आदि साहित्यिक विधाओं में लेखन।

''अम्मी!'' रेहान दौड़ता हुआ घर में घुसा।

सुबह दोपहर में बदल रही थी। धूप अलसाई-सी पूरे आंगन में पसरी थी। नीम पर बैठा कौआ अपने पर कुरेद रहा था। एक गिलहरी डाल पर चिपकी हुई लेटी थी। नानी सहन में लेटी हुई पंखा झल रही थीं। बड़े मामा दुकान जा चुके थे और मामी रसोई में थीं।

''अम्मी...!'' रेहान ने दोबारा आवाज दी।

''क्या काम है...?'' नानी ने आवाज की दिशा में देखने की कोशिश करते हुए कहा, ''बिट्टो, मेहंदी की पत्तियां चुनने पीछे गई है।''

''ओफ्फो... अम्मी अभी तक तैयार नहीं हुई। पापा आते ही होंगे।''

रेहान ने इस तरह शहरी नखरीलेपन से कहा कि नानी का पोपला मुंह खिल उठा। वह हंस पड़ीं। रेहान पीछे की ओर दौड़ चला।

पहले के घर कितने बड़े-बड़ होते थे। घर में भी कई-कई आंगन। जनानखाने के लिए अलग और मर्दों के लिए अलग। मेहमानों और बाहर के लोगों के लिए तो एक अलग ही घर होता था।

रेहान पीछे जा पहुंचा। अम्मी जल्दी-जल्दी मेहंदी की पत्तियां खसोटने में लगी थीं। उनकी पीठ पसीने से भीगी हुई थी और बालों की लटें चेहरे पर बिखर आई थीं। दुपट्टे का एक सिरा झाड़ में उलझा हुआ था। पर जैसे अम्मी को इसकी परवाह नहीं थी।

''अम्मी, आप यहां क्या कर रही हैं? चलना नहीं है क्या?''

अम्मी ने उसी तरह काम में लगे हुए कहा, ''तुम यहां धूप में क्या कर रहे हो? अंदर जाकर खेलो। मैं अभी आ रही हूं।''

''किसके साथ खेलूं? अब्बास मामू चुपचाप निकल जाते हैं। कहते हैं तुम अभी छोटे हो। लाइट रहती नहीं, जो कार्टून देखूं। मुझे यहां बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। जाने पापा कब तक आएंगे।''

''ऐसी बातें नहीं कहते। जो किताबें लेकर आए थे, वही जाकर पढ़ो।'' अम्मी की आवाज में इस तरह की ऊब भरी हड़बड़ी थी, जैसे उन्हें बातें करने की भी फुरसत न हो।

अभी एक ही हफ्ता हुआ था, उन्हें आए हुए। पापा को किसी प्रोजेक्ट के सिलसिले में बंगलुरू जाना था इसलिए वे उन्हें यहां छोड़ गए थे। पिछली बर जब वे कोयंबटूर गए थे तो रेहान दादी के घर गया था। दादी के घर तो उसे खूब अच्छा लगता था। लखनऊ की बात ही कुछ और थी। दिन ऐसे बीतते कि पता ही नहीं चलता।

आंचल में मेंहदी की पत्तियां लिए अम्मी अंदर आ गई। सिल बिछाकर पत्तियां उस पर उलटने ही वाली थीं कि कुछ सोचकर बड़ी मामी को आवाज दी, ''भाभी, खड़ी हो तो जरा दो-चार अमरूद की पत्तियां खसोट दीजिए। पहले पीस लूं। नहीं तो इसमें मिर्च-मसालों की कड़वाहट भी घुल जाएगी।''

बड़ी मामी रसोई से बाहर निकल कर आई और अम्मी को देखकर बोलीं, ''अरे, तुम ये क्या लेकर बैठ गई? जाकर अपनी तैयारी करो, रफत आते ही होंगे।''

''भाभी... पत्तियां...'' अम्मी को जैसे कुछ कहने-सुनने की फुरसत नहीं थी।

बड़ी मामी जाते-जाते अम्मी के दुपट्टे में फंसी रह गई मेहंदी की पत्तियां छुटाकर अंगुलियों से मसलती और उनका असर देखती चली गईं।

''देसी मेहंदी है..., बहुत रंग देती है...।'' नानी बोलीं।

वापस लौटकर बड़ी मामी ने वात्सल्य भरे स्वर में कहा, ''ए, सच कहती हूं छोटी, तू हट जा, मेहंदी लगानी ही है तो मैं पीस देती हूं।''

''मुझे नहीं लगानी भाभी, अम्मा के लिए सोच रही थी। बाल कितने रूखे हो रहे हैं।''

''तो भी मैं पीस दूंगी। तू जा, तैयारी कर।''

''नहीं भाभी, तुम भी अपने काम निपटा लो, तुम्हें भी मेहंदी लगवानी है।'' अम्मी ने पत्तियां सिल पर कुचलते हुए कहा।

''मुझे...!'' बड़ी मामी अपने खुरदरे हाथ देखती हुई हंस पड़ीं।

''हां, आपके तलुए जलते हैं न? मेहंदी ठंडक देती है।''

बड़ी मामी चुपचाप खड़ी रह गईं। पर लगा कि उनकी आंखों में जैसे बहुत दूर कहीं मंद स्वरों में कोई बांसुरी करुण राग में मचल उठी हो, या समंदर की एक लहर अचानक उठकर पत्थर पर बिखर गई हो।

धूप अब तक काफी चढ़ आई थी। गिलहरी अभी भी उनींदी आंखें लिए डाल से अपना पेट सटाए चिपकी थी। कौआ चला गया था। अब वहां डैने फैलाकर हांफती हुई एक बड़ी-सी चील आ बैठी थी। नीम का जवान पेड़ बड़ी कोशिशों के बावजूद धूप को रिसने से नहीं रोक पा रहा था। हवा की शरारत जमीन पर धूप-छांह के आलेखन बना-बिगाड़ रही थी।

''अरे, अचार को भी धूप में रखना है।'' अम्मी को यकायक ख्याल आया।

''मुझे लिटा दिया न मेहंदी लगाकर? अब करो सब काम अकेले।'' बड़ी मामी ने मीठी झिड़की दी।

''भैया पता नहीं कब तक आएं...'' कहते-कहते अम्मी को भी लगा कि अप्रासंगिक बात कह दी है। सबको पता था कि बड़े मामा की दुकान रात के ग्यारह से पहले नहीं बंद होती। ''भैया को रोज घर आकर खाना खा जाना चाहिए। काम के चक्कर में सेहत गलाए दे रहे हैं।'' उन्होंने बात बदली।

बड़ी मामी कुछ न बोलीं बस एकटक अम्मी को देखती रहीं और शब्दों के पीछे छिपे उनके भावों को पहचानने की कोशिश करती रहीं। वह जान रही थीं कि अम्मी जाते-जाते अपने भाई को एक बार देख लेना चाहती हैं।

''अम्मा क्या बना दूं?'' अम्मी ने पूछा।

''हूं...'' नानी ऊंघ गई थीं।

''भाभी, क्या बना लूं?'' अम्मी ने आवाज दबाकर पूछा।

''छोटी, तू अपनी तैयारी कर। मैं सब कर लूंगी। देसी मेहंदी है, उतार देती हूं। रंग आ गया होगा। तू परेशान मत हो।'' बड़ी मामी ने प्यार से उनका हाथ पकड़ते हुए कहा। मामी के खुरदरे हाथों के स्पर्श में अम्मी को जाने कैसा स्नेह महसूस हुआ कि अंतर्मन की उमस आंखों में घुमड़ आई और वह इतना ही कह सकीं, ''भाभी... आप...'' और गला रुंध गया।

''अम्मी, मैं जा रहा हूं मामू के साथ, स्टेशन। पापा की गाड़ी आती ही होगी।'' रेहान ने अंदर कदम रखा। धूप से उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। पीछे-पीछे अब्बास भी था।

''नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। इतनी धूप है। अल्लाह न करे लू लग गई तो।''

''आपा, आप तो बिना मतलब डरती हैं। सब तो निकल-बैठ रहे हैं।'' अब्बास ने कहते-कहते आंखों ही आंखों में इशारा किया जिसका

मतलब था 'रेहान को बहलाकर इधर-उधर करिए, मैं अकेला निकल जाता हूं।''

''नहीं बाबू, धूप बहुत है। मत जाओ, वे आ जाएंगे।'' अम्मी उसके माथे का पसीना पोंछती हुई बोलीं, ''आओ, थोड़ी देर अपनी आपा के पास बैठ लो।''

बैठना... यह तो अब्बास के लिए सजा थी। बात टालने के लिए वह घड़े के पास जाकर पानी डालने लगा। घूंट-घूंट पानी पिया। फिर घड़ौची पर रखा पुराना अखबार पलटने लगा। फिर धीरे-धीरे बाहर सरक गया। अम्मी एक पल खड़ी रहीं, फिर रेहान की किताबें इकट्ठी करने लगीं।

''चच्ची बी को देख आती... उनकी तबीयत खराब थी।'' अम्मी बुदबुदाते हुई बोलीं। उन्हें पता था कि चच्ची बी से घरवालों की नहीं बनती। न वह इनके घर आती थीं और न ये लोग उनके घर जाते थे और फिर कल ही तो वह उन्हें देखकर लौटी थीं। इस समय धूप भी इतनी तेज थी कि कहीं निकलने का तर्क वैसे भी कमजोर पड़ जाता था। अम्मी ने मन मार लिया और काम में जुट गईं। दालान के तखत पर सामान बिखरा पड़ा था। वह सामान उठाकर चादर संवारने लगीं।

धूप अब दालान में झांकने लगी थी। नानी की चारपाई का पायताना धूप में आ गया था। तपिश से बचने के लिए उन्होंने अनायास ही पैर समेट लिए थे। बड़ी मामी की चारपाई यों तो अंदर की तरफ थी पर धूप की धमक से उनका चेहरा चुहचुहाने लगा था। अम्मी ने लपक कर बोरे लिपटे टट्टर खंभों से बांध दिए और बाल्टी लेकर नल की ओर बढ़ चलीं। टट्टर पर पानी उछालकर जब वे अंदर आकर हाथ-मुंह पोंछ रही थीं तो बड़ी मामी ने कहा, ''खाना खा लेतीं तो जातीं।''

''जी...?'' अम्मी ने ठहर कर मतलब समझने की कोशिश करते हुए पूछा।

''तुम चच्ची बी के घर जाने को कह रही थीं।'' बड़ी मामी ने कहा।

''अरे वह तो ऐसे ही कह रही थी, छोड़िए, कल तो हो आई थी।'' अम्मी फिर से हाथ पोंछने लगीं।

''अरे नहीं-नहीं, हो आओ। बेचारी बीमार हैं। तुम्हें तो जाना ही चाहिए।'' बड़ी मामी ने ऐसे समझाया जैसे जिद न पूरी होने पर निराश बच्चे का लटका चेहरा देखकर मां उसे मनाने की कोशिश करती है।

अम्मी के चेहरे पर खुशी झलक गई। उन्होंने कपड़े की सलवटें सही कीं और सिर पर दुपट्टा डाल कर बाहर की ओर लपकते हुए बोलीं, ''बस अभी आती हूं।''

बड़ी मामी ने गर्दन घुमाकर नानी की ओर देखा। वह गहरी नींद में बेखबर सो रही थीं। मामी ने सुकून की एक सांस खींची और करवट बदल ली।

थोड़ी देर बाद बड़ी मामी की नींद खुली तो देखा अम्मी दोनों चारपाइयों के बीच बैठी पंखा झल रही हैं; एक बार हाथ बढ़ाकर नानी की ओर तो दूसरी बार उनकी तरफ। बड़ी मामी हड़बड़ाकर उठ बैठी। सिर पर दुपट्टा सहेजती हुई मिचमिचाई आंखों से बोलीं, ''ये क्या छोटी? पंखा मुझे दो। क्यों थक रही हो?''

''डेढ़ बज रहा है।'' अम्मी बोलीं, ''अम्मा को उठा दूं? नमाज भी तो पढ़नी होगी।''

''नमाज' शब्द कानों में जाते ही नानी उठ बैठी और कांपती हुई बोली, ''तौबा-तौबा, कितनी देर हो गई। सोती रह गई। अस्तगफिरुल्लाह।''

''अम्मा'', अम्मी अपनी जम्हाई रोक कर बोलीं, ''इस तरह एकदम से न उठा करो। देखो, सारा बदन थरथरा रहा है। यहीं बैठी रहो, मैं वजू का लोटा लेकर आती हूं।''

अम्मी आंगन की ओर चली गईं। नल यों तो साए में था, पर गर्म हवाओं से दहक गया था। अम्मी जल्दी-जल्दी नल चलाने लगीं ताकि ठंडा पानी आने लगे।

तभी दरवाजे की कुंडी बजी। अब्बास आ गया था, ''आपा, दरवाजा खोलिए, भाईजान आ गए हैं।''

दालान के छल्ले में पड़ी रस्सी पर झूल रहा रेहान भागा आया। ''पापा आ गए! पापा आ गए।''

अम्मी ने झट लोखा रखा और सिर पर दुपट्टा खींचती हुई दरवाजे की ओर लपकीं। सफर की थकन लिए पापा अंदर दाखिल हुए। पर जैसे ही उनकी नजर अम्मी के हुलिए पर पड़ी वे झुंझलाहट से भर गए। सोचकर आए थे कि तीन बजे वाली गाड़ी से निकल लेंगे और घर पर पहुंच कर ही आराम करेंगे। पर यहां उसकी संभावना नहीं नजर आ रही थी।

''तुम अभी तैयार नहीं हुई?'' पापा ने सलाम का जवाब न देकर पूछा।

बड़ी मामी पांवों में लगी मेहंदी के कारण असमंजस में फंसी वहीं से बोलीं, ''आइए भाई साहब, यहीं आ जाइए, धूप बहुत तेज है।''

इसी बीच अम्मी ने जवाब दिया, ''मुझे तैयार होने में कितनी देर लगेगी?'' लेकिन पापा ने सुनने की जरूरत नहीं समझी क्योंकि उन्होंने सवाल नहीं पूछा था, अपनी नाराजगी जताई थी।

पापा नानी को सलाम करके पायताने आ बैठे। नानी अपनी कमजोर आवाज में उनका हाल-चाल पूछने लगीं। इस बीच बड़ी मामी ने अपनी मेहंदी पोछ डाली थी और रसोई में जाकर नाश्ता-पानी तैयार करने में जुट गई थीं।

''तीन बजे तक तैयार हो सकती हो, हो सको, तो निकल चलें।'' पापा ने वहीं से पुकार कर अम्मी से कहा।

''मैं कब से कह रही हूं तुम जाकर तैयार हो जाओ।'' बड़ी मामी अम्मी के हाथ से ट्रे लेती हुई बोलीं, ''पानी मैं दे देती हूं।''

पापा अभी आए थे और फौरन जाने की तैयारी में थे। चाहकर भी कोई उनसे रुकने के लिए नहीं कह रहा था। सब जानते थे कि वह इतने मसरूफ रहते हैं कि पल भर को फुरसत नहीं मिलती। फिर भी नानी कहने लगीं, ''इतनी दूर से आए हो बेटा। थोड़ा आराम कर लेते। कितनी धूप है। शाम को चले जाते।''

पापा हंसकर रह गए। बस इतना ही कहा, ''खाला, मुझे भी अच्छा थोड़े ही लगता है। पर नौकरी जो न करवाए।''

''हां भाई, बड़ी परेशानी है।'' बड़ी मामी ने पानी लाकर रख दिया।

''यहां का पानी इतना अच्छा लगता है कि पूछिए मत! और फिर आपके हाथ की मिठास आ जाती है वह अलग।'' पापा एक घूंट में सारा पानी पीकर बोले।

''अरे भाई,'' बड़ी मामी हंसी, ''बिजली तो रहती नहीं। यहां तो सब लोग घड़े का ही पानी पीते हैं।''

''बिट्टो...'' नानी ने अचानक टोका।

अम्मी छांह में आ गए अचार के मर्तबान को धूप में रख रही थीं। वह जाते-जाते बहुत सारे काम निपटाना चाह रहीं थीं। उन्हें देखकर बड़ी मामी उठकर आंगन में आ गईं और उनका हाथ पकड़ते हुए बोलीं, ''क्यों फिक्र करती हो मैं कर दूंगी। जाओ, अब जाकर अपनी तैयारी करो। रफत का गुस्सा तुम्हें पता है फिर भी...'' अंतिम वाक्य उन्होंने इस तरह फुसफुसाकर कहा कि सिर्फ अम्मी ने ही सुना। अम्मी कमरे की ओर चली गईं। कनखियों से देखती भी गईं कि पापा की क्या प्रतिक्रिया है। उम्मीद के मुताबिक पापा सुलगने-सुलगने को हो आए थे। गले में झूल रहे रेहान को एकाएक उन्होंने झिड़क दिया था।

थोड़ी देर बाद अम्मी तैयार तो हो गईं, पर चेहरे पर उलझन और हड़बड़ी ऐसी चिपकी हुई थी कि चेहरा सोया-सोया लग रहा था। आंखें ऐसी घुच्ची-घुच्ची हो गई थीं कि जैसे उनके सिर में तेज दर्द हो या अभी-अभी सोकर उठी हों। पापा ने उनसे कुछ नहीं पूछा, जानते थे कि हर बार लौटते समय उनका चेहरा ऐसा ही हो जाता है।

पापा उठकर बैग दुरुस्त करने लगे। अम्मी नल की ओर निकल गईं। टट्टर के बोरे धूप

में सूखने लगे थे। एकाएक अम्मी को पास न पाकर पापा खीझ उठे, पर कुछ बोले नहीं। रेहान ने पापा के चेहरे का भाव पढ़कर कहा, ''अम्मी, तैयार होइए न?''

अम्मी हड़बड़ाकर कमरे की लपकीं। थोड़ी देर बाद एक हाथ में बैग और एक में नकाब लेकर वापस आईं।

अब्बास दौड़कर रिक्शा बुला लाया था। बहुत ढूंढने के बाद उसे शेड वाला रिक्शा मिला था। वह रेहान के साथ अटैची उठाकर उस पर रखवाने चला गया।

''नकाब क्यों पहन लिया? यहां किससे पर्दा? तुम तो यहां की बेटी हो।'' अम्मी को नकाब पहनते देख पापा बोले।

अम्मी कुछ न बोलीं। घूमकर देखा भी नहीं। वह नहीं चाह रही थीं कि उनकी निगाहें किसी से मिलें और आंखों में भरे हुए आंसू दिखाई पड़ें।

''सब सामान रख लिया? कुछ छूटा तो नहीं?'' नानी ने पूछा।

''उहूं...'' नकाब के पीछे से अम्मी ने सिर हिला दिया और नाक सुड़कने लगीं।

बड़ी मामी भी कुछ कहने को थीं पर अम्मी का भरा हुआ मन छलक न पड़े, यह सोचकर चुप रह गईं।

''चलें''? पापा ने स्नेहपूर्वक कहा।

पापा चल पड़े। पीछे-पीछे अम्मी भी चल पड़ीं। अम्मी, नानी और बड़ी मामी को सलाम करने को हुईं, पर मुंह से न कहकर हाथ से इशारा कर दिया। नानी दुआएं देने लगीं। बड़ी मामी बोलीं, ''जाओ भाई, अल्लाह की अमानत, अल्लाह के हाथ। खुदा हाफिज!''

अम्मी चलते-चलते थोड़ी देर ठहरीं और देर से मुट्ठी में पसीज रहा नोट अब्बास के हाथ में दे दिया। अब्बास ने थोड़ी ना-नुकर के बाद नोट ले लिया। रेहान को लगा कि शायद उसे भी मिले। वह अपना दावा पेश भी करता, पर रिक्शे पर बैठने की लालच में वह भूल गया।

रिक्शा चल पड़ा। पापा ने अम्मी की तरफ देखते हुए कहा, ''घर छूटने की तकलीफ तो होती ही है। अगली बार जल्दी आएंगे।''

रिक्शा आगे बढ़कर गली में मुड़ गया।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
जी.एफ. (पी.जी.) कॉलेज,
शाहजहांपुर-242001 (उ.प्र.)

कहानी

सात कदम

जय वर्मा

ब्रिटेन की कई साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं से संबद्ध और वहां की नेशनल हेल्थ सर्विस में कार्यरत कवयित्री जय वर्मा के अंग्रेजी में कई बाल-कहानी संग्रहों का भी प्रकाशन।

''कभी हमारे भी दिन बदलेंगे। सभी लोग छुट्टियां मनाने दूसरे देशों में घूमने-फिरने के लिए जाते हैं और एक हम हैं कि इंडिया भी नहीं जाते!... जब से इंडिया छोड़ा एक बार भी घर वापिस नहीं गए।'' प्रिंस को अब यह सुनने की आदत सी पड़ गई थी, सिम्मी की इन बातों का उस पर कोई असर नहीं होता था। गर्दन उठाकर चश्मा संभालते हुए धीरे-से बोले, ''केवल घूमने के लिए हम इंग्लैंड नहीं आए थे। यहां आना मेरे इंजीनियरिंग कैरियर के लिए महत्त्वपूर्ण था। रुड़की से इंजीनियरिंग की डिग्री लेने के बाद अगर मैं भारत में ही बस गया होता तो शायद मैं अब तक एक्जीक्यूटिव इंजीनियर बनकर रिटायर होने की सोचता होता। नए चैलेंजज, उन्नति तथा नए अनुभवों के लिए ही मैं यहां आया था। न जाने कितने प्रोजेक्ट और बांध बनाने के काम मैं अपने देश के लिए करता। सिविल इंजीनियर बन जाना उन दिनों भारत में एक सुनहरे पेशे की नींव थी। देश में नई सड़कें, नए बांध, ऊंची इमारतें और बड़े पुल बनने शुरू हो गए थे। पढ़ते समय मेरे भी कुछ सपने थे। मैं भी अपने जीवन में उन्नति और मानवता के लिए कुछ करना चाहता था।''

''कितने दिनों से आप वायदा करते आ रहे हैं कि अंग्रेजों की तरह हम भी हॉलिडे में घूमने के लिए कहीं बाहर गर्म देश जाएंगे। जब हमारी शादी हुई तब आप काम ढूंढ रहे थे...। नौकरी तो आपको भारत में भी अच्छी मिल गई थी, लेकिन उन दिनों विदेश घूमने तथा युवावस्था के जोश में हम अपने घरवालों और देश को छोड़कर यहां बेकवैल, डार्बिशायर के पीक डिस्ट्रिक्ट में रहने आ गए। देवदार, चीड़ और ओक के वृक्षों से घिरी ये मैटलोक की पहाड़ियां और बेकवैल की ठोस बर्फ से भरी घाटियां जहां नवंबर के महीने से लेकर मार्च तक पेड़ों पर पत्ते और जमीन पर धूप भी नहीं आती। सुबह अंधेरे में काम पर जाते हैं और अंधेरे में ही घर लौटकर आते हैं। दिन भी इतने छोटे कि तीन बजे से ही कार की लाईट्स ऑन करनी पड़ती हैं। कोहरे और ठंड से सिकुड़ते और ठिठुरते ऊनी गर्म कपड़ों में लदे हमें सर्दियों के अंधेरे दिन बिताने पड़ते हैं।'' सिम्मी ने शिकायत के लहजे में कहा।

''जब 'नार्थ-ईस्ट न्यूकॉसल शिपयार्ड' के मैनेजमैंट कंसलटेंट का काम छोड़कर मैं पीक डिस्ट्रिक्ट में बसने के लिए आया था तब मुझे लगता था कि यहां मौसम थोड़ा अच्छा होगा।''

''बिजली से लेकर वैल्डिग तक के काम में प्रिंस आपका हाथ सधा हुआ है अतः जीवन निर्वाह के लिए आप कोई भी इंजीनियरिंग का काम कर सकते थे। सभी अंग्रेज साथी आपको पसंद करते हैं, फिर आपने लंदन की ब्रांच में क्यों नहीं काम लिया? वहां मौसम भी अच्छा है और शहर भी बड़ा। लंदन में रहना मुझे भी अच्छा लगता।''

''आजकल मैं विभिन्न पत्थरों के व्यापार करने वाली फर्म में डार्बिशायर, बक्सटन, मैटलोक और मेनचैस्टर इत्यादि शहरों में मेनेजमैंट कंसलटेंट का काम करने जाता हूं, यह काम मेरी पसंद का है। अगर मैं एक दिन की भी छुट्टी ले लूं, बॉस से लेकर एडमिन स्टाफ तक सब परेशान हो जाते हैं।''

अगर कभी कोई अंग्रेज कह देता, ''हिंदुस्तानी बड़े ही मेहनती और ईमानदार होते हैं।'' प्रिंस का सीना गर्व से फूल जाता था।

''बिजनेस के कारण हमारी जान-पहचान काफी लोगों से हो गई है, परंतु हिंदुस्तानी लोग इस इलाके में ना होने के कारण हमारी सोशल लाईफ न के बराबर है। हम दोनों ही एक-दूसरे के साथी बनकर अपने आस-पास के वातावरण में जैसे कि समा गए हैं।'' मीटिंग में जाने की तैयारी करते हुए सिम्मी बोली।

कई प्रकार की संस्थाओं के वे दोनों सक्रिय सदस्य बन गए थे। माउंटेन क्लाइंबिंग, रैस्क्यू सोसाइटी, हाईकिंग, स्नो रैस्क्यू, कनूईंग, वुडलेंड वॉक, नेचर रिजर्व, साईक्लिंग और फोरेस्ट प्रिजर्वेशन इत्यादि गतिविधियों में उनका काफी मन लगता है। वे दोनों अपने व्यक्तित्व के अनुसार अपनी विशेषताओं के आधार पर अपने आस-पास के लोगों के साथ काम करने में व्यस्त रहने लगे।

पहले तो सिम्मी केक शॉप में काम करती थी जहां के बेकवैल टार्ट दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं, घुड़सवारी वाले घोड़ों के अस्तबल में भी पार्ट-टाइम काम करने शनिवार और रविवार को जाती थी।

सिम्मी की पड़ोसन सहेली सिंथिया ने हंसकर कहा, ''सिम्मी को जानवरों से बहुत प्रेम है,

अगर उसका वश चलता तो वह भेड़ों के कई मेमने अपने घर पालने के लिए ले आती।''

''अपने कुत्ते शेरू के साथ घूमने, खेलने और देखभाल करने में ही मेरा दिन बीत जाता है और 'डोग्स फॉर ब्लाइंड्स' चेरिटी की सहायता भी हम दोनों करते हैं।'' सिंथिया की ओर देखकर सिम्मी हंस पड़ी।

अपने बच्चे न होते हुए भी सिम्मी को बच्चों से अति लगाव था। जिंदगी में मेहनत और अनुशासन जैसे वैस्टर्न अनेकानेक तत्व उनमें समा गए थे।

आज सिम्मी ने संदूकची खोली। मां के शादी में दिए गहने तथा कुछ कपड़े वह इंग्लैंड साथ ले आई थी। 'ये गहने तो न कोई आर्थिक सहारा बन सके और न ही सजावट का सामान।' जड़ाऊ कंगन और अंगूठी देखकर उसे मां की याद आ गई। दोनों ही चीजें बहुत सुंदर लग रही थीं। उनकी चमक आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी 'इन्हें पहन कर कहां जाऊंगी? जब से बेकवैल में आकर बसे हैं न कोई हिंदुस्तानी माहौल न कोई पार्टी या उत्सव जिसमें कि गहने और भारतीय कपड़े पहने जा सकें। मेरी मां को यह जानकर कभी यकीन ही न होता कि बिना मांग में सिंदूर भरे और गले में मंगल सूत्र पहने बिना कोई सुहागन औरत अपने पति की लंबी आयु की कामना कैसे कर सकती है...?' बस मोहित करने वाले जेवर उसने वापस संदूकची में बंद करके रख दिए।

यहां पर पहाड़ी झरनों का स्वर ही आभूषण का काम करता है। सिम्मी अक्सर प्रकृति के चारों ओर फैले हुए सुरम्य सौंदर्य के अद्भुत रूप में खो जाती। स्त्री के मानस पटल पर सुंदरता के मानसिक स्तर से वह ऊपर उठ चुकी थी। सुंदरता की कीमत और सराहना तो मन के विकास और अंतर्मन के विचारों से होती है। पढ़ाई के नए तौर-तरीके और टीचर्स ट्रेनिंग सिम्मी ने इंग्लैंड में आकर ही की थी। अपनी भारतीय संस्कृति को उसने सहेज कर रखा था लेकिन पश्चिम के रीति रिवाजों की प्रशंसा करते हुए न जाने वह कब वैस्टर्न रंग में रंग गई। अब तीज-त्योहारों की तारीखें उसे याद नहीं रहती। न आस-पास कोई मंदिर है और न गुरुद्वारा।

रविवार को चर्च में ईसाई धर्म के लोगों को अच्छे कपड़े पहने हुए परिवार के साथ इकट्ठे देखकर सिम्मी ने प्रिंस से एक दिन पूछा, ''क्या आप बता सकेंगे कि हम कौन हैं? और हमारा क्या धर्म है?''

''तुम जानो...'' गंभीरता से सोचते हुए प्रिंस ने कहा, ''पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु से उत्पन्न इस शरीर में ही आत्मा और परमात्मा बसते हैं। उन्हें मैं ढूंढने बाहर क्यों जाऊं? मेरा धर्म तो इंसानियत है।''

सिम्मी भावनाओं और अनुभूतियों में घिरी हुई बोली, ''मुझे नहीं मालूम है कि इंगलैंड में रहना मेरा त्याग और बलिदान है या फिर वनवास। अन्य स्त्रियों की तरह न तो मैं भोग विलास को ही जीवन का परम लक्ष्य समझती हूं और न मेरे भीतर भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई है। सादगी का रहन-सहन जीकर क्या मैंने अच्छा काम किया है? या अपने अरमानों का खून कर दिया?''

प्रिंस ने सिम्मी का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाया, ''आज तुम्हारा मन इतना विचलित क्यों हो रहा है? जिंदगी तो यहां इंग्लैंड में बीत ही गई अब पिछली बातों को सोच कर क्यों अपने आपको परेशान कर ही हो।''

आंखों को नीचे झुकाए ही सिम्मी बोली, ''क्या मालूम? अगर जीवन की किसी दूसरी राह का चयन करते शायद और भी अच्छा होता?''

सकारात्मक सोच और अनुभव की परिपक्वता दर्शाते हुए प्रिंस बोले, ''ये सब हिसाब-किताब हमारे बस की बात नहीं। हमें तो परस्पर विश्वास और अपने कथन पर भरोसा है। जाने अनजाने में हम कितनी आकांक्षाओं और कामनाओं से प्रेरित होते हैं। खुशी मेरे अंदर है, संस्कार मेरे बुजुर्गों ने दिए हैं और न जाने अंत समय में हमारा क्या अंजाम होगा?''

सिम्मी ने बात बदलते हुए कहा, ''बस आप इन्हीं बातों की सोचते हैं। जिंदगी में और भी बहुत कुछ करने के लिए है। हमने क्या जीवन जिया है? जीवन में क्या हासिल किया है? किसकी कितनी मदद की है? बताओ, क्या कुछ सीखा है हमने दुनिया में आकर?''

''अगर हम इन बातों की बहस या उलझन के विस्तार में पड़ गए तो सितंबर महीने के पतझड़ मौसम का यह दिन ऐसे ही बीत जाएगा। आओ चलें, मैटलोक में हाइट्स ऑफ इब्राहिम या डवडेल की पहाड़ियों में घूमने चलते हैं। न तुम्हें ऊंचाई का डर है और न ठंड की फिक्र। टेलीविजन के अनुसार आज के मौसम की सूचना अच्छी है और धूप निकलने की संभावना है। लेकिन इंग्लिश मौसम का कुछ भरोसा नहीं है इसलिए ऊनी स्वेटर, छाता और बरसाती मैक जरूर साथ में रख लेना।''

टेलीफोन की घंटी बजी और सहेली सिंथिया से बात करते हुए फोन पर हाथ रखकर सिम्मी बोली, ''डार्लिंग सुना आपने... कैथी की बेटी को डॉ. मार्क्स ने पेरिस में जाकर आईफल टावर की ऊंचाई पर 'विल यू मेरी मी' कहकर प्रपोज किया है। वे दोनों यूरोटनल से कल ही फ्रांस गए हैं।''

प्रिंस हंसकर बोले, ''अरे इन लोगों का क्या कहना? इनकी जो इच्छा होती है ये वही करते हैं। इनका तो काम रोज कमाना और रोज खर्च कर देना है। अंग्रेजों से हमारा क्या मुकाबला, ये लोग जिंदादिल होते हैं। भाई हम ठहरे सीधे-साधे लोग। इन बातों से हमें क्या लेना-देना।''

''मैं क्या आपसे पेरिस ले जाने की बात कह रही हूं जनाब? कभी लंदन तक आप लेकर नहीं गए जबकि डारबी रेलवे स्टेशन से लंदन की यात्रा दो घंटे से भी कम है।''

''भई बिना किसी वजह हम दोनों क्यों लड़ रहे हैं? इस संदर्भ में हमें क्या मतलब? रविवार

की सुबह-सुबह दूसरों की बातें न करके हमें अपनी दिनचर्या के बारे में सोचना चाहिए कि आज कौन से पहाड़ी रास्ते पर घूमने चलेंगे? कैसे कपड़े पहनेंगे और आज खाना कहां खाने जाएंगे?''

''सुबह से आप इतने इतमीनान से आज का दैनिक अखबार पढ़ रहे हैं, अगर अखबार पढ़ने से फुर्सत हो तो हम घूमने चलें...?''

''तुम अखबार से इतना सौतेला व्यवहार क्यों करती हो? संडे टाइम्स को पढ़ना अपने आप में एक हफ्ते भर की खबरों की जानकारी की भूख मिटाना है। परंतु तुम क्यों ऐसा सोचोगी? चलो भाई मैं तैयार हूं।'' अखबार को एक तरफ रखते हुए प्रिंस खड़े हो गए। अकसर इस तरह की नोक-झोंक दोनों पति-पत्नी में आए दिन होती रहती थी।

प्रिंस ने हिलक्रैस्ट कॉटेज की गैराज से लैंडरोवर कार निकाली। लंबी स्नेक पास की घुमावदार पहाड़ियों वाली सड़क की हरी घाटी के रोचक रास्ते से वे मैटलोक पहुंच गए। पेड़ों से बनी टनल एवं झरने और नदी के प्राकृतिक सौंदर्य को देखते हुए, बादलों से घिरी घाटियों के बीच से निकलते हुए, दोनों कब पहाड़ी की चोटी पर पहुंच गए, उन्हें पता ही नहीं चला। मेप्लस, बीच, ओक और दूसरे पेड़ों के पत्तों के बदलते सुनहरी रंगों का खजाना चारों ओर बिखरा हुआ था।

''आज लंबी सैर हो गई है रात्रि के अंधेरे से पहले आओ अब घर चलें।'' झरने की ध्वनि में सिम्मी की आवाज खो गई।

सोने जाने से पहले सिम्मी का हाथ लाइट ऑफ करने के लिए स्विच की ओर बढ़ा, वह प्रिंस के हाथ में एक लिफाफा देखकर ठिठकी, ''ये क्या है?''

''तुम स्वयं खोलकर देख लो।''

उसने प्रश्नसूचक निगाहों से लिफाफा खोल कर देखा और आश्चर्यचकित रह गई। चेहरे पर खुशी और कौतूहल की लहर दौड़ गई। उसकी खुशी की कोई सीमा न रही। क्या वास्तव में दो मेडिटरेनीअन क्रूज के टिकट दिखाई दे रहे थे? उसे विश्वास नहीं हुआ। जल्दी से विचित्र स्फूर्ति के साथ टिकट को उलट-पलट कर देखने लगी। निर्णय नही कर पा रही थी कि यह काल्पनिक है या यथार्थ। सिम्मी ने प्रिंस के गले में बाहें डाल दी, ''यह करिश्मा कैसे हो गया? अब हम एक ही नहीं बल्कि कई देश घूमने जाएंगे। सुंदर-सुंदर जगहों का भ्रमण जल और थल दोनों पर करेंगे। बड़ा मजा आएगा, मैं पहली बार समुद्र देखूंगी।'' सिम्मी की प्रतिक्रिया और उत्सुकता देखकर प्रिंस मन ही मन मुस्कराए। उन्हें कितना अच्छा लग रहा था जब सिम्मी 'थैंक यू, थैंक यू' कह रही थी।

अगले दिन से ही सिम्मी ने तैयारी आरंभ कर दी। सूटकेस पर से धूल झाड़ते हुए पुरानी हिंदी फिल्मों के गाने गुनगुना रही थी। चीजों को सूटकेस में रखते हुए हाथ तेजी से चल रहे

थे। 'खुद पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि हम हॉलिडे जा रहे हैं।'

अपनी सहेली सिंथिया और मारग्रेट को फोन पर हंस-हंस कर सिम्मी ने बताया, ''तुम्हें यकीन नहीं आएगा कि हम दो हफ्ते के लिए कल क्रूज पर जा रहे हैं और घर की चाबी मैं तुम दोनों के पास छोड़ जाऊंगी ताकि हमारी अनुपस्थिति में तुम घर तथा पौधों की देखभाल कर सको।''

''तुम बहुत भाग्यशाली हो, हैव ए गुड हॉलिडे और आकर हमें अपनी यात्रा का आंखों देखा हाल बताना'' सिंथिया ने बधाई दी।

''तुम्हें खुश होना चाहिए और प्रिंस को धन्यवाद देना मत भूलना। तुम्हारी यात्रा सुखद हो। सी यू सून।'' मारग्रेट बोली।

डार्बिशायर से साऊथ हेंपटन पहुंचने में पांच घंटे लग गए। पासपोर्ट चैकिंग और सिक्योरिटी से निकलने के बाद केबिन में पहुंच कर सिम्मी ने जूते उतारे और पलंग पर हाथ-पैर फैलाकर लेट गई, ''ताज्जुब! हॉलिडे में इतनी थकान...। मन हवा से बातें कर रहा है परंतु शरीर थककर चकनाचूर हो गया है।'' शिप के चलने के अनाउंसमेंट से उसमें नई ऊर्जा और उमंग आ गई। मचलते हुए, ''जल्दी चलो प्रिंस'' हाथ पकड़कर दौड़ती हुई डैक में सबसे आगे पहुंच गई।

समुद्री पोर्ट के विशाल रोमांचित दृश्य को देखकर दोनों दंपत्ति प्रसन्न हो रहे थे। साऊथ हेंप्टन पोर्ट का किनारा धीरे-धीरे आंखों से ओझल हो गया।

''भूमध्य सागर के बारे में केवल सुना था कि मिस्र और ग्रीस की मानव सभ्यता सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से है। अब मुझसे प्रतीक्षा नहीं हो रही है।''

लहरों की आवाज के साथ सपनों के उतार-चढ़ाव में मिलकर मधुर निद्रा न जाने कब आ गई। लिसबन, पुर्तगाल में सुबह का सूरज सुनहरी किरणों के साथ उदय हुआ। क्षितिज में फैले लाल रंग देखकर वास्कोडिगामा के देश को नमन किया। चार-पांच घंटे शहर में घूमे फिर शिप जिबराल्टर के लिए रवाना हो गया। जिबराल्टर चट्टान अपने आप में एक अद्भुत अजूबा है। मिनोर्का और कोर्सिया आईलैंड होते हुए फ्रांस पहुंच गए जहां उन्होंने समस्त दिन व्यतीत किया। फ्रांस की विश्वविख्यात सभ्यता और संस्कृति के विकास से प्रभावित होकर उन्होंने आगे की यात्रा मेडिटरेनीअन सागर में स्पेन की तरफ अग्रसर की। बारस्लोना में पूरब और पश्चिम की शिल्प कला तथा भवन निर्माण बहुत मोहक थे।

रात में तारों की छांव में पति का हाथ पकड़कर घूमते हुए सिम्मी ने कहा, ''सुनते हैं कि कश्मीर एवं स्विटजरलैंड धरती के स्वर्ग हैं। वे मैंने देखे नहीं हैं परंतु मैं कहती हूं कि धरती पर कहीं स्वर्ग तो यहीं है।''

यात्रा में तिलस्मी, आर्ट्स, शिल्प, वास्तुकला और कल्चर के समृद्ध नजारे देखते हुए यूनान देश पहुंच गए। रास्ते में गहरे नीले सागर के पानी को सूरज अपनी किरणों की सफेद चमक से पारदर्शी बना रहा था।

''प्रिंस देखो, नीले पानी में मछलियों का संसार साफ नजर आ रहा है, जिसमें छोटी मछलियों के साथ-साथ सील एवं व्हेल जैसी बड़ी मछलियां स्वतंत्रता से तैर रही हैं। संतरों के पेड़ों की कतारें, जैतून के बाग, हरे और जामुनी अंजीर से लदे पेड़, अंगूर के विनयार्ड्स और बादाम इत्यादि के रूमसागरीय पेड़ हमने पहले कभी न देखे थे।''

समुद्री यात्रा में डैक पर खड़े सूर्यास्त के अलौकिक रंगों में भीगे हुए सिम्मी को बाहुपाश में भरकर प्रिंस ने प्रेम से कहा, ''हनीमून पर हम लोग नहीं जा सके थे इसका मुझे अफसोस है लेकिन मैं अपने मन की बात बताना चाहता हूं कि वैवाहिक जीवन का यह हमारा सबसे सुंदर और विस्मरणीय हॉलिडे है। अगर मैं एक चित्रकार होता तो इस पल को मैं कैनवस पर उतार देता।''

''अब दो दिन साऊथ हेंप्टन पहुंचने में बाकी हैं। छुट्टियां समाप्त होने को हैं और मुझे सुख और दुख दोनों की अनुभूति हो रही है। कल मैं जहाज की सबसे ऊंचाई वाले डैक पर घूमने जाऊंगी।''

सुबह जल्दी उठकर सिम्मी ने देखा कि बहुत लोग समुद्री जहाज पर घूम रहे थे और कुछ कुर्सियों पर अपने-अपने तौलिए बिछाकर अपनी डैक-चेयर्स को स्विमिंग पूल के पास रिजर्व कर रहे थे। शिप पर खाने-पीने के विभिन्न प्रकार के व्यंजन मेहमानों के लिए उपलब्ध थे। अंजान एवं संभ्रांत लोग अपने-अपने हीरे-जवाहरात, घड़ियां एवं डिजाइनर्स कपड़े इत्यादि पहनकर घूम रहे थे। एलीट वर्ग के लोग बैस्ट सैलर पुस्तक किंडल पर पढ़ने में संलग्न थे। कुछ लोग लैपटॉप कंप्यूर और 'आईपैड' पर काम करते दिख रहे थे। विश्व भर से आए हुए यात्री अंग्रेजी के साथ-साथ दूसरी भाषाएं भी बोल रहे थे। युवाओं को मोबाइल पर टैक्स्ट करते अपनी दुनिया में मस्त देखकर वह मंत्रमुग्ध थी। 'कुछ तो परमानेंट गेस्ट ही नजर आ रहे हैं।'

सिम्मी स्विमिंग पूल पर बराबर-बराबर दो डैक चेयर्स पर अपने बढ़िया तौलिए बिछाकर प्रिंस को बुलाने के लिए अपने केबिन वापस चली आई।

केबिन के दरवाजे पर सिम्मी ने दस्तक दी, लेकिन कोई हलचल न हुई, ''क्या बात है? हो सकता है प्रिंस कहीं घूमने चले गए, अभी आठ ही बजे हैं।''

वह केबिन में अपनी चाबी से खोलकर स्वयं अंदर आ गई, ''अच्छा हुआ कि सुबह मैंने अपने पास चाबी ट्रैकसूट की जेब में रख ली थी।''

सशंकित निगाहों से उसने बिस्तर की ओर देखा, प्रिंस अभी सो रहे थे, ''जगाऊं या न जगाऊं? अब साढ़े आठ बज गए हैं।''

''प्रिंस उठिए, आज क्या देर तक सोने का इरादा है? क्या तबियत खराब है?'' वह परेशान हो उठी।

कोई जवाब न मिलने पर उसके हाथ-पैर ढीले होने लगे और उसने प्रिंस को झकझोरा। वह डर से कांप उठी। मन में न जाने कैसे-कैसे बुरे विचार आ रहे थे। पुनः प्रिंस का हाथ थामकर माथे को सहलाने लगी। धुंधली नजर से देखते हुए कहा, 'उठिए'। सिम्मी ने झुक कर प्रिंस का माथा चूमा। आज वह अपने मन की आवाज को सुनना नहीं चाहती थी। बार-बार उसकी नजर प्रिंस के चेहरे पर जाकर रुक जाती थी। पीड़ा से व्याकुल हुई सीने पर सिर रख पागलों की तरह प्रिंस को आवाज देती रही। उसने महसूस किया कि यह सब अंतिम बार है। ''मुझे क्या करना चाहिए?'' मस्तिष्क अनेक दिशाओं में काम करने लगा, नए-नए विचार उसके मन में उभरने लगे। अपने सफेद स्कार्फ से प्रिंस का चेहर ढक दिया और सिम्मी दहाड़कर रोने लगी।

''किसी को इस बात की खबर नहीं लगनी चाहिए।'' यह सोचकर वह चुप हो गई। ''यदि किसी को सच्चाई का पता चल गया तो प्रिंस की आखिरी इच्छा कैसे पूर्ण हो पाएगी? साधारण परिस्थिति में तो डॉक्टर जांच करते और परीक्षण के बाद आवश्यकतानुसार प्रिंस की 'विल' के अनुसार मृत शरीर को मैनचेस्टर मैडिकल कालेज के अनोटमी विभाग में भेज देते।''

अपने दिल की घबराहट को छिपाती हुई वह कमरे की कुर्सी पर बैठ गई और प्रिंस की 'विल' के बारे में विस्तार से सोचने लगी, ''कैसे उनकी इच्छा को पूरा कर सकूंगी? जहाज कल इंग्लैंड पहुंचेगा। कल तक कैसे छिपेगी यह बात?' उसे अपनी प्रत्येक धड़कन सुनाई दे रही थी।

दरवाजे पर खटखटाहट सुनकर सिम्मी कांप गई। अब मैं क्या करूं? दरवाजे की ओर देखते हुए घबराहट में माथे से पसीना पोंछने लगी। मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। दूसरी बार दस्तक सुनने पर उसने धीरे से केबिन का दरवाजा खोलकर बाहर झांककर पूछा ''हां क्या बात है?''

''मैडम आप दोनों नाश्ते पर नहीं आए। इससे पहले कि हम नाश्ते की सर्विस बंद कर दें, आप ग्यारह बजे तक आकर नाश्ता अवश्य कर लीजिएगा।''

अपने होठों पर उंगली रखकर बोली ''साहब सो रहे हैं उन्हें डिस्टर्ब नहीं करना। यदि आप चाहें तो हमारे नाश्ते की ट्रे यहीं कमरे में ला सकते हैं।''

वेटर जल्दी से कदम रखता हुआ वापिस चला गया और थोड़ी ही देर में नाश्ते की ट्रे लेकर आ गया। सिम्मी ने इशारे से मेज पर नाश्ता रखवा लिया। चेहरे की घबराहट और परेशानी को उसने छिपाए रखा। उसने वेटर से आंखें मिलाए बिना ''थैंक्स'' कहा तथा केबिन का दरवाजा जल्दी से बंद कर लिया। केबिन की सब खिड़कियां बंद कर दी ताकि रोशनी की किरण भी न पहुंच सके।

''शिप के कर्मचारियों और पोर्टर्स से कैसे व्यवहार किया जाए?'' ''कितना बताया जाए और कितना नहीं?'' वह सभी से सशंकित हो रही थी। मैं किससे मदद लूं? किस पर यकीन करूं? एक हिंदुस्तानी पति-पत्नी जो अक्सर खाने की मेज पर मिला करते थे उनका केबिन नंबर भी मुझे मालूम नहीं। प्रबंधकों से सवाल कैसे पूछूं? डैथ सर्टिफिकेट पर कौन हस्ताक्षर करेगा?... शिप का या हॉस्पिटल का डॉक्टर?

इन सब उलझनों में कर्तव्य और प्रिंस की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए आत्मविश्वास और भी दृढ़ होने लगा। इसी चिंता में उसकी दिमागी हालत बिगड़ने लगी। बैठे-बैठे कभी उसे नींद आ जाती और फिर भयभीत होकर घबरा कर उठ जाती थी।

चुप रहना ही बस एक उपाय सूझ रहा है। इस कठिन समय में कोई निर्णय भी नहीं ले पा रही हूं। ऐसा लगता है कि विवेक, बुद्धि और चेतना सब सो गए हैं। कैसे करूं? प्रिंस भी तो नहीं है सलाह देने के लिए...। कितनी मुश्किल हो गई है? इस दुर्गम परिस्थिति से परेशान और क्रोधित होकर आक्रोश में कोई गलत कदम न उठा लूं? मुझे सोच समझकर व्यवहार करना होगा? पानी के जहाज और इम्मिग्रेशन के नियम मुझे मालूम नहीं हैं कि वे मृत शरीर को मोर्चरी में रखेंगे या जहाज से पानी में दफना देंगे? मुझे हर हाल में प्रिंस की 'विल' को पूरा करना है। उसके मृत शरीर को मेनचैस्टर हॉस्पिटल के एनाटमी डिपार्टमेंट को सुपुर्द करना है। यह केवल मेरा पत्नी धर्म ही नहीं बल्कि मानवता का कर्तव्य भी है कि प्रिंस का मृत शरीर 'एनाटमी डिपार्टमेंट' में समय से पहुंच जाए। उनकी अंतिम इच्छा पूरी करने में कोई भी कमी नहीं होनी चाहिए। मैं अपनी क्षमता और पूर्ण विश्वास के साथ इस काम को करूंगी। हालांकि ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पक्ष में इस समय कुछ भी नहीं है। ईश्वर मुझे शक्ति प्रदान करें। रह-रहकर प्रश्न मन में उठ रहे थे...

''चंद दिनों का साथ कितना सुहाना था। सचमुच क्या ये यात्रा हम दोनों को बिछुड़ने के लिए ही इतना करीब लाई थी? ऐसा कभी सोचा न था कि प्रिंस का साथ ऐसे अचानक छूट जाएगा...।''

धरती की तरफ देखते-देखते सिम्मी की आंखें अनायास ही ऊपर आसमान की ओर उठने लगीं लेकिन अंतरिक्ष में बस सब कुछ खाली था। ''इस क्रूर अनहोनी के लिए मैं किसी को दोषी नहीं ठहरा सकती। किस्मत के सामने किसका बस चलता है?... यहीं आकर बीसवीं सदी के साइंस और विज्ञान के युग में भी इंसान को प्रकृति के सामने हार माननी पड़ती है।''

साऊथ हेंप्टन का पोर्ट पास आते देखकर सिम्मी के अश्रु बिंदु गिरने लगे। स्ट्रवर्ड्स से क्रंदन पूर्ण कांपते ओठों से धीमी आवाज में बोली, ''मेरे पति के लिए आप कृपया ऐम्बूलैंस बुला दीजिए.........।''

3 डोर्मी क्लोज ब्रमकोटे नॉटिंघम
एनजी 9 3 डीई यूके

नींद में जाने के दिन गए

जहीर कुरेशी

सुप्रसिद्ध गजलकार जहीर कुरेशी के सात गजल संग्रह प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। स्वतंत्र लेखन।

दादी के किस्से सुनने-सुनाने के दिन गए
परियों के साथ नींद में जाने के दिन गए

अब एकटक चकोरी भी तकती नहीं है चांद
रातों को चांदनी में नहाने के दिन गए

गुस्से के घूंट पी के भी हंसते रहे पिता
गुस्से को व्यक्त करके दिखाने के दिन गए

सच्ची खबर भी उड़ गई अफवाह की तरह
अफवाह पर विराम लगाने के दिन गए

प्रतिभा के साथ-साथ प्रबंधन भी चाहिए
प्रतिभा से अपने लक्ष्य को पाने के दिन गए

यदि बच गई है जान तो मत खोलिए जुबान
अपराधियों को दंड दिलाने के दिन गए

मस्ती की पाठशाला भी सीमित है 'देह' तक
मित्रों के साथ जश्न मनाने के दिन गए।

द्वंद्व सिर उठाते हैं

एक-एक रन ले कर, 'सैकड़ा' जमाते हैं
लोग अपनी जीवट से, ये भी कर दिखाते हैं

स्वप्न-हीन होती है, उनकी नींद की दुनिया
वो जो खुद को मेहनत से अनवरत थकाते हैं

रोज मिलते रहने से, याद हैं कई चेहरे
वर्ना.... लोग अपनी भी शक्ल भूल जाते हैं

संग नौजवानों के दौड़ तो नहीं सकते
बूढ़े, नौजवानों का हौसला बढ़ाते हैं

हां, वो लोग मोती का मूल्य तय नहीं करते
जो समुद्र के तल से सीप चुन के लाते हैं

हम भी अब अंधेरे के साथ से नहीं डरते
मन में उनकी यादों के दीप झिलमिलाते हैं

ज्वार और भाटे की कशमकश है सागर में
आदमी के भीतर भी द्वंद्व सिर उठाते हैं।

108, त्रिलोचन टॉवर, संगम सिनेमा के सामने,
गुरुबख्श की तलैया, स्टेशन रोड,
भोपाल-462001 (म.प्र.)

मेरे दर्द को पहचानती है

ज्ञान प्रकाश विवेक

प्रसिद्ध लेखक ज्ञानप्रकाश विवेक के दस कहानी संग्रह, पांच उपन्यास, चार गजल संग्रह तथा दो आलोचना पुस्तकें प्रकाशित। पूर्णकालिक लेखन।

वो जब छलनी से पानी छानती है
तो पानी की अदाएं जानती हैं

ये जो टूटी हुई चप्पल पड़ी है
मेरे पैरों को अपना मानती है

वो लड़की भीगती है बारिशों में
किसी के सर पे छतरी तानती है

जिसे तू रेत पे रख के खड़ा है
वो कश्ती तैरना भी जानती है

गरीबों की भी है इक राजधानी
जो कुछ कहती नहीं पर ठानती है

खड़ी है मां मेरा माथा पकड़ के
वो मेरे दर्द को पहचानती है

अगर मैं बंद कर दूं खिड़कियों को
हवा दस्तक भी देना जानती है।

पहले जैसी वो बात नहीं

इस अजनबी-से नगर में कहीं ठहर जाऊं
रुके जो रेल तो यारो, यहीं उतर जाऊं

सड़क पे रात गए घूमना नहीं अच्छा
सिपाहियों ने कहा है मैं अपने घर जाऊं

लगा हुआ है यहां सारे शहर में कर्फ्यू
खिलौने बेचने आया हूं मैं किधर जाऊं

वो एक बर्फ की सिल थी जो बन गई पानी
मेरी मुराद थी मैं उसको बेचकर जाऊं

लिबास झूठ का मैंने उतार फेंका है
अब अपने आपको देखूं अगर तो डर जाऊं

तमाम दोस्तों में पहली जैसी बात नहीं
खड़ा हूं सोचता छुट्टी के दिन किधर जाऊं

यही सवाल है मेरे जेहन में सबसे बड़ा
कि मैं जमीर को मारूं या आप मर जाऊं।

1875, सेक्टर-6, बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा)

प्यार में जीना अच्छा लगता है

प्रफुल्ल रंजन 'साबिर'

कवि और गजलकार प्रफुल्ल रंजन 'साबिर' चंदौसी में भारतीय जीवन बीमा निगम में कार्यरत हैं। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

आंखों को अश्कों से भरना अच्छा लगता है
आपसे दिल की बातें करना अच्छा लगता है

मुझको प्यार की हद से गुजरना अच्छा लगता है
और तुझे वादे से मुकरना अच्छा लगता है

दुनिया की तो फितरत ही नफरत है पर हमको
प्यार में जीना, प्यार में मरना अच्छा लगता है

पहले खिलना फूल की सूरत उसके दामन में
और फिर उसके हाथ बिखरना अच्छा लगता है

जिस दिन से उम्मीद बंधी है तेरे आने की
हर पल मुझको सजना-संवरना अच्छा लगता है

बरसों पहले छोड़ चुका है शहर को तू लेकिन
अब भी गली से तेरी गुजरना अच्छा लगता है

खाली बैठे सोचते रहना अच्छा नहीं 'साबिर'
दुनिया में कुछ करके गुजरना अच्छा लगता है

सहायक प्रशासनिक अधिकारी,
भारतीय जीवन बीमा निगम, चंदौसी

पड़ गए सावन के छींटे

शिवानंद सिंह 'सहयोगी'

शिवानंद सिंह सहयोगी साहित्य की कई विधाओं गीत, गजल, दोहे, दुमदार दोहे, कुंडलिया, कविता, कहानी, लघुकथा में लेखन। 12 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

सावन के छींटे पड़े महक गए तालाब
आंगन में पसरा पड़ा पानी का सैलाब
धर्म वर्ग में बंट गया वैश्विक सकल समाज
पूरा बांटा धर्म ने आधा आया राज
अपनी-अपनी जगह पर बेहतर है हर बात
दिन को यदि हम दिन कहें और रात को रात
काबिज है भूमाफिया जो-जो बची जमीन
लोकतंत्र बस देखता केवल स्वप्न हसीन
बहुत दिनों से है पड़ी बिना पानी की झील
हरीतिमा गायब हुई मन संवेदनशील
उजड़ चुका है झील से जलकुंभी का पांव
पंछी को मिलने लगी फिर से अपनी छांव
इस समाज पर आजकल पर्यावरण कलंक
वायु प्रदूषण रोज ही मार रहा है डंक
जहां जलाशय का हुआ अभिनव शुभ इंतजाम
पंछी का कलरव खिला-खिला फूल अविराम
जीवन मतलब भोग है जल का मतलब कोक
यही आधुनिक प्रगति है खतरे में है लोक।

'शिवाभा', ए–233, गंगानगर,
मेरठ–250001 (उ. प्र.)

मन की तपन पड़ गई फीकी

कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

राजस्थान वित्त निगम से सेवा निवृत्त डॉ. कृपा शंकर शर्मा 'अचूक' की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन का लंबा अनुभव और अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

मन की तपन पड़ गई फीकी, तन तपता रहता
जिसने चाहा उसने पाया
अक्सर ही सुनते
खाली माली है बगिया का
फूल रहा चुनते
उमर बिता दी अब तक सारी ज्यों पानी बहता
रिश्तों नातों के बोझों से
दबता नित जाता
भूल गया यह सारी बातें
याद न कुछ आता
गरमी के नित गरम थपेड़े रोज रहे-सहता
नस-नस में आतप सा जलता
तपिश देख छाती
उमस रहे छाया में भारी
सांसे अकुलाती
गए सूख नदिया नद सारे मन ही मन कहता
आंख ठगी सी ठगी देखती
गांव गली द्वारे
आग लगी कैसी पुरवा में
दिन में ही तारे
बना महल 'अचूक' सपनों का सपनों में ढहता
मन की तपन पड़ गई फीकी तन तपता रहता।

38-ए, विजय नगर-1, करतारपुरा, जयपुर-302006

जरा सी बात पे इतना...

डॉ. कैलाश निगम

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित कवि-गजलकार, लेखक डॉ. कैलाश निगम की नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पूर्णकालिक लेखन।

गजब की लू है, परिंदों का हाल देखो तो
पनाह देती नहीं कोई डाल देखो तो

है खुश्क-खुश्क सभी का रुमाल देखो तो
अपनी बरबादी पे तर्जे-मलाल देखो तो

किसी को कैद में रखना जिन्हें पसंद न था
बिछा रहे हैं वही लोग जाल देखो तो

किसी ने राह से पत्थर हटा दिया शायद
जरा सी बात पे इतना बवाल देखो तो

सिवाय अपने किसी की तरफ नहीं देखा
वो प्रजातंत्र की ओढ़े है खाल देखो तो

किसी के तन पे न कपड़ा न पेट में रोटी
ये मेरे देश के हैं नौनिहाल देखो तो

खुद उनके गांव में जाकर गरीब लोगों से
जुबां पे उनके हैं क्या-क्या सवाल देखो तो

उन्हीं के कांधों पे रहती है शाल रेशम की
नहीं था जिनको मयस्सर रुमाल देखो तो

ये इंकलाब भी कैसा है, इस जमाने का
कि करते काग की सेवा मराल देखो तो

फलक को छूते हैं 'कैलाश' उठ के अब बौने
ये राजनीति का हुस्ने-कमाल देखो तो।

4/522, विवेक खंड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010

समय का सौदागर

राजेंद्र निशेश

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित राजेंद्र निशेश की ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। व्यंग्य, कविता और बाल साहित्य में लेखन। वर्तमान में पूर्णकालिक लेखन।

बूढ़े पहाड़ों पर
सफेद किरणों की चादर ओड़
बर्फ ने अपना घर बसाया है
सितारों ने शब्दों का मौन चुराया है
गुनगुनी धूप ने लो स्पर्श-राग गाया है
चांद की पलकों पे एक लम्हा ठहरा है
बजती बांसुरी का सुर कितना गहरा है
निर्झर की लहरी पर हवा गुनगुनाती है
सागर की लहरें भी वीत राग गाती हैं
आशाओं के पनघट पर पंछी चहचहाते हैं
मौन के कागज पर सुमन गीत लिख जाते हैं
आंख के नमकीन अश्रु कभी दोस्त बन जाते हैं
अंधेरे और उजाले की टंगी झीनी चदरिया है
समय का सौदागर भी कैसा बावरिया है।

शिशु की किलकारी ने

एक शिशु की किलकारी ने
मेरे ओठों पे मुस्कान धर दी है
चिड़िया के एक बच्चे ने
अपनी पहली उड़ान भर ली है
सूरज की प्रथम किरणों ने
गुलाबी अंगडाई के साथ
खिलते गुलाब का माथा चूमा है
तरंग में इठलाया हुआ दिन
समय की लहर के साथ घूमा है
एक हलधर ने अपना खेत बोया है
धरती के गर्भ में
अभी चैन से बीज सोया है
आकाश के बिस्तर पर
अभी चांद-सितारे लोटे हैं
सागर, पहाड़, दरिया, झरने सभी
पृथ्वी के अनेक बेटे हैं
अनंत की नदी में
कोई स्वप्न उतर आया है
आंखों की पुतलियों ने
प्रथम प्रेम-गीत गाया है।

2698, सेक्टर 40-सी, चंडीगढ़–160036

अगर शब्दों का रंग होता...

दीपक नरेश

डॉ. दीपक नरेश तुर्कमेनिस्तान के अशगाबाद में द आजादी इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज में प्राध्यापक हैं। मीडिया में नौकरी और यूजीसी के दो रिसर्च प्रोजेक्ट से जुड़े रहे। दो पुस्तकें प्रकाशित। फिलहाल हिंदी-तुर्कमेन शब्दकोश पर काम जारी।

कैसा होता शब्दों का रंग
अगर शब्दों का रंग होता
दुख को रंगते काले रंग में
जो फैला है हमारे दृश्य के फैलाव के भी पार
धरती की सरहद के बाहर है केवल काला रंग
ऐसा दावा है वैज्ञानिकों का
देखी अनदेखी सत्ता का जन्म
कालिमा के गर्भ से ही होता है
ऐसा कहना है धर्मग्रंथों का
काली अंधियारी रात में पैदा होकर
सांवरे कृष्ण ने
साक्षात चराचर जगत में कर दिया था
इस रंग की अहमियत को साबित
प्रत्यक्षम् किम प्रमाणम्,
ज्वाला भी अपने अस्तित्व को
करती है विलीन
राख के स्याह अंधकार में
अपने गर्भ की ऊर्जा को
प्रकाश में तब्दील करने के उपरांत
काले रंग की अनादि शक्ति को
पहचाना जाता है हर टोटके में
गोया की काला रंग हमें बचाएगा
हर बुरी नजर से
मैं भी इस कविता के माथे पर
टांक रहा हूं एक टीका
काले रंग का
अपनी कविता में छिपे सुख के भावों को
बचाने की खातिर
वो सुख... जिसका रंग भी
पानी के रंग का होता
अगर शब्दों का रंग होता तो!

एस.आर.ए.–25-ए, शिप्रा रिवेरा, इंदिरापुरम, गाजियाबाद–201010 (उ.प्र.)

सीख रहा हूं

अमित कल्ला

युवा कवि-चित्रकार अमित कल्ला के दो काव्य-संग्रह प्रकाशित। भारत के विभिन्न शहरों सहित कई देशों में सामूहिक चित्र प्रदर्शनियों में भागीदारी। पुरस्कृत कवि-चित्रकार।

बादलों की
प्रदक्षिणा से
सीख रहा हूं
अंतहीन
भिगोने की कला
क्या
इस अनुभूति में
अंतर्लीन होना
साक्षात्कार की
सहमती है
या फिर
थाह किन्ही
कल-कल
स्मृतियों की।

अयोग्य हूं

अब तो
घटाना है
हो सके जितना
जोड़ना बस कि नहीं
अयोग्य हूं
इन विवस्थाओं में
अनुपस्थित
अपने गंतव्य रहित
थोड़ा पीछे लौटकर ही
समझ सकता कोई
इन बातों को
आगे जाने पर
निश्चित ही
वह भी
शिकार
अनुकरण का।

आकाश ही अंतरिक्ष है

इतना
आसान नहीं
बांधना
आकाश को
उसका नीलापन
इक भूल
क्या-आकाश ही
अंतरिक्ष है
अंतरिक्ष
हमारे अंदर तक
खींचे आकाश का
उत्कर्ष जो
या फिर
सूर्य-रश्मियों से
उत्पन्न
कोई
ब्रह्माकार वृति केवल।

छूती नहीं

चिड़िया भी
पहाड़ों-सा रंग बदलती
हवा जानती है
छूती नहीं उसे
पक्का होने तक ठीक वैसे ही
जैसे तितली
बचती
अपने घर की ओर
लौटते वक्त
खजूर के
नुकीले पत्तों से।

43, जोशी कॉलोनी, गली नं.-15,
आदर्श नगर, टोंक फाटक, जयपुर-302013

जननी

विमला पांडे

लेखिका की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं व समाचार-पत्रों में कविताएं व लघु-लेख प्रकाशित। कहानी संग्रह, कविता संग्रह प्रकाशनाधीन।

नारी स्रोत है शक्ति की, निर्मात्री है मानवता की
जलधि है प्रेम की, ऊर्जा है संसार की

जननी है भावी पीढ़ी की, पोषिका है परिवार की
आधारशिला है वंश की, शिक्षिका है संस्कार की

सहती है आघातों को, व्यंग्य के कटु बाणों को
रहकर वह मर्यादा में, झेलती है सब त्राणों को

होती है वह बेटी, फिर पत्नी बनती है
फिर जननी बनकर भी, प्यार ना वो पाती है

नारी के शोषण से, मानवता मर जाएगी
वात्सल्य, करुणा और दया, की नदिया सूख जाएगी

सतीत्व का होगा हनन, संस्कार लुप्त हो जाएंगे
बढ़ जाएगा यदि दुष्कर्म, तो पापी सिर उठाएंगे

वीर भोग्या वसुंधरा है, वीर नररत्नों की जननी है
वीरों से पालित-पोषित, वह वीरों से संरक्षित है

परिवार समाज की देन है, मर्यादा में रहें हम
रिश्ते, नाते और संबंधों को, मर्यादित हो निभाएं हम

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'
इसी उक्ति को सार्थक कर, धरा को स्वर्ग बनाएं हम।

द्वारा जगत सिंह भाकुनी, 'भाकुनी निवास',
सी-78, गली नं. 7, दुर्गा माता मंदिर के सामने,
वेस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110092

कुरुक्षेत्र

बिमल सहगल

पेशे से राजनयिक विमल सहगल पिछले चालीस वर्षों से साहित्य और कला संबंधी लेखन में सक्रिय। कविता लिखने के अलावा पेंटिंग, स्केचिंग और मूर्तिकला के क्षेत्र में भी सक्रिय।

अनंत क्षितिज के तेज का मुखड़ा
मेरे हिस्से की धूप का यह टुकड़ा
मेरी खिड़की से झांक
अंतःकरण के अंधकार को फांक
जग-पीड़ा का बोझ भुला
उन्मुक्त अंबर में मुझे उड़ा चला
जहां अमृत-वर्षा में भीग रहा
इंद्र-धनुष का झूला

नहीं लौटना मुझे, ऐ धरा खोल दे बंधन
बस रहना है यहीं जहां नहीं पीड़ा का स्पंदन
लुभा रहा बादलों का बेलगाम तैरता कारवां
पंछियों की उड़ानों पर हर्षाता आसमां

पर निश्वासों की डोर से लटक
अपने कृतव्य-कुरुक्षेत्र में लौटना होगा
अधिकारों की लड़ाई में फिर से जूझना होगा
उड़ना है मुझे तो सिर्फ समूह में
इस जाल को एक साथ ले उड़ना होगा
कौरव संख्या-बल को फिर छेदना होगा
एक नया अभिमन्यु बन
वही पुराना चक्रव्यूह भेदना होगा।

समय के हाथ

हथकड़ियों सरीखे
मानव कलाईयां पकड़े
कहीं दीवारों को जकड़े
या फिर
शहर के
चौक में जड़े
किसी मीनार पर ही चढ़े
सशक्त हाथ
समय के
निरंतर चलते
सब की
चाबी भरते

घंटी बजा
सुबह-सुबह
खौफ ये जगाते
और
जीवन-चक्की
में फंसा
दिन भर
दिलासा देते
रात के
इंतजार में
भरमाते
काल-चक्र
के ये तंत्र-यंत्र
नियति मार्ग
पर खदेड़ते।

जीवन संध्या

जीवन-संध्या के इस
सुरमई प्रकाश से उज्ज्वल
अपने कर्मों की किताब
बांचने बैठा हूं
क्या खोया, क्या पाया
हिसाब आंकने बैठा हूं

हाय! यह कैसा माया-जाल है!
उपलब्धियों से लबा-लब खाते अचानक
नव-बोध के पैमाने से रिक्त मिले
पश्चाताप रहा जिन पर उम्रभर
आज गौरवमयी वही मिले

नजरों से दुविधा के जाले हटा
एक नए तेज से झांका है
कुछ नए संदर्भ जुड़े हैं
नए मूल्यों को आंका है

यह कैसा मायाजाल है
यह मायाजाल है, या फिर वह मायाजाल था
जिसे भेद मैं एक नई मंजिल की राह पर
आ निकला हूं जीवन के इस संध्या-काल में।

ई–602, पंचशील अपार्टमेंटस, प्लाट नं.-24,
सेक्टर-4, द्वारका, नई दिल्ली–110078

पुस्तक-समीक्षा

सामाजिक परिवेश की भावनात्मक बुनावट

रमेश गौतम

प्रतिष्ठित नवगीतकार, लघुकथाकार एवं समीक्षक रमेश गौतम प्रवक्ता पद से सेवानिवृत्त। पत्रकारिता के अनुभव के साथ-साथ अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

निर्मला सिंह के ताजा कहानी संग्रह 'एक कप काफी' की कहानियां समकालीन सामाजिक परिवेश की भावनात्मक बुनावट करती हैं। पुरुष वर्चस्ववाद के विरुद्ध नारी का अस्तित्व बोध बहुत सादगी और रचनात्मक भूमिका के साथ उभर कर सामने आता है। विद्रोह में विनम्रता का विचित्र संयोग, नर-नारी संबंधों की अहंकार रहित आधारशिला रखता है, विशेषकर दांपत्य जीवन में आई कड़वाहट के लिए मिठास बनता है।

निर्मला सिंह मूलतः पारिवारिक संवेदना की कथाकार हैं। उनकी दृष्टि भारतीय परिवारों की अंतर्कथाओं को पूरी संवेदना के साथ पकड़ती है, परिवेशगत सुख-दुख, महत्त्वाकांक्षाएं, संकीर्णताएं और विडंबनाएं उनकी कहानियों में स्वाभाविक रूप से उभरती हैं। मनुष्य के अंतर्मन में पलती कुटिलताएं, घटना, स्थितियों और संवादों के माध्यम से उजागर होती हैं किंतु अपने अंतिम छोर पर कथानक इस बिखराव के विरुद्ध सघन और सकारात्मक संदेश छोड़ता है। रचनात्मकता जिस जीवन की अपेक्षा करती है, वैसी विकारहीन स्थितियों को संगठित कर पाना मुश्किल होता है पर कथाकार निर्मला सिंह ऐसी स्थितियों को अपनी सहज प्रस्तुति के बल पर रूपाकार करती हैं जहां उनके पात्र बिना अहमन्यता के संवाद करते हैं और पाठक की इन कहानियों से तरल आत्मीयता बनती है।

भारतीय समाज के परिवेशगत अनुभवों को वे बड़ी कुशलता के साथ कहानियों में रूपांतरित करती हैं। समाजगत यथार्थ की बहुआयामी छवियां इन कहानियों के माध्यम से बनती बिगड़ती हैं चाहे वे दांपत्य जीवन के माधुर्य संबंधों पर घिर आई जटिलताएं हों या पुरुष वर्चस्ववाद के पारंपरिक ढांचे में खंडहर होती पुरुष की मदांधता, प्रतिपक्ष में खड़ी नारी की स्वर चेतना या भारतीय समाज में तेजी से फैल रही सांप्रदायिकता या आतंकवादी स्थितियों के बीच लहूलुहान होती मानवीयता अथवा व्यवस्था के भयावह प्रपंच हो सभी विसंगतियों पर कहानीकार की समग्र दृष्टि है। हां, यदि रचनात्मकता के साथ न्याय न हो तो पाठक विचलित हो उठता है। सब कुछ कह देने की आवेगमयता कथापात्रों की स्वाभाविकता व प्राकृत स्थितियों को प्रभावित करती है।

संग्रह में कुल तेरह कहानियां हैं, जो जीवन स्थितियों के यथार्थ और भावनात्मक द्वंद्व को प्रस्तुत करती है, सभी कहानियों में सामाजिक संदर्भ अपनी अर्थवत्ता के साथ उपस्थित होते हैं। संग्रह की पहली कहानी 'एक कप काफी' अपने शीर्षक के अनुरूप संवेदना से परिपूर्ण है, कहानी में पुरुष, स्त्री की संपूर्णता का मूल्यांकन करने में अपनी हेठी समझता है। वह भूल जाता है कि देह की मधुरता से आगे भी नारी का अस्तित्व अपनी रचनात्मक भूमिका रखता है। पुरुष अपनी वर्चस्ववादी संकीर्णताओं से बाहर निकल कर सोच ही नहीं पाता। कथा नायिका पुरुष की इसी सोच को सकारात्मक पहल कर बदलती है, जिसके सुखद परिणाम निकलते हैं।

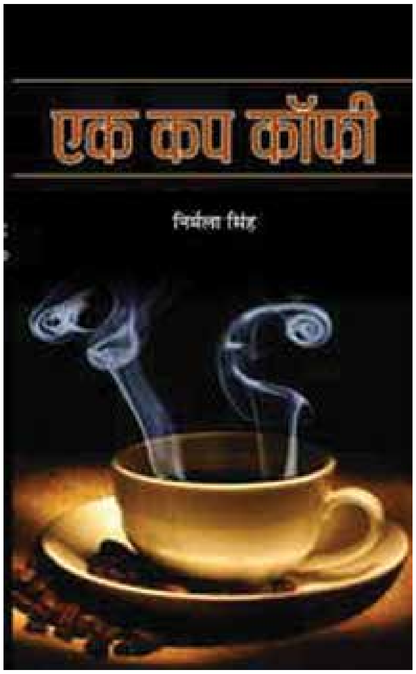

पुस्तक : एक कप काफी (कहानी संग्रह)
लेखिका : निर्मला सिंह
प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006
मूल्य : 200 रुपए

पूर्वाग्रहों के मकड़जाल को साफ करती इस कहानी का उद्देश्य पाठक के मन पर गहरा प्रभाव डालता है। 'मंजर' कहानी में आतंकवादी त्रासदी, 'बूंद से सागर' कहानी सांप्रदायिक दंगों की आग उगलती सोच और उसके दुष्परिणामों को उद्घाटित करती है।

आजादी के बाद सांप्रदायिक दंगे हमारी नियति बन गए और इसी दुर्भावना का लाभ उठाकर यहां आतंकवादी घटनाओं को प्रश्रय मिला। सांप्रदायिक सोच रखने वालों की संख्या बढ़ी और समाज का हित चिंतन करने वाले कम होते चले गए। 'आंखें' कहानी मानवीय संवेदना का प्रतिनिधित्व करती है तो 'बेटी की बारात' हमारी संवेदनहीनता का पर्दाफाश करती है। 'एक मुलाकात' कहानी प्रेम संबंधों की व्याख्या, देह से इतर करती है। प्रेम की सफलता का आधार केवल विवाह नहीं, संवेदना है, जो रिश्तों को कभी मरने नहीं देती। विवाह बंधन में न बंध पाने की छटपटाहट भी संवेदना के स्तर पर सकारात्मक हो जाती है।

वहीं 'पंखहीन' कहानी मृतप्रायः रिश्तों की बानगी है। कथाकार आत्मीय संबंधों की विखंडित होती मनोदशा का मार्मिक आंकलन करती है। अति आधुनिकता ने सभ्यता को भौतिक ऊंचाइयों पर तो पहुंचा दिया पर नैतिकता का आधार नीचे से खींच लिया। मां-बाप की दम तोड़ती अपेक्षाओं के दर्द को कहानी पूरी निष्ठा से बयां करती है। रिश्तों के पाखंड को ढोते बुजुर्गों के हिस्से में सिवाय संताप के कुछ और शेष नहीं। बेटों की सोच उपयोगितावाद के सांचे में ढल गई फिर मां की ममता और पिता के संघर्ष का क्या मतलब, वे भूल जाते हैं कि पिता का संघर्ष ही उनका वर्तमान है। दोनों का दुलार न होता तो पुत्र विदेश के बजाए छोटे शहर के किसी बाजार में फेरी लगा रहा होता।

इसी तरह 'मां', 'आशीर्वाद', 'संदूक', 'वार्ड नं. 2' व 'विडंबना' निम्न मध्यवर्गीय जीवन की जर्जर स्थितियों को उजागर करती हैं। क्रमशः छोटे बच्चों के पालन-पोषण में निम्न वर्गीय मां की लाचारी। एक ही परिवार के बच्चों के प्रति बड़ों के भेदभाव की प्रवृत्ति। बेटे के द्वारा भ्रष्ट आचरण से जुटाया धन और बूढ़ी मां के हिस्से में सूखी रोटियां। दूसरी औरत पर सम्मोहित पति की पत्नी के प्रति अवहेलना और उसके दुष्परिणाम आदि विसंगतियों पर कटाक्ष किया गया है। अपने कथा चरित्रों के द्वारा कहानीकार पाठक के अंतर्मन को झकझोरती है पर कहीं-कहीं लेखकीय हस्तक्षेप की अधिकता कहानियों को कमजोर बनाती है। कुछ कहानियों में वैचारिक संदर्भ चरित्रों की प्रकृति के साथ बेमेल हो जाते हैं परंतु रचनाकार के सरोकार प्रभावी ढंग से सामने आते हैं। दरअसल अपने सामाजिक संबंधों से ही मनुष्य परिभाषित होता है किंतु समय के साथ रिश्तों की इसी बारीक बुनावट पर गहरा संकट आया है। आत्मपरक दृष्टि और संवेदना शून्य दौड़ में रिश्तों का मर्म कहीं पीछे छूट गया है। निर्मला सिंह की कहानियां रिश्तों की इसी उलझी बुनावट को सुलझाने की कोशिश करती हैं।

भाषा, मुहावरे और प्रतीकों को पकड़कर कहानी में उतरना निर्मला सिंह की शिल्पगत विशेषता है। काव्यात्मक वाक्य विन्यास संप्रेषण को तरल बनाते हैं। कहानियों की सकारात्मक दृष्टि, पारदर्शिता और पराजित न होने की अदम्य लालसा इन्हें पाठक के निकट ले जाती हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

लेखकों से निवेदन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' में सुधी पाठकों और रचनाकारों के मौलिक और अप्रकाशित लेख, कहानी, कविताएं आमंत्रित हैं। पत्रिका के आगामी अंकों में लेख भेजते समय लेखक इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वे अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी लेख के साथ भेजें। आपका परिचय आपकी रचना के साथ प्रकाशित किया जाएगा। बिना संक्षिप्त जीवन परिचय के हमारे लिए आपका लेख पत्रिका में प्रकाशित करना संभव नहीं होगा।

हमें अपने पाठकों को यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि 'गगनांचल' का आगामी अंक हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद पर आधारित होगा। मुंशी प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व से जुड़े अनछुए पहलुओं को अगर आप हमारे पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं, तो यथाशीघ्र उनके जीवन और साहित्य से संबंधित लेख हमारे पास भेजें। लेख भेजते समय उससे संबंधित चित्र अवश्य भेजें। रचना भेजते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि वह पत्रिका के स्तर और गरिमा के अनुरूप हो। रचना 3000 से 5000 शब्दों के बीच हो, उससे अधिक नहीं। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के संदर्भ में संपादक मंडल का निर्णय अंतिम और मान्य होगा। कृपया अपने लेख 25 दिसंबर, 2014 से पहले भेजें।

कृपया अपने लेख एवं सुझाव निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

संपादक, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

एवं

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी), भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310
ई-मेल : **ddgas.iccr@nic.in** तथा **pohindi.iccr@nic.in**

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पाँच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनाञ्चल (हिन्दी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है । सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरु व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं । प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं । इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है । परिषद् ने विश्व साहित्य के हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है ।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है । अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है । भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गये हैं ।

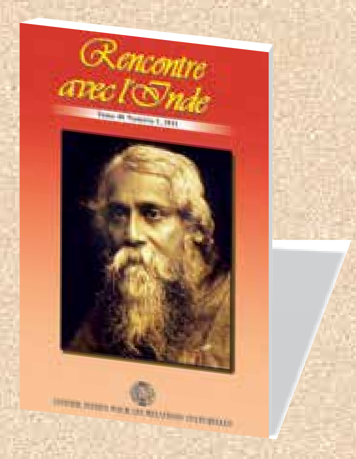

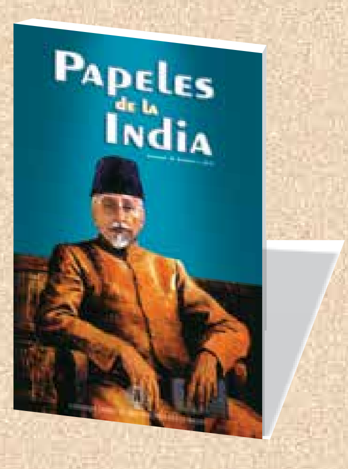

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

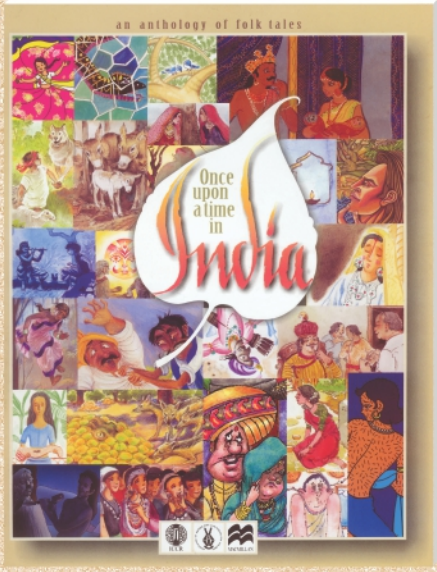

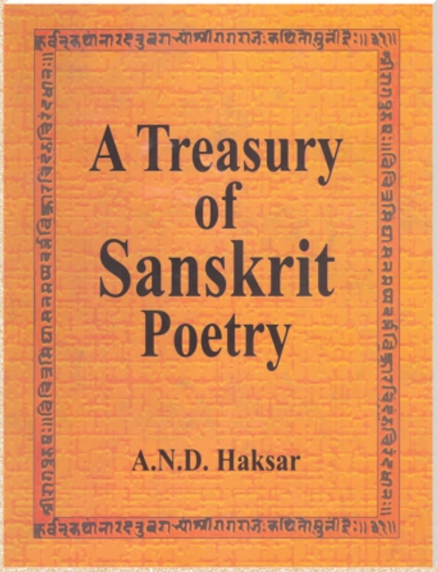

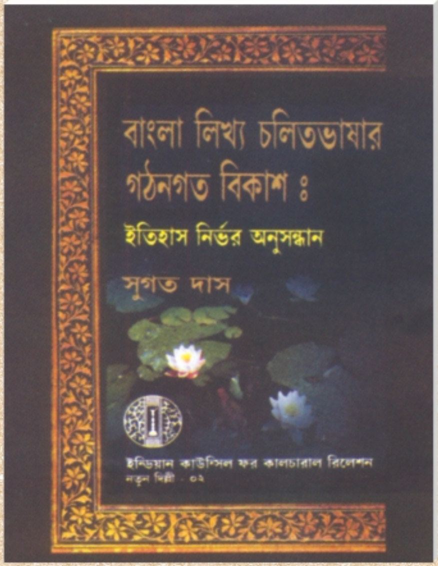

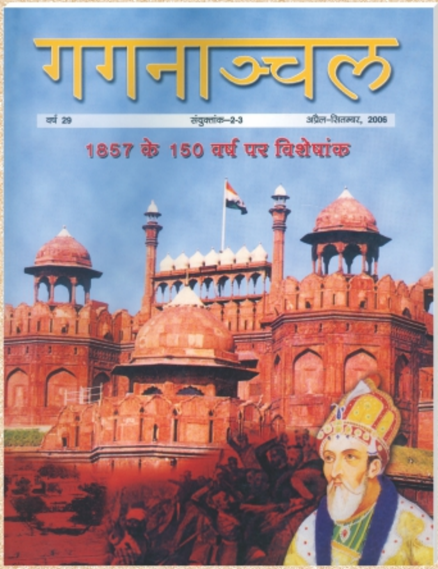

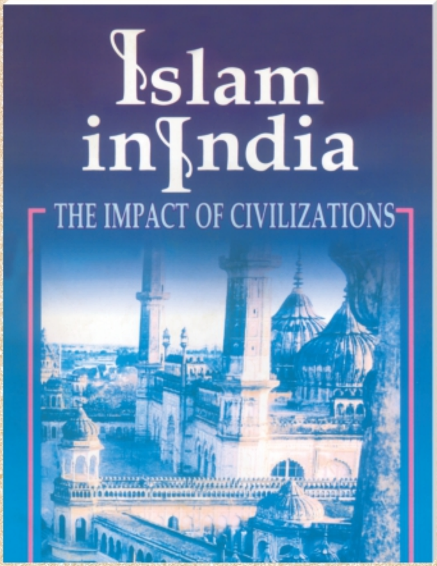

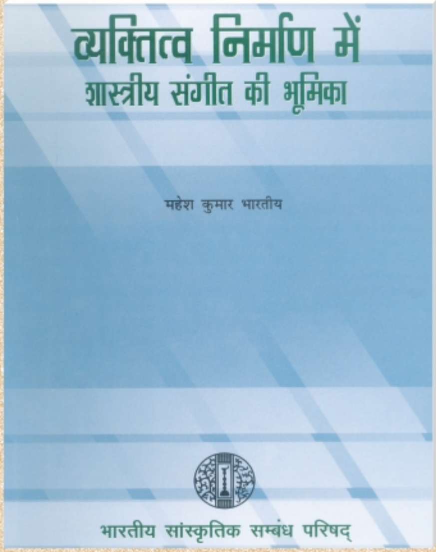

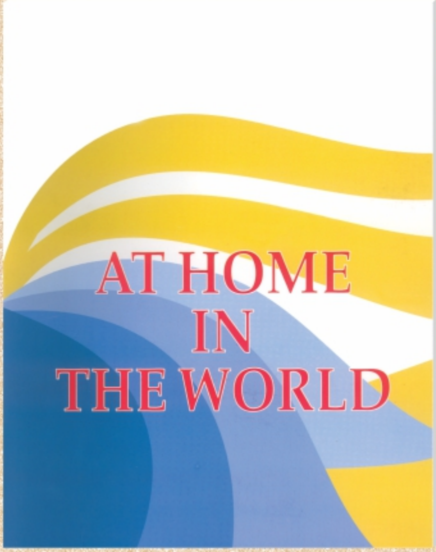

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

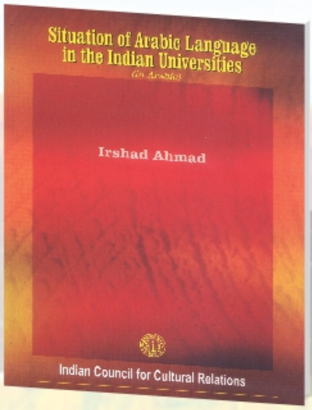

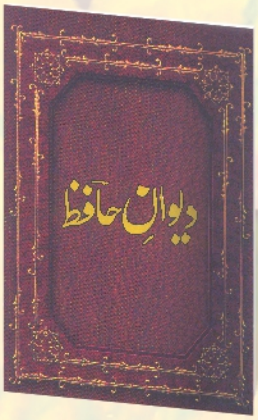

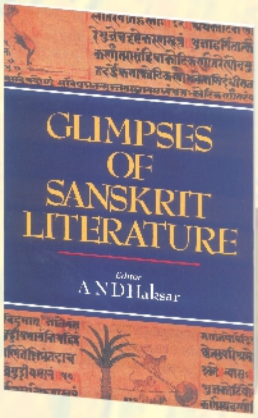

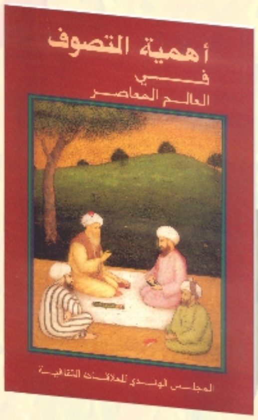

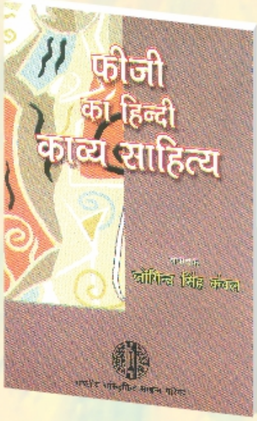

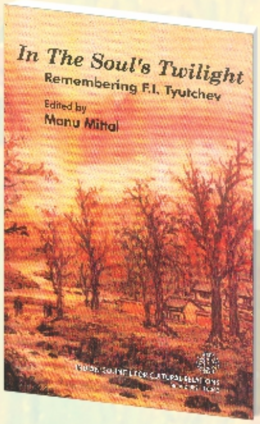

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccrindia.net